SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY
Accredited by NAAC with 'A+' Grade

Master of Arts

(Hindi)

साहित्यिक निबंध - 1 (HNL-502)

Semester-I

Author- Ramavtar Yogi

SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Centre for Distance and Online Education
Mahal, Jagatpura, Jaipur-302025

EDITORIAL BOARD (CDOE, SGVU)

Dr (Prof.) T.K. Jain
Director, CDOE, SGVU

Ms. Hemlalata Dharendra
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Ms. Kapila Bishnoi
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Mr. Ashphaq Ahmad
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Dr. Manish Dwivedi
Associate Professor & Dy, Director, CDOE, SGVU

Mr. Manvendra Narayan Mishra
Assistant Professor (Deptt. of Mathematics) SGVU

Published by:

S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

WZ-6, Lajwanti Garden, New Delhi: 110046

Tel.: (011) 28520627 | Ph.: 9205476295

Email: info@sbprakashan.com | Web.: www.sbprakashan.com

© SGVU

All rights reserved.

No part of this book may be reproduced or copied in any form or by any means (graphic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information retrieval system) or reproduced on any disc, tape, perforated media or other information storage device, etc., without the written permission of the publishers.

Every effort has been made to avoid errors or omissions in the publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice and it shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publishers nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc., the publishers' liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in this connection are to be borne by the purchaser.

Designed & Graphic by : S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

Printed at :

विषय-सूची

इकाई 1

आधुनिक युग में हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास और स्वरूप 5

इकाई 2

मोहन राकेश: व्यक्तित्व एवं कृतित्व 20

इकाई 3

विशेष साहित्यकार: नाटककार मोहन राकेश 57

इकाई 4

मोहन राकेश के नाटक और शिल्पगत दृष्टिकोण 78

इकाई 5

मोहन राकेश का नाट्य चिंतन और कला 110

vf/kxe ifj.kke (Learning out comes)

fo|kFkh le>us esa l{ke gksxk

bdkbZ &1

- fo|kFkh vk/kfud fgUnh ukV; lkfgR; dk fodkl ,o Lo:Ik dk v/;;u dj ldx
- o ukVd d mnn'; ,o fo'k'krkvk dk v/;;u dj ldx
- o lLdr ukV; ijijk dk v/;;u dj ldx

bdkbZ &2

- fo|kFkh ekgu jkd'k d 0;fDrxr ,o lkfgfR;d thou dk ifjp; ikIr dj ldx
- o ekgu jkd'k d dFkrj lkfgR; dk Kku ikIr dj ldx
- o ekgu jkd'k d fgUnh ukV; lkfgR; e ;kxnku dk v/;;u dj ldx

bdkbZ &3

- fo|kFkh ekgu jkd'k dk v/;;u fo'k'k ukVddkj d :Ik e dj ldx
- o ekgu jkd'k d ukVd vkj jxep dh ifjdYiuk dk igpku ldx
- o ledkyhu fgUnh jxep vkj ekgu jkd'k d ukVdk dh leh{kk dj ldx

bdkbZ &4

- fo|kFkh ekgu jkd'k d f'kYixr nf'Vdk.k dk tku ik,x
- og ukVdk e bfrgkl vkj feFkd dk v/;;u dj ldx
- og ukVdk e jlkuHkfr dk vuHko ikIr dj ldx

bdkbZ &5

- fo|kFkh ekgu jkd'k d ukV; fpru vkj dyk dk v/;;u dj ldx
- o ekgu jkd'k d fgUnh x| lkfgR; e ;kxnku dk Li'V dj ldx
- o ekgu jkd'k d ukVdk e lkfgfR;d fpru dk v/;;u dj ldx

साहित्यिक निबन्ध-1

इकाई 1

आधुनिक युग में हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास और स्वरूप

प्रस्तावना, उद्देश्य, नाट, नाटक का वैशिष्ट्य, संस्कृत नाट्य परम्परा, लोकनाट्य और हिंदी नाट्य परम्परा, हिन्दी नाट्य परम्परा, नाटक साहित्य और आधुनिक काल का स्वरूप, भारतेन्दु युग में नाटक का स्वरूप, प्रसाद युग में नाटक, प्रसादोत्तर युग, स्वातन्त्रयोत्तर युग, उपसंहार

इकाई 2

मोहन राकेशः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तावना, व्यक्तित्व, कृतित्व, कथेत्तर साहित्य, निष्कर्ष

इकाई 3

विशेष साहित्यकारः नाटककार मोहन राकेश

प्रस्तावना, मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच की परिकल्पना, नाटक और रंगमंच का संबंध, नाटकों के प्रस्तुतिकरण को लेकर मोहन राकेश, मोहन राकेश के नाटकों का मंचन, मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच, मोहन राकेश के नाटकों में रंगमंचीय नए प्रयोग, मोहन राकेश के नाटकों में दृश्य विधान में संकेत, नाटक की रचना-प्रक्रिया तथा अभिनेयता, मोहन राकेश का नाट्ड्ड-चितंन रंगमंच सम्बन्धी अवधारणा, मोहन राकेश का रंगमंचीय निर्देश, ध्वनि संयोजन, संगीत योजना, वेशभूषा तथा रूप विन्यास, अभिनय और अभिनेता, रंगशिल्पगत तुलनात्मक अध्ययन, रंगमंच और शिल्प, रंगदीपन, शब्द और रंग का मेल, समकालीन हिन्दी रंगमंच और मोहन राकेश के नाटक, उपसंहार

इकाई 4

मोहन राकेश के नाटक और शिल्पगत दृष्टिकोण

प्रस्तावना, इतिहास और मिथक, रंग निर्देशः रंगमंचीय नवीनता, नाट्य वस्तु और विन्यास शिल्प, चरित्र परिकल्पना और संरचना, रसानुभूति का स्वरूप, वस्तु संप्रेक्षण और रंगतंत्र पहचान, नाट्य भाषा के विविध पक्षों की पहचान, हरकत की भाषा प्रेक्षक संदर्भ और नाट्य संरचना, नाटकीय संरचना

इकाई 5

मोहन राकेश का नाट्य चिंतन और कला

प्रस्तावना, कहानी साहित्य, उपन्यास साहित्य, निबंध साहित्य, यात्रा विवरण, संस्मरण, डायरी और अनुवाद साहित्य, नाटक एवं एकांकी साहित्य, मोहन राकेश के नाटकों में जीवन सत्य, मोहन राकेश के नाटकों में अस्तित्ववादी चिंतन, मोहन राकेश के नाटकों में साहित्यिक चिंतन, नाटककार और रंगमंच, नाटक रचना प्रक्रिया, नाटक भाषा योजना, मोहन राकेश के नाटक, आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस कथा वस्तु का क्रमिक विकास, आधे अधूरे, पैर तले जमीन

इकाई 1

आधुनिक युग में हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास और स्वरूप

संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 नाटक
1.4 नाटक का वैशिष्ट्य
1.5 संस्कृत नाट्य परम्परा
1.6 लोकनाट्य और हिंदी नाट्य परम्परा
1.7 हिन्दी नाट्य परम्परा
1.8 नाटक साहित्य और आधुनिक काल का स्वरूप
1.9 भारतेन्दु युग में नाटक का स्वरूप
1.10 प्रसाद युग में नाटक
1.11 प्रसादोत्तर युग
1.12 स्वातन्त्रयोत्तर युग
1.13 उपसंहार
1.14 प्रश्नबोध

टिप्पणी

1.1. प्रस्तावना

सूर और तुलसी का भक्ति काल में जो स्थान है वही स्थान आधुनिक साहित्य में जयशंकर प्रसाद का है। प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य को व्यापक दृष्टिकोण और नवीन विषय प्रदान किया। प्रसाद जी ने द्वि वेदी युगीन काव्यादर्श के विरूद्ध विद्रोह कर नवीन काव्य-धारा और गद्य विधाओं का लेखन प्रारम्भ किया, समकालीन समस्याओं के निराकरण के लिए प्रसाद ने प्राचीन भारतीय इतिहास का आश्रय लिया है। जयशंकर प्रसाद की गणना आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है, प्रसाद मूलत: कवि हैं परन्तु उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा की रचना की है। कवि के पश्चात उनका नाटककार स्वरूप सर्वाधिक चर्चित रहा है। भारतीय साहित्य के इतिहास में 'नाटक' को पूर्ण साहित्य की गरिमा दी गयी है कहानी, कविता, नाटक में स्वतरू ही समाहित हो जाते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में 'नाटक' की विस्तृत व्याख्या की गयी है। इस इकाई में आपको नाटक के स्वरूप, हिन्दी नाटक के इतिहास की विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप:

- नाटक के स्वरूप को पहचान सकेंगे।
- नाटके के सर्वमान्य तत्त्वों को जान सकेंगे।
- हिन्दी नाटक के उद्‌भव को जान सकेंगे।
- हिन्दी नाट्य साहित्य के विभिन्न चरणों का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 नाटक

'नाटक' साहित्य की सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली विधा है। नाटक दृश्य काव्य है। श्राव्य एवं दाय काव्यों में नाटक श्रेष्ट है। यह पंचमवेदन के नाम से जाना जाता है। रंगमंच इसका प्राण तत्व है। नाटक द्वारा पाठको एवं दर्शकों को सानुभूति होती है। रसानुभूति का अर्थ है अपना अस्तित्व भूलकर तन्मय हो जाना, आश्रय से सामाजिक अपना तादात्मय स्थापित कर लेता है। नाटक की उपादेयता इसी में है कि सामाजिक उसे देखकर अधिक से अधिक आनंद प्राप्त कर सके। 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता भरतमुनि ने तो यहाँ तक माना है कि योग, कर्म, सौरशास्त्र और समस्त शिल्पों का नाटक में समावेश है। नाटक के द्वारा देश की सांस्कृतिक परंपरा की रक्षा होती है। इतिहास, पुराण सभ्यता का विकास सभी कुछ नाटक के द्वारा हमारी आँखों के सामने उपस्थित होता रहता है। इसीलिए साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा वह बहुचर्चित एवं लोकप्रिय है। हिन्दी नाटक आज अपनी प्रस्तुति एवं नवीनता को लेकर बहुचर्चित है।

अवधारण एवं वैशिष्ट्य

साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। 'नाटक' साहित्य का एक अभिन्न अंग माना जाता है। नाटक और मानव जीवन का शाश्वत सम्बन्ध रहा है। यह संसार का एक रंगमंच है और मानव उसका शाश्वत पात्र है। मानव जीवन के व्यापक संदर्भो और यथार्थ जीवन के विविध आयामों से विषय चुनकर वह समाज के लिए ही अपने रूप का निर्माण करता है। शब्दों तथा पात्रों की वेश-भूषा, आकृति, भाव-भंगिमा, क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अभिनय तथा प्रदर्शन द्वारा दर्शक को समाज के यथार्थ जीवन के निकट लाता है। डा. विपिन गुप्त नाट्य को समाज के साथ रखते हुए कहते हैं कि "साहित्य में नाटक प्रत्यक्ष और समाजिक विधा है। दर्शक समुदाय नाटक द्वारा प्रायोजित जीवन को मंच पर घटित होते देखता है।"

टिप्पणी

कहने का आशय यह है कि नाटक समसामयिकता से जोड़ता है। तभी उसकी प्रासंगिकता कायम रहती है। इब्सन का कहना है कि-ष्नाटककार का काम है अपने समय और अपनी जाति को उद्वेलित करने वाले सामयिक एवं शाश्वत प्रश्नों को स्वयं समझना और दूसरों को समझाना। नाटक के विविध अर्थ और वैशिष्ट्य को अलग-अलग विद्वानों ने समझाने की चेष्टा की है। जिसमें भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों का समावेश होता है।

नाटक की व्याख्या

हमारे यहाँ आचार्य भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' नाट्य विधा का आदि ग्रंथ माना जाता है। उन्होंने नाटक को पारिभाषित करते हुए कहा है कि- "त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्यभावनुकीर्तनम।" अर्थात 'नाटक' तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है। इस परिभाषा से भारतीय नाट्य परंपरा में 'नाटक' को दैवीय उत्पत्ति से स्वीकार किया है। त्रेतायुग में देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने पंचम् नाट्यवेद निर्माण किया। नाट्य वेद के निर्माण में ऋग्वेद से संवाद, यजुर्वेद से अभिनय सामवेद से संगीत और अथर्ववेद से रसतत्व ग्रहण कर पंचम् नाट्य वद की रचना की। संस्कृत के महत्त्वपूर्ण विद्वान धनजंय के मतानुसार "अवस्था के अनुकरण को नाटक कहा जाना चाहिए।"

पश्चात्य चिन्तक अरस्तु के मतानुसार नाटक एक करूणांतिका है। उन्होंने ट्रेजेडी पर विचार करत ५ कहा है कि- "ट्रेजेडी उस व्यापार विशेष का अनुकरण है, जिसमें गम्भीरता और पूर्णता हो, जिसका प्रत्येक प्रकार के कलात्मक अलंकारों से ससज्जित हो, और जिसमें अनेक विभाषाएँ पाई जाता है, शैली वर्णनात्मक न होकर दृश्यात्मक हो, जो करूणा और भय का प्रदर्शन करके इन मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सके।"

हिन्दी नाटक के सबसे बड़े आलोचक डॉ. दशरथ ओझा ने नाटक की परिभाषा पर विचार करते हुए कहा है कि "जब लोगो की क्रियाओं का अनुकरण अनेक भावों और अवस्थाओं से परिपूर्ण होकर किया जाए तो वह नाटक कहलाता है' भारतेन्दु भी 'नाटक' नामक निबन्ध में नाटक के अर्थ एवं परिभाषा पर विचार किया है वे 'नाटक' शब्द संदर्भ और दिशाओं को नाट्यशास्त्र के साथ जोड़ते है। नाटक में 'नट' को महत्व देते हुए कहते हैं कि-विद्या के प्रभाव से अपने या किसी वस्तु के स्वरूप में फेर कर देनेवाले को या स्वयं दृष्टि लेखन के फिरने को। 'नाटक' में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक स्वरूप धारण करते है वे केशविन्यास के पश्चात रंगभूमि में स्वीकार्य साधन हेतु फिरते है।" नटों की क्रिया से भारतेन्दु का आशय अभिनय से है। जयशंकर प्रसाद 'काव्येषु नाटके' रम्यम्श्लेख में नाटक सम्बन्धी विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि "दृश्यकाव्य का विकसित रूप है।.... हृदय से अनुभूति करने के लिए कला के दो द्वार हैं, कान आँख। ईधर काव्य की अनुभूति नेमिचंद दृश्य और श्रव्य, दोनों प्रकार से होती है।"

नेमिचंद्र जैन ने 'रंगदर्शन' में नाटक को परिभाषित करने का प्रयास किया है। वे नाटक के बारे में लिखते हैं कि- "अपनी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से नाटक वह सम्वादमूलक कथा है जिसे अभिनेता रंगमंच पर नाट्य व्यापार के रूप में दर्शक वर्ग के सामने प्रस्तुत करते है।श' मोहन राकेश नाटक में चिन्तन की अपेक्षा नाट्यरचना पर अधिक बल देते हैं। वे नाट्य रचना प्रक्रिया के सम्बन्ध में अपने निजी अनुभव के आधार पर लिखते हैं किष्मेरे अन्दर और बाहर की शक्तियाँ एक ऐसी विवशता पैदा करती हैं, जिनके कारण मैं लिखने बैठ जाता हूँ। एक नाटककार के रूप मेरा कार्य, रचना को रूपाकार में ढालना ही नहीं, उसे पुनर्ग्रहण करना और गढ़ना ही नहीं, नाटक को सही परिप्रेक्ष्य में खेजना भी है। इस प्रकार 'नाटक' शब्द की और परिभाषा को लेकर चिन्तकों ने विचार किया है। एक बात यहाँ स्पष्ट हो जाती है कि 'नाटक' का मूल तत्व उनकी मंचीयता है, क्योंकि नाट्य दृश्यकाव्य है। अतरू

टिप्पणी

नाटक का रगमंच पर खेला (अभिनित होना) आवश्यक है। कुछ भी हो लेकिन 'नाटक' साहित्य में अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली विधा के रूप में है।

1.4 नाटक का वैशिष्ट्य

नाटक लोकतांत्रिक कला है, अतय इसका महत्त्व सभी कलाओं में अधिक है। यह जनता की धरोहर है, साथ ही उसके आनंद का आधार भी। सवाल नाटक के वैशिष्ट्य का है। आदिकाल से लेकर आजतक कई समीक्षकों ने नाट्य के वैशिष्ट्य को लेकर विचार किया है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य की विशेषता को लेकर कहा है

"लोकवृत्तनुरकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम
उत्तमाध्मध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम॥"

स्पष्ट है कि नाटक दृश्यकाव्य है काव्य का केवल श्रवण कर सकते हैं, परन्तु नाट्य का श्रवण करने से तो आनंद मिलता ही है, उसे हम आँखों से देख भी सकते हैं। यही इसकी विशेषता है। दशरथ ओझा नाटक के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं कि- "हमारे राष्ट्रीय जीवन में नाट्यकला का प्रमुख स्थान रहा है, स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति के एकीकरण का श्रेय भारतीय नाटक को ही प्राप्त है। "नाटक के वैशिष्ट्य एवं महत्त्व पर विचार करते हुए डॉ. मदनमोहन शर्मा द्वारा उद्धृत कथन में डॉ. गिरीश रस्तोगी कहत हैं कि- "साहित्य की अन्य विधाओं के परिप्रेक्ष्य में जब नाटय विधा के अधिक उत्कृष्ट या विशिष्ट होने का समर्थन करते हैं तो इसी आधार पर कि उसकी सम्प्रेक्षणीयता की पैठ मानव मन की गहराइयों तक अधिक हैं।"

नाटक के वैशिष्टय की ओर दृष्टि डालते हुए डॉ. विपिन गुप्त कहते हैं कि "प्रत्येक काव्य अपने आप में एक विशिष्ट विधा होती है, परन्तु नाटक का वैशिष्ट कुछ और ही है, क्योंकि यह एक कला की बनिस्बत कलाओं विधाओं व शास्त्रों का समूह है।श' नाटक एक सामान्य दर्शक को मात्र मनोरंजन देकर ही छोड़ नहीं देता उसकी अभिरूचियों, महत्त्वाकांक्षाओं का परिष्कार भी करता है। अतरू नाटक मानव-जीवन के सर्वाधिक निकट भी है। भरत देसाई द्वारा उद्धृत कथन में डॉ रामकुमार वर्मा नाटक के महत्त्व पर विचार करते हुए लिखते हैं कि "नाटक साहित्य का सदगुण रूप है जिस प्रकार निराकार बह्म अपने वैभव का अभिज्ञान अवतार के माध्यम से भक्त को कराता है उसी प्रकार साहित्य का सौन्दर्य रंगमंच पर अवतरित होकर नाटक के रूप में प्रकट होता है। नाट्य रचना के दौरान नाटककार का साक्षात्कार सामूहिक अनुभूतियों से हो जाता है, नाटककार अपनी अनुभूतियों को सबकी अनुभूतियों से जोड़ लेता है। उसकी दृष्टि वैयक्तिक सीमा से निकलकर सामूहिक हो जाती है। नाटक हमारे जीवनानुभवों का विस्तार करता है, हमें साधारणीकरण व्यापार के दूसरों के जीवनानुभवों में प्रवेश करने का अधिकार मिलता है और इस प्रकार हमें लगता है कि हमारा अनुभव क्षेत्र विस्तृत हो रहा है। इससे हमें संतोष मिलता है। नाटक की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो साहित्य की किसी भी अन्य विधा में उपलब्ध नहीं होती। दृश्यत्व ही नाटक का मूल वैशिष्ट्य है, जो उसे अन्य साहित्यागों से सर्वथा विलक्ष बना देती है। चाक्षुष प्रत्यक्ष होने के कारण ही नाटक के सभी तत्व कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, आदि के तत्वों से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। कथावस्तु का क्रमिक विकास जितनी स्पष्टता से नाटक में दिखाया जा सकता है वैसा अन्य साहित्य रूपों में नहीं। इसका कारण यह है कि नाटकीय कथा को अनेक दृश्यों में विभाजित कर उपस्थित किया जाता है। पात्र सभी विधाओं का एक अनिवार्य तत्व माना जाता है। परन्तु नाटक में इसका सर्वाधिक महत्त्व है। क्योंकि नाटककार को सभी प्रसार के भावों विचारों को पात्रों के माध्यम से ही उपस्थित करना पड़ता है। संवाद मूलतः नाटक

टिप्पणी

का ही अपरिहार्य तत्व है। नाटक पूर्णत: संवादात्मक होता है। नाटक के लिए पात्रानुकूल भाषा-विध ान परम अपेक्षित माना गया है। नाटक के पात्र विभिन्न प्रकार के होते हैं, इसीलिए नाटकीय भाषा के प्रयोग में भी विविधता का होना जरूरी है। रंगमंच नाटक के कलात्मक वशिष्ट्य का प्रमुख निर्धारित तत्व है। साहित्य के एक स्वतंत्र भेद श्दृश्य काव्य के रूप में नाटक की प्रतिष्ठा का मूलाधार रंगमंच ही है। सामाजिकों को नाटकीय घटनाओं के सम्पर्क में लाने का काम रंगमंच द्वारा ही संभव हो पाता है। अतरू रंगमंचीय होना नाटक का प्रधान लक्षण या विशेषता है।

1.5. संस्कृत नाट्य परम्परा

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति को लेकर विद्वान असमंजस्य में है। बेबर और विंडिश ने यूनानी प्रभावों, पिशेल ने पुत्तलिका नृत्य (कठपुतली नृत्य) और लेबी फानक्षोडर, हिलेब्रा, हटेंन, आल्डेबर्न आदि विद्व ानों ने वैदिक सूक्तों में संसकृत नाट्य की परंपरा को खोजा है। संस्कृत नाट्य परंपरा का जहा तक प्रश्न है, 'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ के आधार पर संस्कृत के कई नाटककार सामने आए जिनमें महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास, अश्रूवघोष, हर्षवर्धन, विशाखादत्त आदि प्रमुख रहे हैं। संस्कृत नाट्यकारों के सम्बन्ध में जयकुमार जलन द्वारा उद्धत कथन में धनंजय कहते हैं- "इन नाटककारों ने अपनी नाट्य-रचनाओं को भरत के 'नाट्यशास्त्र' एवं अन्य शास्त्रियों की नाट्यसीमा को ध्यान में रखते हुए रूपक के रूप में प्रस्तुत किया जिसका स्पष्ट उल्लेख धनजंय के यहाँ दशरूपकम-विधान के अन्तर्गत निरूपित है।

महाकवि भास द्वारा रचित तेरह रूपक प्राप्त होते हैं। संस्कृत नाट्य परंपरा में भास का महत्व योगदान रहा है। उनके सारे नाटक महाभारत, रामायण और कल्पना के आधार पर रचे गये है। महाभारत आधारित रूप को 'मध्यम व्यायोग', 'कर्णधार', 'दूतघटोत्कच', 'उरूभंग' 'पंचरात्र', 'दूतवाक्य' बाल चरित का समावेश होता है। रामायण के आधार पर रचित रूपकों में 'प्रतिमानाटक' और 'अभिषेक' नाटक आते हैं। जबकि काल्पनिक रूपकों में 'अविमारक' दरिद्रचारूदत्त, 'प्रतिज्ञा योगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवद्त्तम' आदि रूपकों का समावेश होता है। भास के बाद संस्कृत नाट्य परंपरा में शूदक का नाम आता है, उनके द्वारा रचित एक ही नाट्य रचनाकृश्मृच्छकटिकम् है। मच्छकटिकम' अपने ढंग की एक अनूठी रचना है। उनके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लक्ष्मीनारायण लाल लिखते है कि-ष्मृच्छकटिकम' बहुत ही उच्चकोटि की रचना है। इसमें व्याप्त कथातत्व, घटनाचक, कार्य और उसकी गति और नाट्य-व्यापार इस सत्य को पूर्णरूप से बताते हैं कि संस्कृत रंगमंच की प्रकृति और परपरा क्या थी।" शूद्रक के बाद महाकवि कालिदास का नाम महत्त्वपूर्ण है, उन्होंने तीन रूपक ग्रन्थों की रचना कीकृ 'मालविकाग्निमित्र', विक्रमोर्वशीय' और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम'। इन तीनों के केन्द्र में प्रेम है। कालिदास के नाटकों की मंचीयता को लेकर डा० लक्ष्मी नारायण लाल का कहना है किष्संस्कृत रंगमंच का सम्पूर्ण भावबोध, अर्थबोध, इनके नाटकों में मिला। काव्य, अभिनय, रंग, इन तीनों तत्वों का अद्भुत समन्वय और उसके उत्कर्ष उनके 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' नाटक में मिला कालिदास के बाद विशाखादत्त द्वारा विरचित 'मुद्राराक्षस' नाटक भी संस्कृत नाट्यपरम्परा में उल्लेखनीय है। संस्कृत नाट्यन परम्परा में अन्तिम और महत्त्वपूर्ण नाटककार भवभूति है, जिसने नाट्यधारा में 'उत्तरामचरित' के माध्यम से एक नयी दृष्टि दी। उनके तीन नाटक उल्लेखनीय है (1) मालतीमाधव (2) महावरी चरित (3) उत्तरामचरित। भवभूति के साथ लगभग संस्कृत नाटकों का स्वर्णयुग समाप्त हो जाता है। अंतिम चरण में कई रूपक (नाटक) लिखे गये, उनमें राजशेखर का 'बालरामायण' और जयदेव का 'प्रसन्नराघव' उल्लेखनीय है। संस्कृत नाटक की ऐतिहासिक परंपरा और मंचीयता पर विचार करते हुए डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं कि-राजन्य संस्कृति उसका सौन्दर्यबोध यहीं से शुरू हुआ नाटक का लिखा जाना और उसका राजमंडप

टिप्पणी

में राजभवन में अन्त: पुर में अभिनित होना। और यहीं से विकसित हुई संस्कृत नाट्यधर्मी परंपरा जिसके कलान्तर में नाटककार हुए भास, अश्रघोष, कालिदास और भवभूति ।"

मध्यकाल में नाटक के दो रूप हमारे सामने आते हैं। एक धर्मिक नाट्य परंपरा और दो लोकनाट्य परंपरा। धार्मिक नाट्य परंपरा के अन्तर्गत 'रासलीला' और 'रासलीला' ये दो विकसित नाट्यरूप थे। मध्यकालीन नाट्य पंरपरा में लोकनाट्य अपने आप में एक अलग महत्त्व रखता है।

1.6 लोकनाट्य और हिन्दी नाट्य की परम्परा

ऐसा माना जाता है कि संस्कृत नाटकों की ह्रासोन्मुख परंपरा में पड़नेवाली खाई को लोकनाट्य ने पूरा किया है। डॉ० दशरथ ओझा का कहना है कि- "इसकी प्रेरणा स्वभावतरू जन समुदाय में विद्यमान रही है, और यह भी निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि-साहित्यिक और जननाटक एक-दूसरे पर प्रभाव भी डालते रहे होंगे और इसका परस्पर आदान-प्रदान निरन्तर होता रहा होगा। डॉ० मनदमोहन शर्मा द्वारा उद्धृत कथन में डॉ० दुर्गादिक्षित लोक नाट्य के बारे में लिखते हैं कि-ष्प्रकृति के यह उपादान ही लोकनाट्य के मूल उत्सव होने तथा ऋतु पर्व, दिन विशेष और लोक उत्सव के अवसरों पर, प्रकृति के सानिध्य में धार्मिक विधि के रूप में इसका उद्‌गम होने के कारण इसमें संदेह नही कि लोकनाट्य में लोकमानस के स्रोत अक्षुण्ण रूप में विद्यमान है। भक्तिपरक भावना से अद्‌भूत यह विधि नाट्य लोकनाट्य के सहज संस्कारों से अनुप्राणित हो तो आश्रर्य की बात नहीं।..... वह पुरातन काल से ही आज तक युगों के साथ अनेक थपेड़ों को झेलते हए अब भी अपने अस्तित्व के साथ लोक जीवन में सतत प्रवाह मान है ।"

लोकनाट्य की प्राचीनता को लेकर डॉ. दशरथ ओझा का कहना है कि- "हमारी देशी भाषाओं में साहित्यिक नाटक के पूर्व जन नाटक शताब्दियों से अभिनित होते आ रहे थे। बंगला में 'यात्रा' एवं 'कीर्तनिया' नाटक, बिहार में 'विदेशिया', अवधी, पूर्वी हिन्दी ब्रज तथा खड़ीबोली में 'रास', 'नौटंकी', 'स्वांग', 'भाँड' राजस्थानी में 'रस', 'झुमर', 'ढोलामारू', गुजराती में 'भवाई', महाराष्ट्री में 'तमाशा' आंध्र की भाषा तमिल में 'भगवतमेल' आदि नाटक विद्यमान थे। डॉ० बिन्दुभट्ट अपने 'आज के रंगनाटक' ग्रन्थ में लोकनाट्य की प्राचीनता को लेकर लिखती है कृष्संस्कृत के रंगमंच के अभाव में एक दूसरा ही रंगमंच पनपा-लोकमंच जो आज भी अपने में प्राचीनता और अर्वाचीनता लिए हुए है।

1.7 हिन्दी नाट्य परम्परा

हिन्दी नाटक के आरम्भ के सम्बन्ध में तीन तरह की धारणाएँ सामने आयी हैं। कुछ अलोचक प्राचीन-मध्यकाल से नाटक की शुरूआत मानते हैं। जबकि कुछ लोग खडीबोली हिन्दी के जनक भारतेन्दु एवं उनकी कृतियों को इसका श्रेय प्रदान करते हैं, तो कुछ अलोचक संस्कृत के अनुदित नाटक से हिन्दी नाटक का प्रारम्भ मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी नाटक के आरंभिक विकास का स्वरूप संस्कृत के अनुदित नाटकों में खोजा है। उनका मत है कि- "हिन्दी नाट्य साहित्य को प्रेरणा संस्कृत नाट्य कृतियों से मली है ।" प्रथम नाट्य कृति के सम्बन्ध में शुक्लजी ने कहा है कि-ष्भारतेन्दु के पहले नाटक के नाम से दो चार ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिए गये थे, उनमें महाराज विश्वनाथ सिहं के 'आनंद रघुनंदन' नाटक के छोड़ और किसी में नाटकत्व न था।" डॉ. नगेन्द्र का मत है कि - "आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास का श्रेय अंग्रेजी के संपर्क से हुआ।" डॉ. दशरथ ओझा ने "हिन्दी नाट्य परम्परा को प्राचीन माना है।" मिश्रबंधुओं ने हिन्दी नाट्य परम्परा का सम्बन्ध विद्यापति से जोड़ा है। डॉ. अब्दुर्रशीद ए. शेख हिन्दी नाट्य परम्परा पर विचार करते हुए 'हिन्दी नाटक-सौ वर्ष का सफरनामा' में लिखते हैं कि- "हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रारंभिक नाटक संस्कृत नाटकों से प्रभावित रहे

टिप्पणी

तद्परांत हिन्दी साहित्य के विकास के साथ-साथ उसमें रूपगत परिवर्तन भी आया और बाद का हिन्दी नाटक, अंग्रेज नाट्य परंपरा से प्रभावित हुआ। भारतेन्दु पूर्वयुग का हिन्दी नाट्य साहित्य संस्कृत नाट्य शैली और जन-नाट्य शैली का अनुकरण करता हुआ विकासोन्मुख हुआ उपर्युक्त विवेचकों के मतों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी नाट्यसाहित्य का मूलरूप पुराना है। परन्तु उनकी व्यवस्थित शुरूआत भारतेन्दु से होती है। समय-समय पर उसमें परिवर्तन और परविर्धन होता रहा है।

हिन्दी का पहला नाटक किसे माना जाय उसको लेकर विद्वान एक मत नहीं हैं। डॉ. दशरथ ओझा ने संवत 1289 में रचित 'गप सुकुमार रास' को हिन्दी का प्रथम उपलब्ध नाटक माना है। दूसरी ओर डॉ. ओझा ज्योतिरीज्जर कृत 'धूर्त समागम' तथा अब्दूल रेहमान कृत 'सेदंशरासक' को हिन्दी का प्रथम नाटक माना हैं। डॉ. विद्यापति ने तथा डॉ. भार्गव ने 1885 में अभिनित 'नम्र' तथा 'कुष्णाख्यान' को हिन्दी के प्रथम नाटक के रूप में स्विकृत किया है। भारतेन्दु ने अपने पिताश्री गोपालचन्द कृत नाटक 'नहुष' को हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। रीतिकाल में उपलब्ध नाटक 'इन्दरसभा' की रचना आगाहश्र हसन, अमानत ने की। 'इन्दर सभा गीति-काव्य परंपरा का प्रथम नाटक माना जा सकता है। भाषा को लेकर विवाद है, अत: यह नाटक आदि नाटक नहीं कहा जा सकता है। 'इन्दर सभा' नामक नाटक की रचना मदारीलाल ने भी की हैं। यह नाटक 'अमानत' के 'इन्दर सभा' के निकट है। राजा लक्ष्मण ासिंह का 'शकुन्तला' नाटक कालिदास के नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' का शुद्ध अनुवाद है। डॉ. श्री कृष्णलाल इससे हिन्दी नाटक का प्रारम्भ मानते हैं। उनक महत्व पर विचार करते हुए डॉ. रणधीर उपाध्याय कहते है कि "वस्तुत: हिन्दी का यह आदि नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य का वह सीमा चिन्ह है जो युगों को जोड़ता है और उसी के साथ यह भी प्रमाणित करता है कि हिन्दी साहित्यि नाटकों का सत्रपात संस्कृति की नाट्य परंपरा से हुआ है। "हिन्दी के प्रारंभिक नाटको क बार डॉ. अब्दलरशीद शेख कहते है कि हम यहाँ इस बात को स्विकार करते हैं कि भारतन्दु व उनके समकालीन पाट्कारों के सन्मुख आदर्श रूप में विश्वनाथ कृत श्आनन्द नघुनन्दन', गिरिधरदासकृत 'नहुष' और राजा लक्ष्मणसिंह द्वारा अनुदिश 'शकुन्तला' ये तीन नाटक थे ।"

जितना मतभेद हिन्दी के प्रारंभिक नाटक के बारे में है उतना मतभेद हिन्दी के प्रारंभिक नाटककार को लेकर नहीं है। प्राय: सभी नाट्य चिन्तकों ने यह स्वीकार किया है कि हिन्दी का प्रारंभिक नाटककार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही है। इस मत के सम्बन्ध में डॉ. विजयकान्त दुबे का कहना है किष्भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके समय के नाट्य लेखकों ने पहली बार इस आवश्यकता की पूर्ति की। उन्होंने अपने चारों ओर के जीवन और भारतीय पुराणों तथा इतिहासकृसामग्री से सत्य ग्रहण कर हिन्दी नाट्य-वीणा के स्वर को झंकृत किया इसके स्पन्दन से मौलिक अनुदितकृसभी प्राकर की नाट्य रचनाएं सामने आयी" इस मत की पुष्टि करते हुए डॉ. वार्ष्णेय भी लिखते हैं कि-ष्वास्तव में सच तो यह है कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में नवोत्थानकालीन भावना से प्रेरित संस्कृत और फिर अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन के फलस्वरूप और फिर से अनुकूल वातावरण पाकर-क्योंकि इस्लाम संस्कृति ने नाट्य साहित्य को कोई प्रोत्साहन प्रदान न किया था-नाट्य का जन्म हुआ।" असल बात यह है कि काल की गति से भारतेन्दु पूर्व नाट्य वृक्ष सूख गया था, वह फिर अनके काल में पल्लवित हो उठा। भारतेन्दु ने अपनी कृतियों द्वारा अभिनेताओं और अभिनयशालाओं की खोई हुई प्रतिष्ठा को कायम किया है। भारतेन्दु के पूर्व हिन्दी नाट्य साहित्य की जो स्थिति थी उसका संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने से ऐसा लगता है कि अब तक हिन्दी नाटक अपना वास्तविक रूपाकार ग्रहण नहीं कर पाया था। अतरू उनके पूर्ववर्ती नाटकों का एक ऐतिहासिक महत्त्व रह जाता है। हिन्दी नाटक का प्रथम उत्थान वस्तुत: भारतेन्दु के उदय के साथ ही उद्भव में आया। भारतेन्दु हरिश्चन्द तथा भारतेन्दु मण्डल के नाटककारों के बाद द्विवेदीयुग आता है। इस युग में मौलिक नाटकों का प्रायरू अभाव रहा है। इस अभाव को जयशंकर प्रसाद ने पूरा

टिप्पणी

किया है। प्रसाद ने अपनी नाट्य-रचनाओं के द्वारा एक ओर अतीत के गर्भ में छिपी भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों को वर्तमान जीवन-परिवेश से जोड़ने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर रचनात्मक स्तर पर भावर-नाटककारों को दिशा-संकेत भी दिया है। इस प्रकार युग प्रवर्तक नाटककारों के साथ एक नये युग का निर्माण स्वीकार कर लिया गया है और प्रारम्भ से लेकर अबतक की नाट्य परम्परा को भारतेन्दुयुगीन नाटक, प्रसाद युगीन नाटक तथा प्रसादेत्तर कालीन नाटक जैसी संज्ञाओं के अन्तर्गत देखा जा रहा है।

नाट्य लेखन की दशा में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन आया उसमें स्वातन्त्रय काल एक बहुत बड़ी विभाजक रेखा का काम करता है। भारतेन्दु ने जो कुछ सुधार हिन्दी नाटक में किया उसका अस्तित्व तत्कालीन नाटकों से प्रारम्भ होता है। इस इकाई में हम आधुनिक युग के नाट्य विकास पर अध्ययन करेंगे।

1.8 नाटक साहित्य और आधुनिक काल का स्वरूप

हिन्दी में नाटक के स्वरूप का समुचित विकास आधुनिक युग से आरम्भ होता है। सन् 1850 से अब तक के युग को हम नाट्य-रचना की दृष्टि से तीन खण्डों में विभक्त कर सकते हैंकृ(1) भारतेन्दु युग (1857-1900 ई.) (2) प्रसाद युग (1900-1930), और (3) प्रसादोत्तर युग (1930 से अब तक) इसमें से प्रत्येक युग का परिचय यहाँ क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है।

1.9 भारतेन्दु युग में नाटक का स्वरूप

स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने हिन्दी का प्रथम नाटक अपने पिता बाबू गोपालचन्द्र द्वारा रचित 'नहुष नाटक' (सन् 1841) को बताया है। किन्तु तात्विक दृष्टि से यह पूर्ववर्ती ब्रजभाषा पद्य नाटकों का ही परम्परा है। सन् 1861 ई. में राजा लक्ष्मणसिहं ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद प्रकाशित करवाया। भारतेन्दु जी का प्रथम नाटक 'विद्या-सुन्दर' (सन 1868 ई.) भी किसी बंगला के नाटक का छायानुवाद था। इसके अनन्तर उनके मौलिक व अनुवादित नाटक प्रकाशित हुए जिनमें पाखण्ड-विडम्बन (1872), वैदिकी हिंसा न भवति (1872), धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस (1875), सत्य-हरीश्चन्द्र (1875), प्रेम योगिनी (875), विषस्य विषमौषधम् (1876), कर्पूर-मंजरी (1876), चन्द्रावली (1877), भारत दुर्दशा (1876), नील देवी (1877), अंधेर नगरी (1881) और सती-प्रताप (1884) आदि उल्लेखनीय है। भारतेन्दु के नाटक मुख्यतरू पौराणिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषयों पर आधारित हैं। सत्य हरीश्चन्द्र, धनंजय-विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूर-मंजरी ये चारों अनुवादित हैं। अपने मौलिक नाटकों में उन्होने सामाजिक कुरीतियों एवं धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। 'पाखण्ड-बिडम्बन', वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, इसी प्रकार के नाटक हैं। 'विषस्य-विषमौषधम, में देशी नरेशों की दुर्दशा, राष्ट्रभक्ति का स्वर उदघोषित हुआ है। इसमें 'अंग्रेज' को भारत-दुर्देव के रूप में चित्रित करते हुए भारतवासियों के दुर्भाग्य की कहानी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्थान-स्थन पर विदेशी शासकों की स्वेच्छाचारिता, पुलिस वालों के दुर्व्यवहार, भारतीय जनता की मोहान्धता पर गहरे आघात किए गए हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को संस्कृत, प्राकृत, बंगला व अंग्रेजी के नाटक-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने इन सभी भाषाओं में अनुवाद किए थे। नाट्यकला के सिद्विान्तों का भी उन्होने अध्ययन किया था, उन्होने अपने नाटकों में अभिनय की भी व्यवस्था की थी तथा उन्होने अभिनय में भाग भी लिया था इस प्रकार नाट्यकला के सभी अंगों का उन्हें पूरा ज्ञान और अनुभव था। यदि हम एक ऐसा नाटककार ढूंढे जिसने नाट्य-शास्त्र के गंभीर अध्ययन के आधार पर नाट्य-कला पर सैद्धान्तिक आलोचना लिखी हो, जिसने प्राचीन और नवीन, स्वदेशी और विदेशी नाटकों का अध्ययन व अनुवाद प्रस्तुत किया हो,

टिप्पणी

जिसने वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को लेकर अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं मौलिक नाटकों की रचना की हो और जिसने नाटकों की रचना ही नहीं, अपितु उन्हें रंगमंच पर खेल कर दिखाया हो इन सब विशेषताओं से सम्पन्न नाटककार, हिन्दी में ही नहीं अपितु समस्त विश्व-साहित्य में केवल दो चार ही मिलेंगे और उन सब में भारतेन्दु का स्थान सबसे ऊँचा होगा। उनकी शैली सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता आदि गुणों से परिपूर्ण है।

भारतेन्दु युग के अन्य नाटककारों में लाला श्रीनिवास दास, राधाकृष्णदास, बालकृष्ण दास भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र आदि का नाम उल्लेखनीय है। लाला श्रीनिवास दास ने, प्रहलाद चरित्र', रणधीर-प्रेम मोहिनी (1877), और संयोगिता-स्वयंवर (1855), की रचना की। इनमें सर्वश्रेष्ठ रचना 'रणवीर सिंह' और प्रेम-मोहनी है। इसका सुसंगठित, चरित्र-चित्रण स्वाभाविक तथा कथोपकथन वाताकुलित एवं परिस्थितियों के अनुसार है। लाला जी ने कहीं-कहीं प्रादेशिक भाषाओं का भी प्रयोग वातावरण को यथार्थ रूप देने के लिए किया है। इसे हिन्दी का पहला दु:खान्त नाटक भा माना गया है।

राधाकृष्ण के द्वारा रचित नाटकों में 'महारानी पदमावती (1883)' धर्मालाभ (1885) महाराणाप्रताप सिंह तथा राजस्थानकेसरी (1897) उल्लेखनीय है। जिसमें महारानी पदमावती का कथानक पतला जिसमें सतीत्व के गौरव की व्यंजना की गई है। धर्मालाभ में विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों का वातालाप विमान हुए अंत में सभी धर्मो की एकता का प्रतिपादन किया गया है। 'दुखिनी बाला' अनमेल विवाह के परिणामों को व्यक्त करता है। इनका सर्वश्रेष्ठ नाटक 'महाराणाप्रताप सिंह' है जिसमें महाराणा के साहस, 'ोर्य, त्याग की आधुनिक युग में हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास और स्वरूप व्यंजना अन्त्यन्त ओजपूर्ण शैली में की गई है। महाराणा का चरित्र स्वयं उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है

जब लौ तन प्राण न तब लौ मुख की मोड़ौं।
जब लौ कर में शक्ति न तब लौ शस्त्रहिं छोड़ी।
जब लौ जिह्वा सरस दीन वच नाहिं उचारौ।
जब लौ धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं।

महाराणा के साथ-साथ अकबर चरित्र को भी सहानुभूति के साथ उजागर किया है। बालकृष्ण भट्ट ने लगभग एक दर्जन मौलिक एवं अनुदित नाटक प्रस्तुत किए हैं। उनके मौलिक नाटकों में 'दमयंती स्वयंवर', 'वृहन्नला', 'वेणुसंहार', 'कलिराज', की सभा, 'रेल का विकट खेल' 'बाल विवाह', जैसा काम वैसा परिणाम', आदि उल्लेखनी हैं। इनमें अन्तिम चार प्रहसन है जिनमें अपने युग और समाज के विभिन्न वर्गों एवं परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है। वस्तुत: प्रहसनों की परम्परा को आगे बढ़ाने में भट्ट जी का अद्‌भुत योगदान है। बद्रीनारायण 'प्रेमधन' ने समाज एवं राष्ट्र की विभिन्न परिस्थियों से प्रेरित होकर 'भरत सौभाग्य' । (1888), 'प्रयागरामागमन' (1904), वारांगन-रहस्य' (अपूर्ण), वृद्ध विलाप' आदि नाटकों की रचना की जो राष्ट्र-सुधार की भावनाओं से अनुप्राणित है। इसी प्रकार राधाचरण गोस्वामी ने भी अनेक नाटकों की रचना की जैसे-सती चन्द्रवली' (1890), 'अमर-राठौर' (1894), 'श्रीदामा' (1904), 'बूढे मुंह मुंहासे' (1887) 'भंग-तरंग' (1892)। इनमें प्रथम तीन को छोड़कर शेष प्रहसन हैं। जिसमें अपने युग की सामाजिक एवं धार्मिक बुराईयों की आलोचना व्यंग्यात्मक शैली में की गई है। प्रताप नारायण मिश्र के 'भारत-दुर्दशा' (1902), 'गो-संकट' (1886), हठी हमीर', 'कलिकौतुक रूपक', आदि भी राष्ट्र जागरण एवं समाज सुधार की प्रेरणा से रचित हैं, किन्तु नाट्य कला की दृष्टि से असाधारण कोटि के हैं। भारतेन्दु युग के अन्य मौलिक नाटक-रचियताओं में देवकीनन्द त्रिपाठी शलिग्राम, अम्बिकादत्त व्यास, जंगबहादुर मल्ल, बलदेव प्रसाद, द्य तोताराम,

टिप्पणी

ज्वालाप्रसाद मिश्र, दामोदर शास्त्री आदि का नाम उल्लेखनीय है देवकी नन्दन त्रिपाठी ने अनेक पौराणिक नाटकों एवं प्रहसनों की रचना की थी। उनके पौराणिक नाटक 'सीता-हरण' (1876), 'कंस वध' (1904), आदि हैं प्रहसनों की नामावली इस प्रकार है- 'रक्षा बन्धन' (1878), 'एक-एक के तीन-तीन', 'स्त्री चरित्र' (1879), 'वैश्य-विलास', 'बैल छरू टके टके को', आदि। त्रिपाठी जी के पौराणिक नाटक उच्च कोटि के नहीं हैं, किन्तु प्रहसनों मे व्यंग्यात्मक शैली का विकास यथेष्ठ रूप में हुआ है। शालिग्राम ने भी 'अभिमन्यु वध' (1896), 'पुरू-विक्रम' (1906), 'मोरध्वज' (1890), आदि रोमांटिक नाटकों की रचना की थी, जो कलात्मक दृष्टि से समान्य कोटि के हैं। अम्बिकादत्त व्यास के दो नाटक-'भारत-सौभाग्य' 'गो संकट नाटक' (1886), युगीन परिस्थियों पर आधारित है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा रचित 'ललिता नाटिका', मन की उमंग', आदि भी उपलब्ध हैं। इनमें प्रेम और हास्य का सम्मिश्रण है। खड्ग बहादुर मल्ल ने भी 'महारास' (1885) 'हर तालिका' (1878), 'कल्प-वृक्ष' (1887), आदि पौराणिक नाटकों की रचना की हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त उनका एक प्रहसन 'भारते-भारत' (1888) भी उपलब्ध है। बलदेव प्रसाद मिश्र का 'मीराबाई' (1897), भक्ति-भाव से परिपूर्ण है इसमें बीच-बीच में मीरा के पदों का भी उपयोग किया गया है इसके अतिरिक्त तोताराम रचित 'विवाह विडम्बन' (1900), कृष्णदेव 'रण सिंह' गोप' का 'माधुरी रूपक' (1888), दामोदर शास्त्री का 'रामलीला नाटक' (1869), ज्वाला प्रसाद मिश्र का 'सीता-बनवास' (1875), काशीनाथ खत्री के 'तीन ऐतिहासिक रूपक' (1884), आदि भी इस युग की उल्लेखनीय कृतियां हैं। प्रहसनों की परम्परा को आगे बढ़ाने की दृष्टि से किशोरी लाल गोस्वामी का 'चौपट-चपेट' (1891), गोपालराम गहमरी का 'जैसे का तैसा', नवल सिंह का 'वेश्य नाटक', विजया नंद त्रिपाठी का 'महा अंधेर नगरी' (18951 बलदेव प्रसाद मिश्र का 'लल्ला बाबू' आदि उल्लेखीनय है इनमें समाज के विभिन्न वर्गों की कलुषित प्रवृत्तियों पर व्यगय किया गया है।

अनुवाद - इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के नाटकों के अनुवाद भी बहुत बड़ी संख्या में प्रस्तुत हुए। संस्कृत के कालिदास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष आदि के नाटकों के हिन्दी अनुवाद लाला सीताराम. देवदत्त तिवारी, नन्दलाल, ज्वालाप्रसाद मिश्र ने तथा बंगला के 'पदमावती', 'कृष्णकुमारी', 'बीरनारी' आदि का बाबू रामकृष्ण वर्मा, उदित नारायण लाल, ब्रजनाथ आदि ने प्रस्तुत किए। अंग्रेजी के शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद भी तोताराम रत्लचन्द्र, मथुराप्रसाद उपाध्याय आदि के द्वारा किए गए। वस्तुतरू 19 वीं सदी के अन्त तक विभिन्न भाषाओं के अनेक उत्कृष्ट नाटकों के अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत हो गए थे, जिनकी परवर्ती नाटककारों को बड़ी प्रेरणा मिली।

1.10 प्रसाद युग के नाटक

इस युग के नाटक-साहित्य को भी विषय गत प्रवृत्तियों की दृष्टि से चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

1. ऐतिहासिक,
2. पौराणिक,
3. काल्पनिक
4. अनुदित नाटक। इनमें से प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त परिचय यहां क्रमशरू दिया जाता है।

आधुनिक युग में हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास और स्वरूप

ऐतिहासिक नाटक

इस युग के सर्व-प्रमुख नाटककार जयशंकर प्रसाद ने मुख्यत: एतिहासिक नाटकों की ही रचना की थी। उनके नाटकों का रचना-क्रम इस प्रकार है-श्सज्जन' (1910), 'कल्याणी-परिणय' (1912),

टिप्पणी

करूणालय (1913), 'प्रायश्चित' (1914), 'राजश्री' (1915), 'विशाख' (1921), 'अजातशत्रु' (1922), 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' (1926), 'स्कन्दगुप्त' (1928), 'एक घूट' (1920), चन्द्रगुप्त (1929), और 'ध्रुवस्वामिनी' (1933)। प्रसाद जी अपने जी अपने देश वासियों में आत्म-गौरव, स्वाभिमान उत्साह एवं प्रेरणा का संचार करने के लिए अतीत के गौरवपूर्ण दृश्यों को अपनी रचनाओं में चित्रित किया। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों का कथानक उस बौद्ध-युग से सम्बन्धित है। जबकि भारत की सांस्कृतिक-पताका विश्व के विभिन्न भागों में फहरा रही थी। प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति को प्रसाद ने बड़ी सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है उसमें केवल उस युग की स्थूल रेखाएं ही नहीं मिलती हैं धर्म की बाह्य-परिस्थितियों की अपेक्षा उन्होने दर्शन की अन्तरंग गुत्थियों को स्पष्ट करना उचित समझा है। पात्रों के चरित्र-त्रित्रण में भी उन्होने मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करते हुए अनमें परिस्थिति के अनुसार परिर्वतन व विकास दिखाया है। मानव-चरित्र के सत् और असत् दोनों पक्षों को पूर्ण प्रतिनिधित्व उन्होने प्रदान किया है। नारी-रूप जैसी महानता, सूक्ष्मता, 'शालीनता एवं गम्भीरता कवि प्रसाद के हाथों प्राप्त हुई हैं उससे भी अधिक सक्रिय एवं तेजस्वी रूप उसे नाटककार प्रसाद ने प्रदान दिया हैं प्रसाद के प्रायरू सभी नाटकों में किसी ने किसी ऐसी नारी-पात्र की अवधारणा हुई है जो धरती के दु:खपूर्ण अन्धकार के बीच प्रसन्नता की ज्योति की भांति उद्दीप्त है, जो पाशविकता, दनुजता और क्रूरता के बीच क्षमा, करूणा एवं प्रेम के दिव्य संदेश की प्रतिष्ठा करती है जो अपने प्रभाव से दर्जनों को सज्जन, दुराचारियों को सादाचारी, और नृशंस अत्याचारियों को उदार लोक सवा बना देती है। 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' उक्ति को इन दिव्य नायिकाओं पर पूर्णतरू लागू होती है।

इस युग के अन्य ऐतिहासिक नाटकों में बद्रीनाथ भट्ट द्वारा रचित 'चन्द्रगुप्त' (1915), 'दुर्गावता (1926), 'तुलसीदास' (1925), सुदर्शन द्वारा रचित 'दयानन्द' (1917), मुंशी प्रेमचन्द का 'कबेला (1924), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' 'वरमाला' (1925), चन्द्रराज भण्डारी का 'सम्राट अशोक' (1923), आदि उल्लेखनीय हैं। बद्रीनाथ भट्ट के नाटकों में 'दुर्गावती' सर्वश्रेष्ठ हैं। इसकी घटनाएँ द्य आधुनिक युग में हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास और स्वरूप ऐतिहासिक हैं, तथा चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता है। संवाद एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह उत्कृष्ट रचना है। सुदर्शन 'दयानन्द' चरित्र प्रधान नाटक है। चरित्र चित्रण एवं घटना क्रम के विकास की दृष्टि से यह भी एक सफल नाटक है। 'प्रेमचन्द का 'काबा कार्बला' पाठ्य रचना की दृष्टि से तो ठीक है किन्तु अभिनय की दृष्टि से दोष-पूर्ण है। नाटक की असाधारण लम्बाई, पात्रों की अत्यधिक संख्या, युद्ध मार-काट, सेना के प्रयोग आदि के दृश्यों के कारण यह अनभिनेय बन जाता है। इस वर्ग के अन्य नाटक महात्मा ईसा, 'प्रताप-प्रतिज्ञा' 'वरमाला' आदि अवश्य उच्च कोटि के नाटक हैं। इनमें ऐतिहासिकता, स्वभाविकता, एवं कल्पना का सुन्दर संयोग हुआ है।

पौराणिक नाटक

पौराणिक नाटकों की एक सशक्त परम्परा का प्रवर्तन इस युग से बहुत पूर्व ही भारतेन्दु-मण्डल के विभिन्न लेखकों द्वारा हो चुका था, जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। इस युग के पौराणिक नाटकों की एक सूची यहाँ प्रस्तुत है। 1. गंगाप्रसाद कृत रामाभिषेक नाटक' (1910), 2. ब्रजनंद कृत 'रामलीला नाटक' (1908), 3. गिरिधर लाल का 'रामवन यात्रा' (1910), 4. नारायण सहाय का 'रामलीला नाटक' (1911), 5. राम गुलाम का 'धनुष यज्ञ लीला' (1912), 6. महावीर सिंह 'नल-दमयन्ती' (1905), 7. गोचरण गोस्वामी का 'अभिमन्यु-वध' (1906), 8. लक्ष्मी प्रसाद का 'उर्वशी' (1910) 9. शिवनन्दन सहाय का 'सुदामा नाटक' (1907), 10. ब्रजनन्दन सहाय का 'उद्धव' (1909), 11. रामनारायण मिश्र का 'कंस-वध' (1910), 12. परमेश्वर मिश्र का 'रूपवती' (1907), 13. हरिनारायण का 'कामिनी' साधरण कोटि के हैं। इनमें से अनेक पर पारसी रंगमंच की छाप है।

टिप्पणी

कल्पनाश्रित नाटक

जिन नाटकों की कथा वस्तु में इतिहास पुराण और कल्पनामिश्रीत होती है उन्हें कल्पनाश्रित नाटक कहा जाता है। इस वर्ग के नाटकों के दो भेद किए जा सकते है- 1. प्रहसन एवं 2. सामाजिक नाटक। प्रहसनों के अंतर्गत मुख्यतरू जे.पी. श्रीवास्तव द्वारा रचित 'दुमदार आदमी' (1919), उलट फेर (1919), 'मर्दानी औरत' (1920), बद्रीनाराण भट्ट द्वारा रचित 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1919), विवाह विज्ञापन' (1927), बेचौन शर्मा के दो नाटक चार बेचारे सम्मिलित किए जा सकते हैं। सामाजिक नाटकों क अंतर्गत मिश्र बन्धुओं के नाटक मुंशी प्रेम चन्द्र का संग्राम, लक्ष्मण सिंह का गुलामी का नशा प्रमुख नाटक है।

अनुदित नाटक

इस युग में संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी से अनेक नाटकों के अनुवाद किए गए सत्य नारायण भवभूती के नाटकों का रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के द्विजेन्द्र लाल राय के ऐतिहासिक नाटकों का तथा रवीनद्रनाथ ठाकुर के नाटकों का अनुवाद किया। अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद भी मुंशी प्रेमचन्द्र और ललित प्रसाद शुक्ल द्वारा किया गया।

1.11 प्रसादोत्तर युग

ऐतिहासिक नाटक

इस युग में ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा का विकास हुआ। हरिकृष्ण प्रेमी, वृन्दावन लाल वर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत, उदय शंकर भक्ट इस युग के प्रमुख नाटककार हैं। हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में रक्षाबंधन (1934), शिव साधना (1937), स्वपन भंग (1940), आहुति (1940), उद्धार (1949), 'पथ (1951) , भग्न प्राचीर (1964) आदि को सम्मिलित किया गया है। प्रेमी जी ने अपने नाटकों में प्राचीन इहिास को न केवल मुगल कालीन इतिहास का संदर्भ लिया है और इसके परिपेक्ष में वर्तमान राजनैतिक, साम्प्रदायिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। वृदांवनलाल वर्मा इतिहास के विशेषज्ञ हैं उनके ऐतिहासिक नाटकों में झांसी की रानी (1948), बीरबल (1950), ललित विक्रम (1953) आदि उल्लेखनीय

सामाजिक नाटक

गोविन्द बल्लभ पंत ने अनेक सामाजिक व ऐतिहाक नाटकों की रचना की है। उनके 'राज-मुकुट' (1935), 'अन्तः पुर का छिद्र' (1940) आदि ऐतिहासिक नाटक हैं। पहले नाटक में मेवाड़ की पन्ना धाय का-पुत्र के बलिदान तथा दूसरे में वत्सराज उदयन के अन्तः पुर की कलह का चित्रण प्रभावोत्पादक रूप में किया गया है। पंत के नाटकों पर संस्कृत, अंग्रेजी, पारसी आदि विभिन्न परम्पराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। अभिनेयता का उन्होने अत्यधिक ध्यान रखा है। उनकी कला का उत्कृष्ट रूप उनके सामाजिक नाटकों में मिलता है।

पौराणिक नाटक

इस युग में पौराणिक नाटकों की परम्परा का भी विकास हुआ। विभिन्न लेखकों ने पौराणिक आधार को ग्रहण करते हुए अनेक उत्कृष्ट नाटक प्रस्तुत किए सेठ गोविन्द दास का कर्तव्य' (1935), चतुरसेन शास्त्र का 'मेघनाद' (1936), पृथ्वीनाथ शर्मा का 'उर्मिला (1950) सद्गुरूशरण अवस्थी का मझली रानी, रामवृक्ष बेनीपुरी का 'सीता की मां' गोकुल चन्द्र शर्मा का 'अभिनय रामायण', किशोरीदास वाजपेयी का 'सुदामा' (1939), चतुरसेन शास्त्री का 'राधा-कृष्ण' वीरेन्द्र कुमार गुप्त का

टिप्पणी

'सुभद्रा-परिणय', कैलाशनाथ भटनागर के 'भीम-प्रतिज्ञा' (1934), और श्री वत्स (1941), उदय शंकर भट्ट के विद्रोहिणी अम्बा (1935), और 'सगर-विजय' (1937), पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'गंगा का बेटा' (1940), डॉ. लक्ष्मण स्वरूप का 'नल-दमयन्ती' (1941), प्रभुदत्त ब्रहमचारी का 'श्री शुक' (1944), तारा मिश्रा का देवयानी (1944), गोविन्द दास का 'कर्ण' (1946), प्रेमनिधि शास्त्री का प्रणपूर्ति' (1950), उमाशंकर बहादुर का वचन का मोल' (1951), गोविन्द बल्लभ पंत का 'ययाति' (1951), डॉ. कृषण दत्त भारद्वाज का अज्ञातवास (1952), मोहन लाल 'जिज्ञासु' का 'पर्वदान' (1952), हरिशंकर सिन्हा 'श्रीवास' का 'मां दुर्गे' (1953), लक्ष्मी नारायण मिश्र के 'नारद की वीणा' (1946), और 'चक्रव्यूह' (1954), रांगेय राघव का स्वर्ण भूमिका यात्री' (1951), मुखर्जी गुंजन का शक्ति-पूजा' (1952), जगदीश का प्रादुर्भाव (1955), सूर्यनारायण मूर्ति का महा विनाश की ओर (1960) आदि । प्राचीन संस्कृति के आधार पर पौराणिक गाथाओं के असम्बद्ध एवं असंगत सूत्रों में सबंध एवं संगति स्थापित करने का प्रयास पौराणिक नाटक हमें आज के जीवन की व्यापकता एवं विशालता का संदेश देते हैं। रंग-मंच एवं नाटकीय शिल्प की दृष्टि से अवश्य इनमें अनेक नाटक दोषपूर्ण। सिद्ध होंगे किन्तु गोविन्द बल्लभ पंत, सेठ गोविन्द दास, लक्ष्मीनाराण मिश्र, जैसे मंजे हुए नाटककारों ने इसका कोई संदेह नही किया की ये नाटक विषय-वस्तु की दृष्टि से पौराणिक होते हुए प्रतिपादन-शैली एवं कला के विकास की दृष्टि से आधुनिक हैं तथा वे समाज की रूचि एवं समस्याओं के प्रतिकूल नहीं हैं।

कल्पनाश्रित नाटक

इस युग के कल्पनाश्रित नाटकों को भी उनकी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- 1. समस्या-प्रधान नाटक, 2. भाव-प्रधान, 3. प्रतीकात्मक नाटक। समस्या-प्रधान नाटकों का प्रचलन मुख्यत: इब्सन, बर्नाड शॉ आदि पाश्चात्य नाटककारों के प्रभाव से ही हुआ है। पाश्चात्य नाटक के क्षेत्र में रोमांटिक नाटकों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यर्थाथवादी नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ, जिनमें सामान्य जीवन की समस्याओं का समाधान विशुद्ध बौद्धिक दृष्टिकोण से खोजा जाता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्या प्रधान नाटकों में 'सन्यासी' (1931), 'राक्षस का मन्दिर' (1931), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिन्दूर की होली' (1934), 'आधीरात' (1937), आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे थे। मिश्र जी के इन नाटकों में बौद्धिकतावाद, यथार्थवाद, एवं फ्रायडवाद की प्रमुखता है। सामाजिक नाटकों के क्षेत्र में सेठ गोविन्द दास, उपेन्द्र नाथ अश्क, वृंदावनलाल वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। सेठ गोविन्ददास ने एतिहासिक, पौराणिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी अपने अनेक नाटकों में किया है, जिनमें से श्कुलीनता' (1940), 'सेवा पथ' (1940), 'दु:ख क्यों?' (1946), सिद्धांत स्वातंत्रय (1938), 'त्याग या ग्रहण' (1943), 'संतोष कहाँ' (1945), 'पाकिस्तान' (1946), 'महत्व किसे' (1947), गरीबी अमीरी' (1947), बड़ा पापी कौन' (1948) आदि उल्लेखनीय हैं। सेठ जी ने आधुनिक युग की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया है। ऊँच-नीच का भेद, 'भ्रष्टाचार एवं राजनीति के आधार पर नाटक लिखे। उपेन्द्र नाथ अश्क ने राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का चित्रण अपने नाटकों में किया उनके उल्लेखनीय नाटकों में कैद (1945), उड़ान (1949), छठा बेटा। (1955), अलग-अलग रास्ते प्रमुख हैं।

वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक और सामाकि नाटक लिखे नाटकों में राखी की लाज (1943), बांस की फांस (1947), नीलकंठ (1951), प्रमुख हैं। वर्मा जी ने इन नाटकों में विवाह जाति-पाति और सामाजिक बुराइयों का अकंन किया है। इस युग के अन्य सामाजिक नाटकों में उदय शंकर भट्ट का

टिप्पणी

कमला (1950), हरिकृष्ण प्रेमी का 'छाया' प्रेमचन्द का प्रेम की बेदी (1933), चतुरसेन शास्त्री का पद ध्वनि (1952), 'शम्भू नाथ सिंह का धरती और आकाश (1954), उल्लेखनीय हैं। प्रतीकवादी नाटकों की परम्परा जयशंकर प्रसाद के कामना से मानी जा सकती है। सुमित्रानन्दन का 'ज्योत्सना' (1934), भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'छलना', सेठ गोविन्द दास का नवरस एवं डॉ. लक्ष्मी नारायण दास का मादा कैक्टस' उल्लेखनीय है।

1.12 स्वातन्त्रयोत्तर युग

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हिन्दी नाटक का विकास तेजी से हुआ कुछ लेखकों ने पुरानी परम्परा का ही निर्वाह किया किन्तु कुछ लेखकों ने नए शिल्प का प्रयोग किया। इसे हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक नाटक

इस वर्ग में मुख्यतया नरेश मेहता, विनोद रस्तोगी, जगदीश चन्द माथुर, डॉ. लक्ष्मी नारायण दास एवं डॉ. शंकर शेष की रचनाएं आती हैं। जगदीश चन्द्र माथुर ने 'कोणार्क' (1952), पहला राजा (1969), 'दशरथनन्दन' (1974) में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के विषय में लिखा है। विष्णु प्रभाकर ने युगे युगे क्रान्ति 'टूटते परिवेश' आदि नाटकों में पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं को चित्रित किया है। नरेश मेहता ने सुबह के घण्टे (1956), और खण्डित यात्राएं (1962) में आधुनिक राजनिति और विसंगतियों पर प्रकाश डाला है। डॉ. लक्ष्मीनारायण ने 50 से अधिक नाटकों की रचना की है-अंधा कुआ' 'रात रानी', दर्पण, 'कपूर्य', 'अब्दुला दीवाना', 'मि अभिमन्यु' उनके महत्वपूर्ण नाटक हैं। डॉ. शंकर शेष ने अपने नाटकों में व्यक्ति समाज और संस्कृति के अन्तर द्वंद्व को उदघाटित किया है। 'बिन बाति के दीप' 'फंदी', 'खुजुराहो के शिल्पी' एक और द्रोणाचार्य, उनके उल्लेखनीय नाटक हैं।

व्यक्तिवादी नाटक

इस वर्ग में मोहन राकेश, सुरेन्द्र वर्मा, रमेश बक्षी, मुद्रा राक्षस की रचनाएं आती हैं। मोहन राकेश ने अपने तीन नाटकों 'आषाढ़ एक दिन' (1968), 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे-अधूरे' (1972), में व्यक्ति एवं समाज के द्वंद्व को प्रदर्शित किया है। सुरेन्द्र वर्मा ने 'द्रोपदी' (1972), 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' (1975), और 'आठवां सर्ग' नाटक में परम्परागत मान्यताओं को चुनौती दी है। रमेश बक्षी ने अपने 'देवयानी का कहना है' नाटक में वैवाहिक संस्था की उपयोगिता पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया है, इसी प्रकार मुद्रराक्षस ने 'तिल चट्टा' में विवाह के संबन्ध में परम्परागत मूल्यों के प्रति विद्रोह किया है। इस वर्ग के लेखकों की दृष्टि मुख्यतरू व्यक्ति स्वातन्त्रय, अहम, और प्रेम संबंधों पर केन्द्रित रही है।

राजनैतिक नाटक

राजनीति सदा से ही नाटकों का विषय बनती रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात राजनीति को आधार बनाकर अनेकानेक नाटक लिखे गए, जिनमें दया प्रकाश सिंन्हा का इतिहास चक्र एवं कथा एक वंश की विपिन अग्रवाल का 'ऊंची-नीची' टांग का जांघिया' हमीदुल्ला का 'समय संदर्भ', गिरीराज किशोर का 'प्रजा ही रहने दो' सुशील कुमार सिंह का 'सिंहासन खाली है, मणि मधुकर का 'रस-गन्धर्व' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का ष्बकरी' विशेष उल्लेखनीय हैं इनमें एक ओर जनता का शेषण करने वाले राजनीतिज्ञों का भण्डाफोड़ किया गया है तो इसमे दूसरी ओर सत्ताधारी वर्ग द्वारा किए जाने वाले अनाचार, दुराचार और भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है। इसके अतिरिक्त शरद जोशी का अन्धों का हाथी मन्नू भण्डारी

टिप्पणी

का बिना दिवार का घर, 'शम्भू नाथ सिंह का 'धरती और आकाश' आदि भी उल्लेखनीय रचनाएं है। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में डॉ. कुसुम कुमार का नाम भी महत्त्वूपर्ण 'संस्कार को नमस्कार' 'रावण लीला', इनके महत्वपूर्ण नाटक हैं।

1.13 उपसंहार

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी नाटक का विकास अनेक रूपों और अनेक दिशाओं में हुआ है। यद्यपि प्रारम्भ में हिन्दी रंगमंच के अभाव तथा एकांकी रेडियो रूपों एवं चलचित्रों की प्रतियोगिता के कारण इसकी विकास की गति मंद रही परन्तु स्वतन्त्र संस्थाओं द्वारा नाटकों का अभिनय किया जाता रहा है, टेलिविजन में दिखाए जाने वाले उबाउ विषयों से दर्शक धीरे-धीरे नाटक देखने की ओर पुनरू उत्सुक हो रहे हैं। आशा है नाटकों का विकास पूर्व की भांति निरन्तर होता रहेगा।

1.14 प्रश्नबोध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **'नाटक' हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली विधा है इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?**
2. **भारतेन्दु हरिश्चन्द ने 'नाटक' नामक निबन्ध में क्या टिप्पणी की है?**
3. **विविध नाटककारों में नाटक की क्या परिभाषाएँ दी हैं?**
4. **भारतेन्दु हरिश्चन्द के सभी नाटकों के नाम तथा उनके वर्ष लिखिए।**
5. **राधाकृष्ण के द्वारा रचित किन्हीं तीन नाटकों के विषय में टिप्पणी लिखिए।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **आधुनिक युग की स्थिति का परिचय दीजिए।**
2. **आधुनिक युग ने नाट्य शास्त्र को क्या योगदान दिया है? समीक्षा कीजिए।**
3. **हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का वगीकरण कीजिए।**
4. **नाट्यशास्त्र को रचयिता का नाम लिखते हुए ग्रन्थ की समीक्षा कीजिए।**
5. **साहित्य के स्वरूपों की व्याख्या कीजिए।**

♦♦♦♦♦

इकाई 2

मोहन राकेश: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 व्यक्तित्व
2.3 कृतित्व
2.4 कथेत्तर साहित्य
2.5 निष्कर्ष
2.6 प्रश्नबोध

2.1 प्रस्तावना

मोहन राकेश आधुनिक हिंदी साहित्य में कथा एवं नाट्य साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनके नाट्य साहित्य पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पर्याप्त मात्रा में शोधकार्य व प्रबंधन लेखन होते रहे हैं। मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा के धनी कहलाते हैं। उन्होंने कहानी नाटक और उपन्यास जैसी साहित्यिक विधाओं में मौलिक लेखन किया है। किसी ने सही कहा है कि कलाकार या साहित्यकार की प्रेरणा-भूमि वेदना होती है। किसी की वेदना भौतिक और सांसारिक होती है, तो किसी की मानसिक। किसी भी दृष्टि के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। संस्कृत कवि भवभूति ने 'एकीरस करूणास्व' कहकर वेदना को महत्ता प्रदान की है। ठीक उसी प्रकार कवि पंतजी ने भी "वियोगी होगा पहला कवि, आह के उपजा होगा गानश' कहकर वेदना ही प्रकट की है। हमारे साहित्यकार राकेश जी भी इससे अलग नहीं हैं। राकेश जी महाकवि निराला की परंपरा को पुष्ट करने वाले साहित्यकार हैं, जिन्होंने संपूर्ण वर्ग की वेदना को इसलिए अपने चारों ओर लपेट लिया कि उसकी समस्याओं का कोई समाधान प्राप्त कर सकें।

राकेशजी को एक व्यक्ति, एक मनुष्य, एक लेखक के रूप में जा नने-समझने के लिए उनका स्वयं का संपूर्ण साहित्य ही आईना है। उनकी रचनाएँ ही उनके व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती हैं। राकेशजी हमेशा संवदेनशील रहे हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व और स्वभाव सामान्य से बिल्कुल भिन्न है। भीड़ से बिल्कुल अलग दिखाई देने वाले व सारे समूह के बीच में अकेले से लड़ने वाले व्यक्ति राकेश जी ही थे। बाह्य रूप से देखें तो एक खूबसूरत नौजवान, जिन्दादिल, स्पष्टवादी, जोर-जोर से ठहाके लगाता हुआ, आत्मीयता प्राप्त करने हेतु प्रसिद्ध कॉफी की चुस्कियों के साथ जीने वाले आदमी मोहन राकेश ही थे, किन्तु आंतरिक दशष्टि में कहीं बहुत वीरान और उदास थे। उनके जीवन में अनेक ऐसी छोटी-बड़ी घटनाओं का संकलन रहा है, जिन्होंने उनके अन्दर बैठे रचनाकार को झंकझोर दिया है और प्रभावित किया है।

2.2 व्यक्तित्व

साहित्य, समाज और साहित्यकार तीनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। 'साहित्य के तात्पर्य' नामक लेख में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है 'साहित्य में मनुष्य अपने ही अंतरम का परिचय देता है। अपने अगोचर में जैसे परिचय देता है पुष्प अपनी सुगंध में, नक्षत्र अपने आलोक में।

मोहन राकेश का व्यक्तित्व और कृतित्व एक-दूसरे में समाहित है। एक इंटरव्यू में उनकी पूर्व पत्नी सुशीला डोभाल ने कहा है कि 'हमारा अलगाव पर्सनैलिटी का क्लैश (व्यक्तित्वों का द्वंद्व) था। कोई कटुता नहीं थी। बस जैसे दो बुद्धिमान लोग अलग हो अच्छे ढंग से, वैसे ही अलग हुए। 'राकेश के संपूर्ण रचना के पात्रों में ये पर्सनैलिटी का क्लैश दिखाई देता है। आगे सुशीला डोभाल ने स्पष्ट किया है कि 'मोहन राकेश सीधे-सादे थे। तिगड़मी नहीं थे। गोटियां बिछाने वाले नहीं थे।' मोहन राकेश के व्यक्तित्व पर उनके भौगोलिक और सामाजिक परिवेश की गहरी छाप रही। उनके व्यक्तित्व को अगर पंजाबियत से भी परिभाषित करें तो कतिपय गलत नहीं होगा। उनकी हंसी तो 'कुख्यात' थी, जिसे महानगरीय लोग असभ्य की श्रेणी में रखते हैं। 'भारती, कमलेश्वर और राकेश के ठहाके बहुत मशहूर हैं, लेकिन उनमें राकेश का ठहाका बहुत जानदार था। ऐसा लगता जैसे हंसी का भूचाल आ गया, पूरा जिस्म हिलता है। जिस्मों जान की रग में वह ठहाका मचलता है।' राकेश के एक मित्र ने अपना कहानी संग्रह उनके नाम समर्पित करते हुए लिखा है कि 'राकेश के नाम, जिनके कहकहों से अक्सर मैं डर जाता हूँ।' संभवत: ये हंसी ही थी जिसके माध्यम से वे अपने अंतर्द्वद्व और मन: स्थिति को छुपा लेते

टिप्पणी

थे। वे पूरी जिंदगी विपरीत परिस्थितियों से घिरे रहे, लेकिन किसी के आगे मदद के लिए हाथ नहीं फैलाया। उलटा इस बीच मदद मांगने वालों को उन्होंने निराश भी नहीं होने दिया।

'उनके अंदर दो मोहन राकेश थे, दोनों में भीतर ही भीतर तीव्र और गहरा संघर्ष चल रहा था। उनकी रचनाओं में वही प्रकट हुआ है। भीतर जितनी टूटन और बिखराव था, बाहर उतने ही ज्यादा संवरे हुए, सलीकेदार और परिष्कृत व्यक्ति थे। उनके मित्र कमलेश्वर ने लिखा है 'राकेश कहीं टिकता नहीं और. ... टिकता है तो उठता नहीं...कि वह सिर्फ यह चाहता है कि सबकी परेशानियां वह ओढ़ ले, उसके बारे में कोई बात न की जाए। कि वह लोगों को रगेदने के लिए पीछा करता है और उसकी हंसी में जहर बुझा हुआ है।..... कि वह अपने में मस्त है और ऐसे निश्चल ठहाके लगाता है जो दुश्मन को भी दोस्त बना लेता है।' राकेश ने यारी की और निभाई भी। इसी कारण उन्हें कई बार नौकरी छोड़नी पड़ी, कई बार सामाजिक और आर्थिक संकटों का भी सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि उन्होंने दोस्त के लिए अपनी पारिवारिक जिदंगी को भी खतरे में डाला, लेकिन ये दोस्ती उनके जीवन में कहीं-कहीं ही काम आई। बाकी अधिकतर जगहों पर उन्हें निराश ही हाथ लगी। खासकर अपने साहित्यकार मित्रों से।

उनकी पत्नी अनीता राकेश ने लिखा है कि 'दोस्त इतने प्यारे थे कि लदे हुए बढ़ते चले आ रहे हैं। सीढ़ियों पर अनाप-सनाप टाइम हो या.....और अनाप-सनाप संख्या चली आ रही है। मोहन राकेश ने खुद भी माना है कि उनके लिए दोस्ती सब कुछ है। उन्होंने कहा है 'तुम मेरे दोस्त हो तुम किसी का खून भी करके मेरे पास आओगे, मेरे दरवाजे तुम्हारे लिए खुले हैं।' राकेश के दोस्त भी उन्हें इसी तरह हाथों-हाथ लेते थे। राकेश के दिल्ली से जालंधर जाने पर उनके दोस्त रवीन्द्र कालिया ने लिखा 'मैं इतना उदास हो गया, जैसे कोई प्रेयसी विदा हो गई हो।

'बचपन से लेकर जीवन के अंत तक राकेश विभिन्न स्तरों पर निरंतर जूझते रहे। उनके जीवन की घटनाओं ने उन्हें जुझारू, संघर्षशील और स्वतंत्र प्रवशत्ति का बना दिया। राजेंद्र यादव ने लिखा है कि 'अपने आप में वह निहायत चौलेजिंग पात्र तो है ही दोस्तोयवस्की के पात्रों की तरह।'

जन्म जन्मस्थान-मोहन राकेश का पूरा नाम मदन मोहन गुगलानी था। उनका जन्म 8 जनवरी 1925 को पंजाब प्रांत के अमश्तसर नगर में हुआ। राकेशजी के पिता करमचन्द गुगलानी पेशे से वकील थे। वे अमश्तसर के प्रतिष्ठित नागरिक, जागरूक कार्यकर्ता, साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के पदाधि कारी एवम् साहित्य-संगीत में रूचि रखने वाले थे। बचपन कच्ची कोंपल के समान होता है जिधर भी मोड़ो मुड़ जाएगा। बचपन में पड़े प्रभाव व संस्कार पूरी जिन्दगी अपना अमिट प्रभाव बनाए रखते हैं। इनके पिता साहित्य प्रेमी तो थे ही, इसलिए बैठकों में मित्रों के बीच आदिकाल से लेकर आधुनिक काल के साहित्यकारों की आलोचना को राकेश जी बड़े ध्यान से सुनाते थे। इन साहित्यिक गोष्ठियों का गहरा प्रभाव राकेश जी पर पड़ा। बचपन से ही अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति सतर्कता और प्रतिक्रिया का भाव राकेश जी के मन में पैदा हुआ। राकेश जी को जन्म के समय परिवार में जो परिवेश प्राप्त हुआ वह प्रभावपूर्ण और संतोषप्रद भी नहीं था। घर में आर्थिक विपत्ति, सीलन से भरा घर, माँ-दादी का अंकुश उनके बाल मानस पर अपने प्रभाव छोड़ता रहा। इन्हें जिस परिवेश में साँस लेनी पड़ती थी, वह अवांछित और एक भावी कलाकार के मन को कैसे भाति? शायद यही कारण रहा कि राकेशजी के मन में हमेशा दुनिया निकट से देखने एवम् जीवन अपने ढंग से जीने की कामना रही।

राकेश जी का बचपन जहाँ एक ओर साहित्यिक वातावरण से पूर्ण था, वहीं दूसरी ओर अपनी दादी माँ के अपार स्नेह के कारण अंध-विश्वासों से ओत-प्रोत भी था। दादी का महत्वपूर्ण व्यक्तित्व राकेश जी को हर नजर से बचाए रखना चाहता था। भूत-प्रेत, जादू-टोने, डायन आदि का इस तरह डर दिखाया जाता कि बचपन घर की चार दीवारों में ही बीता। आँख बचाकर कभी गली में निकल भी

टिप्पणी

गए तो पकड़कर फिर बन्द कर दिया। जाता। नाचने का मन होता, गली में धमाचौकड़ी मचाने को जी ललचाता, किन्तु दादी की आँखों से डरकर सीलन व बदबू तथा घी, अनाज, तरकारियों, धूप-चंदन की खूशबू से मिश्रित घर में बन्द रहना पड़ता था। इस प्रकार बचपन में राकेश जी की अलग ही दुनिया थी। उन्होंने स्वयं लिखा है-'कभी चीटियों की पंक्तियों के साथ दीवार के सुराखों की यात्रा करता हूँ। कभी धूप में उड़ते जरों को आपस में लड़ाया करता हूँ। दीवारों के टूटते पलस्तर से लेकर हौज के बहते पानी तक मैं तरह-तरह के चहेरे खोजता हूँ।राकेश जी का बचपन कर्ज का बचपन था। वकील होते हुए भी उनके पिता कर्ज से लदे थे।

राकेश जी ने बचपन में ही कर्ज वसूल करने वालों को घर आते-जाते देखा था। इन्हें पं. लोकनाथ एवम् सरदार विहालसिंह से बड़ी चिढ़ थी, जो कर्ज वसूल करने आते थे।

बचपन में किसी चीज न छूना कड़े अनुशासन को प्रेरित करता था। धन के अभाव के कारण मकान की मरम्मत नहीं हो पाती थी। दादी माँ का पूजापाठ देखकर बाल राकेश के मानस पट पर नाना प्रकार के विचार उठते थे। इस तरह धीरे-धीरे ये बाह्याचार, अनुशासन, नियम आदि के कारण रूढ़ियों के कट्टर आलोचक बने और यहीं से गंभीर चिन्तन और मनन का प्रवेश हुआ। हर स्थिति पर गहराई से सोचने की, सोचते रहने की प्रवशत्ति बनती गई। उनकी बाल्यावस्था में ही पिता का असमय निधन हुआ। घर का कारभार - 16 वर्ष की अल्पायु में राकेश जी के नाजुक कन्धों पर आ पड़ा। इस जिम्मेदारी को निभाने में इन्हें कटु सत्यों का सामना करना पड़ा। अपने पिता की मश्त्यु का कारूणिक दश्श्य हमेशा उनके मानस-पट पर छाया

पिता की मृत्यु पर माँ की सोने की चूड़ियाँ बेचकर किराया चुकाने के बाद ही मुर्दा उठने देना एक ऐसी प्रक्रिया थी जो उनके जीवन का एक कटु अनुभव बन गई। अनेक ऐसी घटनाएँ घटित हुई जिनसे उन्हें यही लगता रहा कि कभी कभी ऐसी घटनाएं घटित हो जाती है जो कभी नहीं बीतती। "पिता की मृत्यु के बाद अनेक शोक सभाएँ हुई, भाषण हुए लेकिन सब निरर्थक थे। फिर कोई झाँकने भी नहीं आया।' इसीलिए राकेशजी मुख्य रूप से जिन्दगी की असलियत जीना चाहते थे। जैसे है वैसे बनकर जियें और विश्वास के साथ जियें, तो इनके हितों को क्या क्षति पहुँचेगी?

अल्पायु में ही लोगों के नकली मुखोटों के प्रति राकेश जी सचेत हो गए। अपने से बाहर घर को, घर से बाहर सामाजिक बंधनों को प्रश्नात्मक दृष्टि से देखने लगे। राकेशजी यही साचते रहे कि लोग दिखावटीपन की झिल्लियाँ उतारकर क्यों नहीं रखते? पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारंभ किया। राकेश उपनाम रखकर वे मोहन राकेश बन गए।

शिक्षा - राकेश की प्रारंभिक शिक्षा अमृतसर में हुई। लाहौर से उन्होंने मात्र 16 साल की उम्र में 'शास्त्री' की उपाधि हासिल की, फिर अंग्रेजी में बी.ए. पास की। भारत-पास्तिान विभाजन के बाद राकेश ने जालंधर से हिंदी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा पास की। राकेश ने शिक्षा विषम परिस्थितियों में ग्रहण की। बहन स्कूल में काम करके घर चलाती थी और राकेश ट्यूशन से अपना खर्च निकालते थे। परिस्थितियाँ ऐसी आ गई कि बहन घर को संभाल न सकी और इधर राकेश जी का ट्यूशन भी बंद हो गया। यदि उस समय कालेज के प्रिंसिपल स्व० लक्ष्मण स्वरूप उनकी सहायता न करते तो वह बोरिया बिस्तर बांधकर घर लौट आते।"

अध्ययन - अध्यापनकृ"संस्कृत में एम.ए. के बाद मदन मोहन गुगलानी ने सबसे पहले फिल्मों के लिए कहानी लिखने का काम हाथ में लिया। बहुत जल्द उन्हें पता चल गया कि ये काम उनकी पद्धति के अनुकूल नहीं है।' उन्होंने कृष्णचंदर से भी कहा था, 'जिस तरह तुम फिल्मों के लिए लिख लेते हो

टिप्पणी

मैं नहीं कर सकता। कैसे तुम ऐसी फिल्मों के लिए लिख देते हो। मैं दो खाने नहीं बन सकता, मेरा सारा वजूद एक खाना है।' इसके बाद उन्होंने 1947 में बम्बई विश्वविद्यालय के एलफिन्स्टन (सिडनहम कॉलेज आफ कॉमर्स, बम्बई) में लैक्चररशिप ज्वॉइन की, लेकिन आँखों के कमजोर होने के कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी। इसके बाद उन्होंने जालंधर के डी.ए.वी. कालेज में बतौर प्राध्यापक ज्वॉइन किया, लेकिन टीचर्स यूनियन की गतिविधि में शामिल होने के कारण यह नौकरी भी छोड़नी पड़ी। अपने इस अनुभव को उन्होंने लड़ाई नामक कहानी में पाठकों के साथ साझा किया है। कुछ समय बेकारी झेलने के बाद शिमला के बिशप कॉटेज स्कूल में नौकरी मिल गई, किन्तु यहाँ से भी उनका मन जल्द ही भर गया और 1952 में उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद फिर उन्हें जालंधर के डी. ए.वी. कॉलेज में हिंदी विभाग का अध्ययक्ष बना दिया गया। यहाँ भी बंधनों से मुक्त होने के लिए उन्होंने 1957 में इस्तीफा दिया, लेकिन आर्थिक कारणों से फिर उन्हें 1960 में दिल्ली विश्वविद्यालय में लैक्चररशिप ले ली और शीघ्र ही उसे भी छोड़ दिया। उन्हें किसी तरह का बंधन मंजूर नहीं था, चाहे वह परिवार का हो या फिर नौकरी का। अपनी डायरी में उन्होंने लिखा है 'बहुत कोफ्त होती है इस जिंदगी में, वही रोज की जिंदगी। अनचाही अनमने ढंग से काम ..... वरना सारा टैस्टमैंट बदल गया ..... होता एक-एक करके सात-सात पीरियड। इससे कहीं आसान था क्रॉस कंधों पर लेकर चलना।' अपनी मजबरी में उन्होंने नौकरी के रूप में ही अध्यापन कार्य किया, लेकिन लेखन में बाधा होने के कारण वह यहाँ भी ज्यादा समय तक नहीं टिक सके।

पारिवारिक जीवन- "मोहन राकेश ने संघर्षपूर्ण जिन्दगी पाई थी। संघर्षपूर्ण जिन्दगी की सारी उलझने कड़वाहट और अनुभूतियाँ उनकी रचनाओं में मुखोटा लगाए हुए दिखाई पड़ती हैं।" इसी संघर्षमय जीवन में पारिवारिक सुख की लालसा से उन्होंने सन् 1950 में विवाह किया। उन्होंने विवाह तो किया किन्तु उनका मन कुछ उदास सा रहता। उसे महसूस हुआ कि विवाह के साथ ही सहसा मैंने अपने को रुके पाया, रुके हुए ही नहीं जड़ और स्तभित। मैं जहाँ था वहाँ अपने को पाने के लिए या मानने के लिए कि मैं वहाँ हूँ, तैयार नहीं था। - राकेशजी ऑडंबरहीन थे। भावुक हदयी होने के कारण उन पर किसी भी बात का असर बहुत अधिक एवम् जल्दी पड़ता था। चे अहवादी थे। अपने अहं की उपेक्षा वे सहन नहीं कर पाते थे। वास्तविकता ही उनकी आस्था थी। यही कारण रहे कि उन्हें अपने इस वैवाहिक जीवन में असफल रहना पड़ा। राकेशजी ने स्वयं लिखा है कि- ष्विवाह नाम है समझौते का, एडजेस्टमैंट का, पर अगर दोनों ओर से हो तब न ..... अगर दोनों ही अपनी कामनापूर्ति के लिए एक दूसरे के लिए नहीं हैं, तो हालाकि कभी-कभी इस नये वातावरण के नये असर की अनुभूति तन-मन भर देती और जीने और काम करने की कामना को उससे उकताहट भी मिलती, लेकिन यह अनुभूति भी उसके साथ स्थायी नहीं रह पाती। तनाव के उलझनों के क्षण बार-बार आते रहते। 'मैं' का प्रश्न अपने व्यक्तित्व का प्रश्न स्वतंत्र होकर लेखन की छटपटाहट निरंतर बढ़ती जाती। तुम जो हो, वह भी बनी रहना चाहो और अतिरिक्त लेना चाहो वह क्यों होगा.....। किसी दूसरे को उपादान रूप में कभी मत ग्रहण करो, पुरुष हो, भावना हो या पत्थर। अपने से बाहर उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारो, फिर उसे छुओ ..... देना भी एक उपलब्धि है, उसमें भी सार्थकता है।"

राकेशजी पहले लेखक थे फिर पति। वे विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए स्वच्छंद भी रहना चाहते थे। अपने लेखन कार्य में बिलकुल स्वतंत्रता उनका ध्येय था। वह अपने बाह्य अस्तित्व को किसी भी प्रकार कम नहीं होने देना चाहते थे। इस कार्य में उनके साहित्यिक मित्रों ने राकेशजी को बहुत सहयोग दिया। उनके वैवाहिक जीवन को बनाए रखने में समझौता करवाने में इन सबका बहुत प्रयास रहा। राकेशजी की प्रथम पत्नी भी अहंवादी थी। शायद यह भावना राकेशजी के समकक्ष पढ़ी-लिखी होने के कारण थी। वह नौकरी करती थी एवम् वेतन भी राकेशजी की तुलना में अधिक पाती थी। स्वतंत्र

टिप्पणी

विचारों की महिला किसी भी प्रकार की परिस्थिति का मुकाबला करने को सदैव तत्पर थी। अतएव दोनों ही अहंवादी एवम् अपनी बातों पर अड़े रहने वाले थे। यही कारण था कि इनके वैवाहिक जीवन में दरार पड़ती गई। राकेशजी इस स्थिति में घर में घुटन अनुभव करने लगे। घर की आर्थिक स्थिति भी कुछ डाँवाडोल होने के कारण वे काफी द्विधा का अनुभव कर रहे थे। "सन् सतावन के अगस्त महीने में सम्बन्ध-विच्छेद के कागज पर हस्ताक्षर करके अपने असफल विवाह-सम्बन्ध से भी मुक्त हो चुका था ।"

उन्हें अपनी पत्नी की कमी का अहसास भी हुआ था। उनके एक मित्र ने लिखा है, "उनकी पत्नी वापस चली गई, परंतु घर को लगता था, अभी भी किसी छाया ने ग्रसा हुआ है। राकेशजी वैसे बहुत सेंसेटीव थे। किसी बात को लेकर परेशान हैं, यह वे आराम से स्वीकार नहीं करते थे, परंतु उस दिन मेरे साथ वे कुछ अधिक कोमल हो उठे। ..... उस दिन जब मैंने उन्हें कुरेद दिया तो सुबक पड़े।

राकेशजी एक सुखी परिवार की खोज में हमेशा रहे किन्तु उन्हें अपने जीवन में वही नहीं मिला। उनके जीवन में अनेक प्रेमिकाएँ आई जिन्हें उन्होंने 'कश, 'र' 'स' आदि नामों से पुकारा है। उन प्रेमिकाओं में उन्हें या तो वासना की गंध मिली या बचपना। परिपक्वता जो वह चाहते थे किसी में न मिली। उन्होंने शादियाँ भी की किन्तु किसी भी शादी को सफलता न मिली। कहीं पत्नी का अहम् आगे आता, तो किसी पत्नी का पागलपन। अपनी पहली पत्नी से तो तालमेल बिठाना भी चाहते थे किन्तु दोनों का अहम् आड़े आता था। गृहस्थी की गाड़ी क दोनों पहियों में से एक के खराब होने पर दूसरा उसे जैसे-तैसे खींच सकता है, किन्तु दोनों पहियों के टस से मस न होने पर उसे कौन हिला सकता है? यही हाल राकेशजी का रहा और उसका अन्त तलाक में परिवर्तित । गया। यद्यपि राकेशजी अपने इस बिखराव को समेटना चाहते थे, किन्तु वह बिखरता ही गया। उनके जीवन में प्रेमिकाओं का चक्र चलता रहा। उनका व्यक्तित्व लड़कियों को अपनी ओर आकर्षित करता था किन्तु अपरिपक्व मानसिकता से ही इनका सम्बन्ध हुआ। राकेशजी में पुरुषत्व का अहम् था। वह अपने पर आश्रित पत्नी चाहते थे और उसी में इन्हें धोखा होता रहा। बार-बार विवाह-तलाक होने के कारण राकेशजी अंदर से टूट गए। पारिवारिक शांति की तड़प इनमें रहने लगी। धीरे-धीरे विवाह के नाम से भी घृणा उत्पन्न हो गई। कुछ लेखकों ने राकेशजी पर आरोप भी लगाया है कि कपड़े बदलने के समान राकेश पलियाँ बदलता रहा। यह सही है कि बार-बार विवाह व तलाक से पारिवारिक असंतोष ही उत्पन्न होता है किन्तु कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसा वातावरण उपस्थित कर देती हैं कि मनुष्य उनके सामने विवश हो जाता है।

इन परेशानियों के मध्य राकेशजी ने अपना लेखन कार्य चालू रखा। पुनरू 9 मई 1960 को राकेशजी दाम्पत्य सूत्र में बंध गए। उन्हें लगा कि इनकी खोज पूरी हो गई किन्तु यहाँ भी वे धोखा खा गए। यह लड़की मानसिक रूप से विक्षिप्त थी, इस लड़की के कारण अनेक जगह अपमानित होना पड़ा। यहाँ तक की 'सारिका' के कार्यालय से कार्य छोड़ देना पड़ा। तरह-तरह के लाँछन लगाए गए। अन्त में इस घुटन भरी जिन्दगी का अंत भी तलाक के रूप में हुआ।

अन्त में अनीता इनके जीवन में रोशनी बनकर आई। जीवन की सारी खुशियों से जिनकी झोली भरने को राकेशजी तत्पर रहते थे। अपने संबंध में उन्होंने लिखा है-"अनीता तुम तीसरे नंबर पर हो, पहले नंबर पर मेरा लेखन, दूसरे पर मेरे दोस्त, तीसरे पर तुम।" अनीता के साथ उन्होंने अपना नया गृहस्थ जीवन प्रारम्भ किया। अपने दोनों बच्चों पूर्वा एवम् शैली से बहुत स्नेह रहा। राकेशजी का पत्नी प्रेम भी कम नहीं था। उसी प्रेम से उन्होंने एक जीवन - तथ्य को स्पष्ट किया कि स्त्री - पुरुष के संबंध का आधार सेक्स ही नहीं है, उससे हटकर भी कुछ है, जो उम्र और शरीर के ढलान के साथ जुड़ा नहीं है।

टिप्पणी

आंतरिक व्यक्तित्व- पारिवारिक विडम्बनाओं, पिता की मृत्यु, सोलह वर्ष की आयु में परिवार का सारा बोझ, विवाह, तलाक, पुनरूविवाह, जीवन की अस्थिरता आदि ने राकेशजी की रचनाओं को एक नई दिशा प्रदान की। राकेशजी के विषय में लेखकों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं, कोई उसे निहायत गैरजिम्मेदार बताता है कोई कहता है लिखता तो बहुत अच्छा है किन्तु आदमी अच्छा नहीं है। वह सकून की खोज में खाना-बदोशों की तरह भागता फिर रहा है। उनके व्यक्तित्व की ये बातें हमें उस बिन्दु पर ले जाती है जहाँ हम अनुशासनहीनता और बिखराव पाते हैं।

"वह निहायत गैर-जिम्मेदार और अनुशासनहीन व्यक्ति है, वह संवेगों के आवेश में काम करता है, एक सही काम करते-करते तुनक कर गलत काम कर बैठता है ..... पर सतह से नीचे उतरते ही जबरदस्त अनुशासन-दिखाई पड़ता है। वह अनुशासन है दिमाग का और अनुशासन का। उपरी जिंदगी में यह असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है उतना ही संगठित और सुव्यवस्थित है उसके लिखने की प्रक्रिया ..... और सृजन के इसी संतुलन, संवरण, संगठन और अनुशासन के लिए यह आदमी भागता है कभी कश्मीर, कभी डलहौजी, कभी शिमला और कभी सुनसान वीरानों में।"

राकेशजी नाटककार से पहले कहानीकार थे किन्तु सन् 1958 में प्रकाशित 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक ने नाट्य जगत में धूम मचा दी। इस नाटक में लेखक का स्वयं का जीवन झाँकता है। 'लहरों के राजहंस' व 'आधे-अधूरे' में पारिवारिक असंतोष, घुटन का प्रभाव है। राकेशजी का जीवन अस्थिर और अनिर्णित रहा। कभी कुछ छोड़ा कभी कुछ ग्रहण किया। पद-त्याग एवम् पत्नी-त्याग की प्रक्रिया उनके जीवन में समानान्तर चलती रही। जितनी तीव्रता ग्रहण करने के प्रति रहती थी उतनी ही छोड़ने के प्रति भी। इससे उनके व्यक्तित्व का यही मनोवैज्ञानिक तथ्य उजागर होता है, कि उन्होंने चुनाव में गलतियाँ की थी। फिर चाहे वह घर हो या व्यावसायिक जीवन। यही गलत चुनाव की स्थिति उनके नाटकों के कई पात्रों में देखने को मिलती है।

जो लोग राकेशजी के परिचय परिधि में थे, वह उन्हें अच्छी तरह जानते थे कि उनके पास आत्मीयता का अक्षय कोष था। उसे वह सदाव्रत की तरह बाँटा करते थे। इस कारण हर किसी को उनका अंतरंग होने का दावा करने का मन करता। मित्रता उनके लिए सर्वोपरि थी। कमलेश्वर, अश्क, दुष्यन्त, राजेन्द्र यादव, जगदीशचन्द्र माथुर, महेन्द्र भल्ला, जैनेन्द्र, सुरेन्द्र चतुर्वेदी आदि उनके अभिन्न मित्रों में से थे। दोनों ओर के समान भाव सच्ची मित्रता को जन्म देते हैं। यही कारण रहा कि कितनी भी नाजुक परिस्थिति राकेशजी की रही हो, उनके मित्रों ने उन्हें कभी अपने से अलग नहीं माना। सब एक परिवार के समान थे। घर में दोस्तों को लेकर साहित्य चर्चा, गपशप में उन्हें खुशी मिलती थी, आत्मिक सुख मिलता था। राकेशजी ने अपने मित्रों के बीच रहकर जीना सीखा। इनके पारिवारिक विघटन के दौरान भी इनके ये दोस्त ही आगे आकर उनका हाथ बंटाते रहे। उन्हें अपने जीवन में कभी अकेलेपन का अनुभव नहीं हुआ। मित्रों के बीच परिवार एवम् बच्चों का जिक्र खुले रूप से करते थे। बचपन को वे स्वर्णिम अवस्था मानते थे। बच्चों को देखकर स्वयं बचपन के प्रति लालायित हो उठते थे। इसीलिए अपनी डायरी में जहाँ भी बचपन संबंधी कुछ लिखना हुआ है वे भावुक हो उठे हैं।

राकेशजी का व्यक्तित्व कल्पनात्मक व्यक्तित्व था। छोटी से छोटी बात भी उन्हें सोचने को मजबूर कर देती थी। फिर चाहे वह थर्ड क्लास का वेइटींग रूम हो या बम्बई का इक्वेरियम। सौन्दर्य किसे प्रभावित नहीं करता, प्रत्येक व्यक्ति सुन्दरता की ओर आकर्षित होता है। अन्तर रहता है तो सिर्फ चिन्तन का। कुछ सुन्दरता देखकर आह्लादित होते हैं तो कुछ उसको बनाने वाले के विषय में कल्पनात्मक विचरण करने लगते हैं। इसी प्रकार राकेशजी छोटी-छोटी रंग-बिरंगी मछलियों को देखकर, फूलों व तितलियों के रंग एवम् आकार के वैविध्य को देखकर इनकी सृष्टि करने वाले की सूक्ष्म दृष्टि के बारे में सोचते हैं।

टिप्पणी

इनका लेखकीय व्यक्तित्व बहुत जल्दी शुरू हो गया था। चारों ओर के वातावरण ने उन्हें लेखन कार्य की शक्ति दी। लेखन कार्य करने के लिए शान्त वातावरण हेतु राकेशजी जगह-जगह घूमते रहे। सभी जगह प्रकृति सौन्दर्य ने इन्हें अपनी ओर रिझाया है। रात को सोते समय भी समुद्र की गर्जन, बादल, बिजली, वर्षा आदि राकेशजी में प्रकृति के प्रति एक ललक पैदा करते रहे। लेखन आपके लिए हमेशा अग्रणी रहा और नौकरी एक बन्धन। नौकरी तो सिर्फ आर्थिक संरक्षण के लिए की, फिर भी उससे भागने की ही सोचते रहे। अपने मन से स्वयं प्रश्न उत्तर करते रहते। वह सोचते रहते कि नौकरी एक बंधन है, इस नौकरी के फन्दे को गले से उतार कर खुली स्वतंत्र हवा में जीना चाहते थे। जीवन में ख्याति को उन्होंने कभी उपलब्धि नहीं माना। इनकी उपलब्धि इनकी खोज है, उसे पाना चाहते थे। स्वच्छंद प्रकृति के राकेशजी भला बंधन कैसे स्वीकार करते?

मित्रों, पत्नियों एवम् प्रेमिकाओं के सहचर्य ने-व्यवहार ने उनकी दृष्टि, उनके विश्वास और जीवन के दृष्टिकोण को ही बदल डाला। वह सरल हृदय व्यक्ति थे तभी किसी भी व्यक्ति पर विश्वास कर लेते थे और इसी विश्वास ने उन्हें जगह-जगह पर छला है। उनका यह कथन सही है कि, "सबसे गहरे घाव उनके हाथों से लगे हैं, जिन्हें मैंने वर्षों अपने घनिष्टतम मित्र माना है।" यहीं पर वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सभी संबंधों के निर्वाह के लिए कूटनीति (डिप्लोमेसी) आवश्यक है। वे स्पष्टवादी थे यही कारण रहा कि, वे अपने लिए एक

चेहरा व दुनिया के लिए दूसरा चेहरा न रख सके। इसी कमजोरी के कारण जगह-जगह उन्हें विश्वासघात का शिकार होना पड़ा। जिस मित्र को अपने से बड़ा मानकर उसे प्यार किया। उसकी कद्र की उसीने अन्त में उन्हें भला-बुरा कहा। इसी से राकेशजी ने अनुभव किया कि शरीर के दर्द से आदमी कराहता है किन्तु विश्वासघात के दर्द से आदमी दबता है, टूटता है इसी कारण उनके जीवन में दर्द अधिक है। "मानवी संबंध 'म्दजमतदंस' तो होते नहीं। मित्रता और मानवी संबंध के विश्वास को उस घटना (मित्र का अपनी बहन पुष्पा के प्रति प्रेम) ने इतनी चोट पहुँचाई कि लगता है, प्रत्येक पर सन्देह करना चाहिए मन में सन्देह उठे तो भी उसे दबा देना चाहिए। जीवन विश्वास से नहीं 'टेक्ट' से चलता है।" इसी 'टेक्ट' (चातुर्य) की इनमें कमी थी। कई बार के अपने आप से ही टूट जाते हैं, स्वयं से ही विरोध कर बैठते हैं। स्वयं से ही अपने दुश्मनों की सूची पूछते हैं कि उसने कितने कितने दुश्मन बना रखे हैं। उनका यह विरोधी व्यक्तित्व कुछ समय तक रहता है फिर पलायन कर जाता है वे अपने उसी रूप में पुनरू आ जाते हैं।

राकेशजी के जीवन और विचार शक्ति में दार्शनिकता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। व्यक्ति के मन की उड़ान, उसकी तड़प पर उनकी पकड़ अच्छी थी। जिस प्रकार नीड में जाकर मन आकाश में उड़ान भरने को तड़पने लगता है और आकाश में उड़ते समय नीड की उष्णता उसके पीछे लगी रहती है। उसी प्रकार राकेशजी को कोई बंधन बंधता भी नहीं है और मुक्ति, मुक्ति नहीं देती। वह स्वयं को ही समाज, समूह, युग विस्तार के रूप में देखते हैं, क्योंकि जिससे भी मिलते हैं सब के अंदर व बाहर के मुखौटे अलग-अलग हैं। अतरू सामने वीले का व्यक्तित्व इन्हें एक मुखौटा और दे जाता है। जीवन में मनुष्य अनुभव से कितना कुछ सीख जाता है।

असुरक्षा, आन्तरिक विक्षोभ, निर्वासन, जीवन की शून्यता के अहसास को उन्होंने अन्दर से भोगा था। अनेक अनुभव उन्हें बाल्यावस्था में ही हुए थे। अपने वैवाहिक जीवन में स्त्री-पुरुष की संबंधहीनता को झेला। उनमें आत्मीयता की भूख थी। उन्हें एक ऐसे सुरक्षात्मक घर की तलाश थी जहाँ उन्हें सांत्वना और सुख मिले, जो उन्हें कभी न मिल सका। माँ उनके लिए आधार स्तंभ थी पर उनके अवसान के बाद राकेशजी एकदम स्तंभित रह गए, उनका भावात्मक जगत बिखर कर टूट गया। स्थितियों और

टिप्पणी

चिन्तन की मिली जुली संचित अभिव्यक्ति के कारण ही कालिदास, नन्द एवम् महेन्द्रनाथ जैसे पात्रों ने उनके नाटकों में जन्म लिया।

बाह्य व्यतिव - राकेशजी के व्यक्तित्व का निर्माण किसी एक तत्त्व के कारण नहीं हुआ वरन् चहुर्मुखी धाराओं ने उसे उजागर किया। अंतरंग कारणों से उनके व्यक्तित्व में उतना विकास परिलक्षित नहीं होता, जितना कि बाह्य परिस्थितियों के सहयोग से होता है। आंतरिक परिस्थितियों में राकेशजी को सीमित संदर्भ दिए जो बाह्य क्षेत्र में जाकर विभिन्न परिवेश में पुलकित हुए। इस बात को उनके साथियों ने भी अलग-अलग ध्वनियों में व्यक्त किया है और राकेशजी के स्वयं के जीवन के अंतरंग पृष्ठों पर दृष्टि डालें तो वे भी बहिरंग हैं मेरी ऐसी मान्यता है कि सामाजिक परिवेशों में जो घुटन व्यक्ति पाता है बाह्य परिवेशों में उन ग्रन्थियों को बड़ी गहराई से घिरा हुआ है जिसमें उनके साहित्य-चिन्तन को बड़ी गहराई प्रदान की है। राकेशजी एक चलता फिरता इतिहास थे। भारत के भौगोलिक विभिन्न आयामों में उन्होंने अपने जीवन के कई क्षण इस तरीके से गुजारे हैं, जिसमें वह व्यक्ति भी रहे हैं और व्यक्तित्व के सीमित क्षेत्र से बाहर निकले हैं, वैसे कोई भी व्यक्ति अपनी समस्त जीवन की अभिव्यक्ति आंतरिक परिस्थितियों में नहीं कर सकता, उसके जीवन के महत्तम भाग पर बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव होता है। यह बात मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सही उतरती है। मनुष्य इन बाह्य परिस्थितियों से जीवन के राजमहलों में विभिन्नता लाता है। अगर ऐसा न हो तो व्यक्ति में एकदम एकाकीपन या एकान्तित्ता उत्पन्न हो जाएगी और वह केवल एक स्थित व्यक्ति बनकर रह जाएगा और राकेशजी ऐसे स्थित चरित्र नहीं थे। अंतरंग से बहिरंग क्षेत्र में आने के बाद ही व्यक्ति की असलियत उसका वास्तविक चहेरा, चिन्तन तथा विश्व के सामंजस्य या संघर्ष करने की शक्ति का अहसास होता है। केवल आंतरिकता व्यक्ति को अंतर्मुखी बना देती है और इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अत्यंत ही बौना हो जाता है। राकेशजी सारेपन की स्थिति से बहुत आगे निकल चुके थे। उन्होंने अपने आपको आदि से अनादि तक फैलाने की जो आकांक्षा की थी वे इसी बहिरंगता का परिणाम थी। राकेशजी ने जो अपनी व्यक्तिगत डायरी लिखी थी उससे अवश्य ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि वे अपने बाह्य जीवन में रचे-पचे थे। हम जब भी किसी साहित्यकार के मल्यांकन को अपनी विवेचन सीमा में प्रस्तुत करें तो यह आवश्यक हो जाता है, कि हम उसके सर्वागिण और विशेषकर उन पहलुओं, क्षणों का सूक्ष्मतम् दर्शन करें और दिग्दर्शन कराये जिसके माध्यम से उसका साहित्यकार साहित्य जगत में अवतरित होता है।

वैसे मैंने अपने इस शोध कार्य में राकेशजी के परिचय में उनके पारिवारिक संदर्भ दिए हैं। वह केवल इसलिए कि व्यक्तित्व के निर्माण में आनुवंशिक विज्ञान (जैनेटिकसायन्स) के आधार पर गुण और अवगुण का मूल्यांकन इसी परिवेश में हो सकता है। विकास, अध्ययन और क्रियात्मकता ये तो व्यक्ति के अपने एकदम निजी क्षेत्र है इसे उसके किसी भी अन्य पक्ष से नहीं जोड़ा जा सकता। बाह्य पक्ष में मैने मोटे तौर पर उन पलों को समेटने का प्रयास किया है, जिन्हें वृहद रूप में सामाजिक कहा जा सकता है।

सृजनशीलता - राकेश जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, ध्वनि नाटक, बीज नाटक, रंगमंच के क्षेत्र में उनका नाम अग्रणी लेखकों में शुमार हैं। उन्होंने अपने जीवन में लेखन को ही सर्वोपरि रखा। उन्होंने लिखा है 'अनीता तुम तीसरे नंबर पर हो-जिदंगी में पहले नंबर पर मेरे लिए लेखन है, दूसरे नंबर पर दोस्त और तीसरे नंबर पर तुम, लेकिन तीनों मेरे लिए आवश्यक हैं।' राकेश अपने लेखन का प्रेरणास्रोत पिता को मानते हैं। घर में साहित्यिक माहौल के कारण ही उनका मन-मस्तिष्क साहित्य की ओर अग्रसर हुआ। उन्होंने 1962 में सारिका के बतौर संपादक नए क्षेत्र में कदम रखा, लेकिन साल भर में ही उन्होंने इस नौकरी को भी छोड़ दिया।

टिप्पणी

श्राकेश के साहित्य में बदलते सामाजिक परिवेश की झलक मिलती है। राकेश ने बचपन में सबसे पहले हिंदी कविता लिखी, जिसे हिंदी दैनिक के बच्चों के कॉलम में प्रकाशित भी किया गया है। यह उनकी पहली प्रकाशित रचना है। संस्कृत में भी उन्होंने कविताएँ लिखीं। राकेश ने महज 17 साल की उम्र में समाज का फेर' एकांकी लिखा। इसके बाद लंबे अरसे तक उन्होंने नाटक नहीं लिखा। हाँ, कुछ कहानियाँ लिखी थीं, जो प्रकाशित भी हुई थीं। इसके बाद एम.ए. में उन्होंने संस्कृत के 'वेगी संहार' नाटक में भानुमती का अभिनय किया। सन् 1945-46 में उन्होंने पंजाब यूनिवर्सिटी के संस्कृत विभाग की ओर से आयोजित दो संस्कृत नाटकों का निर्देशन भी किया।

श्कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार के रूप में तो प्रायरू लोग मोहन राकेश से परिचित हैं, परंतु इस व्यक्ति के कवि के रूप को शायद बहुत कम लोग जानते हैं, हालांकि उनके नाटक 'आषढ़ का एक दिन' को पढ़ते हुए उसका यह रूप किसी भी गंभीर पाठक की दृष्टि से बचा नहीं रह सकता है।' एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया है कि उनकी पहली रचना आठ साल की उम्र में लिखी एक कविता थी, जो एक हिन्दी दैनिक में बच्चों के कॉलम में छपी थी।

'राकेश ने 1960 तक आते-आते कहानीकार के रूप में अपनी संभावनाओं को एक शिखर तक पहुँचा दिया और उसके बाद उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति की तलाश को किसी विधा में करना क्यों आवश्यक प्रतीत हुआ? 1960 के आसपास के उपन्यास और नाटक दोनों की ओर एक साथ जुड़ने की उनकी आकांक्षा इसी संदर्भ को रेखांकित करती है अथवा अभिव्यक्ति के लिए कई विधाओं में भटकने की राकेश की बेचौनी इससे कहीं अधिक गहरी थी और उसका तालुक पूरी रचना प्रक्रिया से था।' राकेश स्वभाव से प्रयोगशील व्यक्ति थे और ये प्रयोग उनकी भाषा, 'ौली, विधा और समूचे साहित्य सृजना में जारी रहा। उन्होंने चिन्हित मार्गों पर चलने की बजाय हमेशा ही अपना मार्ग स्वयं बनाया। उन्होंने लिखा है 'किन्हीं बौद्धिक निष्कर्षों या फार्मलों के आधार पर दो और दो का योग करने में कलाकृति की रचना नहीं होती।"

राकेश जी का साहित्य उनके अनुभवों की अभिव्यक्ति है, जिसके जरिए उन्होंने कहानी, उपन्यास और नाटक विधा को एक नया रूप ही नहीं दिया बल्कि उसे एक नई जमीन दी, जिस पर खड़े होकर बाद में कई साहित्यकारों ने हिंदी साहित्य में अपना नाम दर्ज कराया। उनके यथार्थवादी उपन्यास और कहानी लेखन की परिपाटी को बाद में कई साहित्यकारों ने अपनाया और खुद मोहन राकेश को अपना आदर्श बनाया।

कृतित्व-मोहन राकेश हिंदी साहित्य की किसी एक विधा तक सीमित न रहे और लगभग सभी विधा के शीर्ष साहित्यकारों में उनका नाम आता है, चाहे वह कहानी हो, नाटक, उपन्यास, रंगमंच, निबंध और एकांकी, उन्होंने सभी विधा को एक नया आयाम दिया। उन्होंने 'यह रचना दृष्टि अपने जीवन-संघर्षों और तत्कालीन समाजार्थिक और साहित्यिक माहौल से निरन्तर अन्तक्रिया के द्वारा अर्जित की थी।' राकेश की गिनती हिन्दी के नाटककारों में जयशंकर प्रसाद के समकक्ष की जाती है। अपने लेखन में उन्होंने अपने आप को ही अभिव्यक्त किया। वे लिखते हैं, 'जीवन की हर परिस्थिति का हम पर कोई न कोई प्रतिक्रिया होती है। हम कितना भी चाहें उस प्रतिक्रिया से बच नहीं सकते। मुझे जीवन के संबंध में उन प्रतिक्रियाओं को लिखकर व्यक्त करना स्वाभाविक लगता है, इसीलिए मैं लिखता हूँ हवा चलती है तो वृक्ष के पत्ते अवश्य हिलते हैं।' वस्तुतः मोहन राकेश के साहित्य और व्यक्तित्व में जो समानता दिखाई देती है, वह उनकी अपनी साहित्य सृजन की मौलिक रीति-नीति की परिचायक है, जिसने उनके नाम को हिन्दी साहित्य के इतिहास स्वर्ण अक्षरों से अंकित किया।

टिप्पणी

2.3 कथा-साहित्य

राकेश के साहित्य में समय के साथ बदलता हुआ मनुष्य, मूल्य और स्थितियाँ तीनों दिखाई देती हैं। उसमें न तो कोई आवरण है और न ही कोई दिखावा, जिसे साहित्यिक शब्दों में वाद' कहते हैं। जीवन की कसौटी पर जब लेखन को कसा जाए, तो उसके बाद उसमें से निकलने वाला साहित्य उतना ही प्रामाणिक, व्यापक और गहन हो जाता है, जीवन की लेखक के खुद का जीवन। ऐसा लेखन लेखक की धड़कन को अभिव्यक्त करने में भी सक्षम होता है। उन्होंने जीवन के हर छोटे-बड़े अनुभवों को रचना के माध्यम से अभिव्यक्त किया। राकेश का साहित्य ऐसी ही कसौटी से गुजरा प्रतीत होता है। संभवतरू इसी कारण वह अपने समकालीन रचनाकारों में सबसे अलग हैं। 'जीवन की ठोस वास्तविकता के कारण ही राकेश ने अनेक विधाओं में अनेक सशक्त रचनाओं को जन्म दिया। भोगा हुआ जीवन और उसका परिवेश उन्होंने रचनाकारों के लिए श्रेष्ठ माना है।" उन्होंने खुद ही लिखा है 'मैं वैयक्तिक और साहित्यिक दोनों स्तर पर अपने को जिंदगी से जुड़ा हुआ पाता हूँ, पर जुड़े होने का अर्थ जिंदगी की सभी परिस्थितियों को स्वीकार करके चलना नहीं है।' इसीलिए उनका अधिकतर साहित्य में यथार्थबोध और खुला दृष्टिकोण दिखाई देता है। उनहोंने अपने जीवन में जो अनुभव किया, उसी का परिष्कृत रूप उनके कथा साहित्य में दिखाई देता है। हाँ, उन्होंने इसमें कुछ अनुभव अपने परिजनों, मित्रों और प्रेमिकाओं के भी शामिल किए। उनके लेखन में सदैव नवीनता की खोज दिखाई देती है, जिसका मुख्य उद्देश्य मानवीय जीवन को समझना और अभिव्यक्ति करने की ईमानदार कोशिश ही था। इसी कारण 1960 के आसपास उन्होंने उपन्यास और कहानी समेत विभिन्न विधाओं में समग्र सृजन कार्य किया।

नाट्यसाहित्य - भारतेंदु और प्रसाद के बाद आधुनिक हिंदी नाटकों में मोहन राकेश का नाम आता है। उन्होंने हिंदी नाटक को अंधेरे बंद कमरों से बाहर निकाला और एक नए दौर के साथ जोड़ा। वे पहले नाटककार हैं जो हिंदी की क्षेत्रीय सीमाओं से उठकर एक राष्ट्रीय स्तर के नाटककारों में गिने गए और अपने समय के प्रसिद्ध भारतीय नाटककारों की पांत में बिठा दिए गए। उनके नाटक सुगठित और सुरचित हैं। उनके नाटकों का समसामयिक अनुभव पाठकध्प्रेक्षक को विलक्षण आत्मीयता दे जाता है।

हिंदी रंगमंच को राकेश की देन महत्वपूर्ण है। आधुनिक नाटकों में मोहन राकेश के योगदान एवं महत्व को स्पष्ट करते हुए डॉ. नरनारायण राय ने लिखा है-ष्शताब्दियों से जड़ और संवेदनशन्य हो गए हिंदी रंगमंच में फिर से चेतना का संचार करने में, नाटक को रंगमंच से जोड़कर नाटक को सही अर्थों और संदर्भो में प्रतिष्ठित करने की दिशा में, रंगमंच की पृष्ठटभूमि में नाटककार की भूमिका निश्चित करने में, राकेश का बहुत बड़ा योगदान रहा ।" आज के उन्नत और समृद्ध होते जा रहे हिंदी रंगमंच की शुरूआत जिन परिस्थितियों में हुई उन्हें क्रमशरू 'आषाद का एक दिन', लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' में मौजूद देख सकते हैं। राकेश प्रथम नाटककार थे जिन्होंने नाटक को थिएटर का पर्याय माना। नाटक को कथ्य और मंचीय स्तर पर सार्थक दिशा की ओर मोड़ने का श्रेय निस्सन्देह मोहन राकेश को है। उनके नाट्य साहित्य का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है।

आषाढ़ का एक दिन - सन् 1968 में प्रकाशित और नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित एक हिंदी नाटक है। इसे कभी-कभी हिंदी नाटक के आधुनिक युग का प्रथम नाटक कहा जाता है। 1959 में इसे वर्ष का सर्वश्रेष्ठ नाटक होने के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया और कई प्रसिद्ध निर्देशक इसे मंच पर ला चुके हैं। 1979 में निर्देशक मणि कौल ने इस पर आधारित एक फिल्म बनाई जिसने आगे जाकर साल की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का फिल्मफेयर पुरस्कार जीत लिया। आषाढ़ का एक दिन महाकवि कालिदास के निजी जीवन पर केन्द्रित है, जो 100 ई.पू. से 500 ईसवी के अनुमानित काल में व्यतीत हुआ।

टिप्पणी

शीर्षक की प्रेरणा - इस नाटक का शीर्षक कालिदास की कृति मेघदूतम की शुरुआती पंक्तियों से लिया गया है। क्योंकि आषाढ़ का महीना उत्तर भारत में वर्षा ऋतु का आरंभिक महीना होता है, इसलिए शीर्षक का अर्थष्वर्षा ऋतु का एक दिन' भी लिया जा सकता है।

कथानक - आषाढ़ का एक दिन एक त्रिखंडीय नाटक है। प्रथम खंड में युवक कालिदास अपने हिमालय में स्थित गाँव में शांतिपूर्वक जीवन गुजार रहा है और अपनी कला विकसित कर रहा है। वहाँ उसका एक युवती, मल्लिका के साथ प्रेम-सम्बन्ध भी है। नाटक का पहला रुख बदलता है जब दूर उज्जयिनी के कुछ दरबारी कालिदास से मिलते हैं और उसे सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में चलने को कहते हैं। कालिदास असमंजस में पड़ जाता है। एक तरफ उसका सुन्दर, 'ाान्ति और प्रेम से भरा गाँव का जीवन है और दूसरी तरफ उज्जयिनी के राजदरबार से प्रश्न पाकर महानता छू लेने का अवसर। मल्लिका तो यही चाहती है के जिस पुरुष को वह प्यार करती है उसे जीवन में सफलता मिले और वह कालिदास को उज्जयिनी जाने की राय देती है। भारी मन से कालिदास उज्जयिनी चला जाता है। नाटक के द्वितीय खंड में पता लगता है कि कालिदास की उज्जयिनी में थाक जम चुकी है और हर ओर उसकी ख्याति फैली हुई है। उसका विवाह उज्जयिनी में ही एक आकर्षक और कुलीन स्त्री, प्रियंगुमंजरी, से हो चुका है। वहाँ गाँव में मल्लिका दुखी और अकेली रह गई है। कालिदास और प्रियंगुमंजरी, अपने एक सेवकों के दल के साथ, कालिदास के पुराने गाँव आते हैं। कालिदास तो मल्लिका से मिलने नहीं जाता, लेकिन प्रियंगुमंजरी जाती है। वह मल्लिका से सहानुभूति जताती है और कहती है की वह उसे अपनी सखी बना लेगी और उसका विवाह किसी राजसेवक से करवा देगी। मल्लिका ऐसी सहायता से साफ इनकार कर देती है। नाटक के तृतीय और अंतिम खंड में कालिदास गाँव में अकेले ही आ ध मकता है। मल्लिका तक खबर पहुँचती है कि कालिदास को कश्मीर का राज्यपाल बना दिया गया था लेकिन वह सब कुछ त्याग के आ गया है। निस्सहाय मल्लिका की शादी विलोम से हो चुकी है और उसकी एक छोटी सी बेटी है कालिदास मल्लिका से मिलने आता है लेकिन, मल्लिका के जीवन की इन सच्चाइयों को देख, पूरी तरह निराश होकर चला जाता है। नाटक इसी जगह समाप्ति पर पहुँचता है। नाटक के एक समीक्षक (क्रिटिक) ने कहा है-नाटक के हर खंड का अंत मेंष्कालिदास मल्लिका को अकेला छोड़ जाता हैरू पहले जब वह अकेला उज्जयिनी चला जाता हैय दूसरा जब वह गाँव आकर भी मल्लिका से जानबूझ कर नहीं मिलताय और तीसरा जब वह मल्लिका के घर से अचानक मुड़ के निकल जाता है। "यह नाटक दर्शाता है कि कालिदास के महानता पाने के प्रयास की मल्लिका और कालिदास को कितनी बडी कीमत चुकानी पड़ती है। जब कालिदास मल्लिका को छोड़कर उज्जयिनी में बस जाता है तो उसकी ख्याति और उसका रुतबा तो बढ़ता है लेकिन उसकी सृजनशक्ति चली जाती है। उसकी पत्नी, प्रिंयगुमंजरी, इस प्रयास में जुटी रहती है के उज्जयिनी में भी कालिदास के इर्द-गिर्द उसके गाँव जैसा वातावरण बना रहे "लेकिन वह स्वयं मल्लिका कभी नहीं बन पाती।"' नाटक के अंत में जब कालिदास की मल्लिका से अंतिम बार बात होती है तो वह कुबूल करता है किष्तुम्हारे सामने जो आदमी खड़ा है यह वह कालिदास नहीं जिसे तुम जानती थी ।"

नाटककार की टिप्पणी - अपने दूसरे नाटक ("लहरों के राजहंस") की भूमिका में मोहन राकेश ने लिखा कि "मेघदूत पढ़ते हुए मुझे लगा करता था कि वह कहानी निर्वासित यक्ष की उतनी नहीं है, जितनी स्वयं अपनी आत्मा से निर्वासित उस कवि की जिसने अपनी ही एक अपराध-अनुभूति को इस परिकल्पना में ढाल दिया है।" मोहन राकेश ने कालिदास की इसी निहित अपराध-अनुभूति को "आषाढ़ का एक दिन" का आधार बनाया।

लहरों के राजहंस - लहरों के राजहंस' मोहन राकेश की दूसरी नाट्यकृति है। यह रचना भी ऐतिहासिक आधार लेकर लिखी है। अश्वघोष का 'सौदंरनन्द' काव्य ही लहरों के राजहंस' का मुख्य प्रेरक रहा है।

टिप्पणी

'लहरों के राजहंस' का नन्द प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्वंद्व में फंसकर छटपटाता है। वह मतिभ्रम तथा संशय की मूर्ति बना है। प्रस्तुत नाटक भी तीन अंकों में विभाजित है। नाटक की मूल संवेदना में व्यक्ति की अनिर्णयात्मक स्थिति और मानसिक तनाव ही उद्घाटित हुआ है। इसमें नन्द और सुंदरी के पारस्परिक रिश्तों को इतिहास के माध्यम से ही देखने का प्रयास किया गया है।

कथानक-लहरों के राजहंस में एक ऐसे कथानक का नाटकीय पुनराख्यान है जिसमें सांसारिक सुखों और आधयात्मिक शांति के पारस्परिक विरोध तथा उनके बीच खड़े हुए व्यक्ति के द्वारा निर्णय लेने का अनिवार्य द्विन्द्व निहित हैं इस द्वन्द्व का एक दूसरा पक्ष स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबंधों का अंतर्विरोध है। जीवन के प्रेय और श्रेय के बीच एक कृत्रिम और आरोपित द्वन्द्व है, जिसके कारण व्यक्ति के लिए चुनाव कठिन हो जाता है और उसे चुनाव करने की स्वतंत्रता भी नहीं रह जाती हैं अनिश्चित, अस्थिर और संशयी मन वाले नंद की यही चुनाव की यातना ही एक नाटक का कथा-बीज और उसका केन्द्र-बिन्दु है। धर्म-भावना से प्रेरित इस कथानक में उलझे हुए ऐसे ही अनेक प्रश्नों का इस कृति में नए भाव-बोध के परिवेश में परीक्षण किया गया है। प्रमुख नाट्य निर्देशको ओम शिवपुरी, 'यामानन्द जालान, राम गोपाल बजाज, अरविन्द गौड़ ने इसका मन्चन किया।

'लहरों के राजहंस' नाटक का प्रारंभ नन्द की पत्नी सुंदरी के कामोत्सव के आयोजन से होता है। नन्द के मन में पत्नी सुंदरी के प्रति घोर आसक्ति है साथ ही जेष्ठ भ्राता गौतमबुद्ध के प्रति आदरभाव भी है। संदरी ठीक उसी दिन कामोत्सव का विधान करती है। जिसके दूसरे दिन प्रातरूकाल यशोधरा भिक्षणी होने वाली है। संदरी के मन में किसी कोने में यशोधरा के प्रति विद्वेश भाव छिपा हुआ है। कामोत्सव के संबंध में नन्द पली संदरी को सूचना देता है कि इतना बड़ा आयोजन व्यर्थ है। हो सकता है आज के दिन ज्यादा लोग न आए। और वही होता है, केवल मैत्रेय ही आते हैं।

सुंदरी के कहने पर नन्द दर्पण लेकर उसके सामने खड़ा होता है और सुंदरी श्रृंगार करती रहती है।

नाटक के तीसरे अंक में कथानक एक नया मोड़ लेता है गौतमबुद्ध के पास गया हुआ नन्द सिर मुण्डन कर लौटता है। सुंदरी की नींद जब टूटती है तो वह नन्द को इंगित करके उत्तर देती है - "लौटकर वे नहीं आए है, जो आया है वह व्यक्ति कोई दूसरा ही है।" इस बात को सुनकर नन्द तिलमिला उठता है।

इस प्रकार 'लहरों के राजहंस' में ऐतिहासिकता और आधुनिकता का अद्भुत सामंजस्य है। इसका कथानक नितांत आधुनिक है। इसमें आधुनिक जीवन की संघर्षपूर्ण स्थितियों का अपूर्व विवेचन किया गया है।

आधे-अधूरे - 'आधू-अधूरें' 1969 में लिखा गया। ये राकेश के नाट्यलेखन का चरमोत्कर्ष था। इसमें नारी-पुरुष संबंधों और मध्यमवर्गीय परिवार की समस्याओं का यथार्थपरक ढंग से समग्रता में चित्रण किया गया है। पहले के नाटकों की ही तरह इसमें भी राकेश ने मानव मन की छटपटाहट और वेदना को अभिव्यक्त किया है। भारतीय समाज में पति पत्नी के संबंधों में आई दरार के बावजूद दोनों के एक दूसरे के साथ रहने की मजबूरी, इससे घर में घुली कडुवाहट और उससे बच्चों के मन में पैदा हो रही विषाक्तता को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कसौटी पर कसते हुए दिखाया गया है। इसीलिए नाटक को पढ़ते वक्त इसमें हमें अपना चरित्र भी कहीं न कहीं छोटे या बड़े रूप में दिखाई दे जाता है। फिर वह चाहे पति-पत्नी, माता-पिता, बेटा-बेटी, भाई-बहन या पड़ोसी। और अगर खुद मोहन राकेश के जीवन को इस नाटक के केंद्र में रखें तो उसका कोई भाग भी इसमें दिखाई देता है। 'आधे-अधूरे आज के जीवन के एक गहन अनुभव खंड को मूर्त करता है इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। एक-दूसरे पर यह नाट्यकृति पारिवारिक विघटन की गाथा है। एक अन्य स्तर

टिप्पणी

पर यह नाट्य रचना मानवीय असंतोष के अधूरेपन का रेखांकन है जो जिंदगी से बहुत कुछ चाहते हैं उनकी तृप्ति अधूरी रहती है।"

नाटक का प्रारम्भ तनाव से होता है और अंत भी। सारी घटनाएं ऐसी स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़ती है कि कहीं भी इसमें आवरण की जरूरत ही महसूस नहीं होती। रोजमर्रा की भाषा का ऐसा सशक्त प्रयोग यदाकदा ही देखने को मिलता है। एक एक शब्द ऐसे गुथे हुए, मानों उन्हें उनकी जगह से हटाया तो भाषा की ये मोती बिखर जाएगी।

निर्देशक की नजर से त्रिपुरारी शर्मा लिखते हैं, 'आधे-अधूरे नाटक का ढांचा बहुत सावधानी से बनाया गया है और बहुत ही बारीक विशिष्ट बुनावट है। नाटक के हर वाक्य, हर शब्द में दर्द, क्षोभ और विडम्बना संवादों से झांकती है। नाटक उकसाता भी है और जबरन हमें अपने से जोड़ भी लेता है अक्सर मन करता है विरोध करने का, कुछ कहने का, अपनी फटेहाल अधूरी जिंदगी को पूरा करने का, हाँ, 'शयहरी जिन्दगी के रोजमर्रा जीवनयापन और आपसी व्यवहार का इस नाटक से गहरा रिश्ता है।"

पैरतले जमीन- पैर तले की जमीन को मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक से पहले ही लिखना शुरू किया था, जो उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ। राकेश इसका केवल पहला अंक और दूसरे अंक का कुछ अंश ही लिख सके थे। बाद में इसे उनके मित्र कमलेश्वर ने नाटक का दूसरा अंक लिखकर प्रकाशित कराया। कमलेश्वर ने कई जगहों पर इस बात को स्वीकारा है कि दूसरे अंक को लिखने के बाद उसके हिसाब से पहले अंक को भी थोड़ा बहुत संशोधित करना पड़ा। इसलिए दो नावों की सवारी के कारण ये नाटक आलोचकों की तीखी टिप्पणियों का काफी शिकार हुआ। राकेश ने इसका काफी प्लॉट तैयार किया था। इसके नोट्स और स्केच को नेमीचंद्र जैन ने अपनी पुस्तक मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक में प्रकाशित भी किया। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है 'ठीक से पूरा होने पर यह नाटक उपलब्धि का एक नया शिखर स्थापित करता, इसकी भरपूर संभावना थी। पर वह नहीं हो पाया। अपने मौजूदा रूप में वह अपर्याप्त है और एक दो केंद्रों में प्रस्तुत किए जाने के बावजूद उसकी कोई खास पहचान नहीं बन सकी है। नाटककार के रूप में राकेश की प्रतिष्ठा अपने पहले तीन नाटकों के कारण ही है।

राकेश ने इस नाटक में भी स्त्री-पुरुष के संबंधों और द्वंद्व को दिखाया है। नाटक का कथानक आंतरिक पों को खोलता है, जिसमें अवैध संबंध भी दिखाए गए हैं। साथ ही पुरुष जीवन की त्रासदी किस-किस रूप में घटित होती है इन प्रश्नों को भी उठाया है। 'राकेश ने 'पैर तले की जमीन' नाटक को एक नए प्रयोग के रूप में प्रस्तुत कर वर्तमान युग में व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन से सामाजिक जीवन तक व्याप्त विसंगति. निरर्थना मूल्य विघटन और मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन को मूर्त किया है। प्रस्तुत नाटक के पात्र पैर तले की जमीन को तलाशना चाहते है। इसी आधार पर लेखक ने अर्थ की समस्या को उभारा है।'

कहानी साहित्य - नई कहानी की शुरूआत राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव के अभ्यदय से माना जाता है। हिन्दी लेखकों की पहली रचना कौन-सी है? इस पर विवाद होता रहा है। ये बात मोहन राकेश पर लागू होती है। 'नन्हीं' कहानी उनकी प्रारम्भिक कहानी मानी जाती है जो उन्होंने स्कूल की परीक्षाओं की कॉपी पर लिखी थी। यही कहानी मार्च 1973 में सारिका के मोहन राकेश विशेषांक में प्रकाशित हुई। उसके साथ टिप्पणी थी, 'यह राकेश की शायद प्रथम कहानी है। उन्हीं की हस्तलिपि में प्राप्त स्कूल की परीक्षाओं की लम्बी कापी के कागजों पर लिखी यह कहानी 7 मई 1947 में लाहौर में लिखी गई। इसकी पाण्डुलिपि पर तरह-तरह से राकेश लिखकर देखा गया है, सम्भवत: यह प्रक्रिया उपनाम चुनने की रही है जो बाद में उनका नाम ही हो गया।' राकेश की डायरी के अनुसार उनकी

टिप्पणी

प्रथम प्रकाशित कहानी 'भिक्षु है, जो सरस्वती पत्रिका के भाग 46 में प्रकाशित हुई। कमलेश्वर ने लिखा है 'हिन्दी लेखकों की सर्वप्रथम रचना गूलर के फूल की तरह होती है उसे कोई नहीं देख पाता। यहाँ तक कि स्वयं लेखक भी उसे खो या भूला बैठता है। हालांकि उन्होंने 'नन्ही' को राकेश की पहली लिखित कहानी और 'भिक्षु' को प्रथम प्रकाशित कहानी कहा है। आगे उन्होंने लिखा है 'राकेश ने एक पूरे दौर में कथ्य की आत्मा को निरन्तर खोजा था और आत्मिक कथा की खोज को निरन्तरता दी थी। इस खोज और निरन्तरता की पूरी पहचान इन शुरू की कहानियों में कहीं न कहीं विद्यमान है-चाहे वह बहुत साफ न हो, जो कि प्रारम्भिक रचनाओं में हो भी नहीं सकती, पर राकेश के साहित्य के गम्भीर अध्येताओं के लिए वह छुपी हुई या अमूर्त भी नहीं रह सकती।

राकेश की कहानियों में प्रगतिशीलता और मनोवैज्ञानिकता का समन्वित रूप नजर आता है। अधिकतर कहानियां अतिशयता से दूर अनुभूतियों, संघर्ष और पीड़ा की अभिव्यक्ति पर आधारित हैं। राकेश ने अपने लेखन के संबंध में लिखा है कि 'लिखते समय एक रचना के साथ जो निकटता रहती है, वर्ष बीतने के साथ किसी भी व्यतीत संबंध की तरह वह धुंधलाने लगती है। जिन प्रभावों में एक रचना होती है, उनसे हटकर किन्हीं दूसरे प्रभावों में जीता व्यक्ति उस पहले की रचना के साथ रचना के समय की आत्मीयता नहीं बताए रह सकता। एक रचना से उबरकर ही वह पूरी रचना में प्रवृत्त होता है और अंतराल जब कई-कई रचनाओं का हो, तब तो आत्मीयता की भूमि पर किसी रचना की ओर लौटना लगभग असंभव हो जाता है।"

राकेश ने सभी प्रकार की परिस्थितियों को देखा था, उनके तनावों को झेला था और इन सबको उन्होंने अपनी कहानियों में समेटा भी है। उनकी शुरू की कहानियों में हल्की रूमानियत भावुकता और मानवतावादी स्वर हैं। कहानी के क्षेत्र में यथार्थवादी लेखन में प्रेमचंद के बाद यशपाल ने अपनी जगह बनाई थी और उसके बाद किसी का नाम आता है तो वह राकेश ही हैं। मेरी प्रिय कहानियों की शुरूआत में उन्होंने लिखा है 'नये दौर की मेरी अधिकांश कहानियां संबंधों की यंत्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है। यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है। और उसकी परिणिति भी किसी तरह के सिनिसिज्म में नहीं झेलने की निष्ठा में है। व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी, एक-दूसरे से भिन्न और आपस में कटी हई इकाइयाँ न मानकर यहाँ उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयत्न है जहाँ व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का और समाज व्यक्ति की यन्त्रणाओं का आईना है।' उनके यथार्थवादी लेखन का लोहा आलोचक भी मानते हैं। नामवर सिंह ने लिखा है 'अपने आसपास के वातावरण में उड़ती हुई कहानियों को पकड़कर निरूसंदेह मोहन राकेश ने इतनी तेजी के साथ व्यक्त किया है जो मन में एक फ्लैश की तरह कौंध जाती हैं।

अपने लेखन में उन्होंने कहीं भी किसी अवधारणा को जगह नहीं दी। पाँच कहानी संग्रह क्रमश: 'इन्सान के खण्डहर' (1950), 'नये बादल' (1967), 'जानवर और जानवर' (1968), 'एक और जिन्दगी' (1961), 'फौलाद का आकाश' (1966) प्रकाशित हुए। बाद में 1989 में राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट नई दिल्ली ने 'मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियों में सभी कहानियों को एक साथ प्रकाशित किया। इसमें 66 कहानियाँ संजोई गई। इसके अलावा भी कई कहानियां ऐसी हैं, जो राकेश के जहन में ही रह गई। कमलेश्वर ने लिखा है 'राकेश में अपनी रचनाओं के लिए अतिरिक्त मोह नहीं था। उन्हें काटना, छांटना, तराशना, संवारना और सन्तुष्ट नहीं होने पर छोड़ देना-यह प्रक्रिया बराबर चलती रही थी। मुझे कुछ उन कहानियों की याद भी है जो राकेश ने बताई थी, पर जो फाइलों में उपलब्ध नहीं हैं। लगता है राकेश ने उन्हें नष्ट कर दिया। राकेश के कहानी लेखन को विभिन्न चरणों

टिप्पणी

में विभाजित करके ही उनकी कहानियों की विकास यात्रा को समझा जा सकता है। इसके लिए पहले प्रकाशित पांच विभिन्न संग्रह काल क्रम के अनुसार उनकी कहानी यात्रा के विभिन्न सोपानों को व्यक्त करते हैं। राकेश भी अपनी कहानी यात्रा को इन्हीं पड़ावों के रूप में देखते हैं। इसलिए इन्हीं को आधार बनाना ज्यादा उपयुक्त है।

इंसान के खण्डहर - इस दौर में लिखी गई कहानियों में 'मरूस्थल', 'उर्मिल जीवन, 'धुंधला दीप, 'इन्सान के खण्डहर' 'एक आलोचना', 'लक्ष्यहीन', 'सीमाएं', 'कंबल', 'दोराहा', 'वासना की छाया', 'मिट्टी के रंग' आदि हैं। ये राकेश के कहानी लेखन की प्रथम दौर की कहानियां हैं। कुछ आलोचकों का मानना है कि इस दौर की कहानियों में उनकी जुमलेबाजी है। इसमें उनकी अपने समकालीन लेखकों से अलग होने की कोशिश भर दिखाई देती हैं। बाद में राकेश ने खुद जुमलेबाजी को साहित्य की सबसे बड़ी कमजोरी माना है और इसे ही वह मंटो के साहित्य को भी सबसे बड़ी कमजोरी मानते हैं। उन्होंने स्वीकार भी किया है अपने ढंग से हम भी अपनी कहानियों में जुमलेबाली का अभ्यास करते। पर उसी शब्दों के अतिरिक्त मोह के कारण आज उस समय की रचनाएं इतनी बेगाना लगती हैं कि उनमें से किसी एक को यहां उदाहरण के रूप में रख लेने को भी मन नहीं हुआ। 'इन्सान के खण्डहर' की कहानियां कई दृष्टियों से मेरे बाद के प्रयोगों के साथ एक कड़ी के रूप में जुड़ नहीं पातीं। उनके शिल्प और कथ्य दोनों में एक तरह की कोशिश है, एक निश्चित तलाश का कच्चापन। यूं पाठकों का एक वर्ग ऐसा भी है जिसे मेरी वही कहानियां सबसे अधिक पसंद हैं।'

ऐसा इसलिए क्योंकि इस संग्रह की कहानियां एक विशेष मानसिकता की उपज प्रतीत होती हैं, जिसका सबसे पहला ध्येय खुद को सबसे अलग करना था। इन कहानियों के केंद्र में मध्यम वर्ग है। एक ऐसा वर्ग, जो रूढ़ियों, सामाजिक बाध्यताओं, मान्यताओं में जकड़ा हुआ है। इसमें मनुष्य अपने आपको स्थितियों से, जिंदगी से कटा हुआ पाता है। इनमें खुद राकेश की व्यक्तिगत पीड़ा, स्थितियां, पारिवारिक जिम्मेदारियां और उनसे संघर्ष का बोध बिखरा हुआ हैं। सांस्कारिकता और आदर्शवाद की बैसालिखयों के सहारे चलने वाले समाज और परिवार के प्रति जो विद्रोह भाव राकेश के मन में था, वह इसमें देखेन के लिए मिलता हैं। राकेश ने स्वीकारा है, 'उन दिनों कई कारणों से मैं अपने को अपने तब तक के परिवेश से बहुत कटा हुआ महसूस करता था। जिन व्यक्तियों और संस्कारों के बीच पलकर बड़ा हुआ था, उनके खोखलेपन को लेकर मन में गहरी कटुता और वितृष्णा थी। घर की पूरी जिम्मेदारी सिर पर होने से उसे निभाने की मजबूरी से मन छटपटाता था। मैं किसी तरह अपने को विरासत के सब सम्बन्धों से मुक्त कर लेना चाहता था, परन्तु मुक्ति का कोई उपाय नहीं था।

श्राकेश की प्रारम्भिक कहानियों में आवेश, धर्म, प्रगतिवादी दौर के सारे साहित्यिक मुहावरे मिल जारी शोषित और श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति का फूटता हुआ लावा, धर्माडम्बर के प्रति व्यंग्य का जोश और धनिक वर्ग की लिप्सा के लिए उबलता आक्रोश, पेट में पहुंची आग का ताप और सतह पर तैरते हुए विचार की अस्त-व्यस्त श्रृंखला, त्रिकाणों में लिपटता लटपटाता। वहीं ड्राइंगरूमी प्रेम और कॉफी के प्यालों पर बहसों का अंतहीन सिलसिला, भावुकता के विरोध में अतिरिक्त भावुकता।'

नये बादल - इसका प्रकाशन 'इन्सान के खण्डहर' के सात साल बाद हुआ। इसमें नये बादल', 'मलबे का मालिक', 'अपरिचित', 'शिकार', 'एक पंखयुक्त ट्रेजेडी', 'उसकी रोटी', 'मंदी', 'हवामुर्ग', 'उलझते धागे', 'सौदा', 'फटा हुआ जूता', 'भूख', 'छोटी सी चीज' 13 कहानियां हैं। 'मलबे का मालिक और संदी कहानियां प्रेमचंद की परंपरा में आती हैं। वे आदर्शवादी हैं, किन्तु परिवर्तित परिस्थितियों के खाद-पानी से तैयार आदर्शवाद ही उनमें है। नये बादल और उसकी रोटी जैसी कहानियों में जीवन का कटु यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है।

टिप्पणी

इस दौर की कहानियों का रचनाकाल 1950 से 55 के बीच का है। देश के विभाजन के बाद राकेश नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटकते रहे। उनके जीवन में कहीं भी निश्चितता या स्थिरता नहीं थी। वे जिन साथियों के भरोसे कदम उठाते, वे उनका साथ छोड़ जाते और यही स्थिति इस दौर की कहानियों में भी दिखाई देती है। राकेश ने इन कहानियों में समकालीन समस्याओं को गहराई से अभिव्यक्त किया है। ऐसे व्यक्तियों की कहानियां है जो परिवेश के दबाव से उत्पन्न कड़वाहटों को झेलते हुए भी परिवेश से जुड़ी रहने की सार्थकता अनुभव करते हैं। यद्यपि दस संग्रह में अलग-अलग परिवेश की कहानियां हैं, लेकिन सभी के मूल में आर्थिक विषमताएं विवशताएं, कुंठाएं और मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के जीवन की विडम्बनाओं को राकेश ने यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्ति दी है। इनमें जहां विभाजन की विभीषिका और उस दौरान दोस्तों की दगा है, वहीं दो जून की रोटी के लए एक अकेले का संघर्ष भी। इसमें सरकारी व्यवस्था में व्याप्त खोखलापन, भ्रष्टाचार, निम्न वर्ग की आर्थिक परेशानियां हैं तो इनसे खुद गुजरे राकेश की विवशता और हताशा की यथार्थवादी अभिव्यक्ति भी। इस दौर की कहानियों में अकेलेपन का सूक्ष्मता से अध्ययन किया गया है, फिर वह चाहे व्यक्तिगत हो या सामाजिक।

राकेश ने लिखा है, 'लम्बे अरसे के बाद जो पहली कहानी लिखी उसका शीर्षक था सौदा। यह कहानी मेरी पहले की कहानियों से इतनी अलग थी कि एक तरह से उसे मेरे लेखन के उस दौर की शुरूआत माना जा सकता है जिसमें आगे चलकर उसकी रोटी', 'मंदी', 'मलबे का मालिक' और 'जानवर और जानवर' जैसी कहानियां लिखी गई। 'इन्सान के खण्डहर' से इस दौर तक आते-आते ओढ़ी हुई बौद्धिकता के कोने काफी झड़ गये थे। जुमलेबाजी से तो इतनी चिढ़ हो गई थी कि आपने जुमलेबाज दोस्त के 12 साल पुरानी दोस्ती लगभग टूटने को आ गई। यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में बहुत से तनावों के बीच गुजर रहा था फिर भी अपने परिवेश के कटे होने की अनुभूति का स्थान एक सर्वथा दूसरी अनुभूति ने ले लिया था और वह थी जुड़े होने की अनिवार्यता की अनुभूति। एक तरह की कड़वाहट इन अनुभूति में भी थी, पर वह कड़वाहट निरर्थक और आरोपित नहीं थी। उसका उद्देश्य भी जुड़े होने की स्थिति से मुक्ति पाना नहीं, उसकी तात्कालीक शर्तों को अस्वीकार करते हुए जुड़े रहने के सार्थक सन्दर्भो को खोजना था। जिन स्थितियों को लेकर असन्तोष था, उन्हीं विसंगतियों के प्रति मन में ह्यूमर का भाव भी था। 'नये बादल' और 'जानवर और जानवर' की अधिकतर कहानियां इसी मानसिकता की उपज हैं।

इन दौर की कहानियों में सामाजिक यथार्थ, स्थितिजन्य जीवन की तीव्र प्रतिक्रियाएं गहराती हैं। राकेश ने अपने ही पात्रों और स्थितियों के बीच एक ऐसा माध्यम खोज लिया जो कहानी की सारी अन्तर्बाह्य यात्रा सम्पन्न करा देता है। उनके कथ्य का ही वजन इतना होता है कि लेखक का व्यक्तिगत बोझ यहां अनावश्यक होता है।

जानवर और जानवर - नये बादल' की कहानियां और इस दौर की कहानियां एक ही मानसिकता की उपज हैं। इस बात को मोहन राकेश भी 'मेरी प्रिय कहानियां' की भूमिका में स्वीकारते हैं। दोनों संग्रहों के प्रकाशन वर्ष में भी केवल एक वर्ष का ही अंतर है। 'नये बादल' यदि 1957 का संग्रह है तो 'जानवर और जानवर' 1958 का है। इसमें 'काला रोजगार (रोजगार)', 'परमात्मा का कुत्ता', 'मवाली', 'आर्द्रा', 'आखिरी समान', 'मिस्टर भाटिया', 'क्लेम', 'जानवर और जानवर' जैसी आठ कहानियों को शामिल किया गया। इस दौर की राकेश की तत्कालीन सन: स्थिति और परिवेश दिखाई देता है। सभी कहानियां सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लिखी गई हैं। इनमें सामाजिकता और समाज में व्याप्त असंतोष और विषमताओं की प्रधानता है। 'आखिरी सामान' और 'जानवर और जानवर' कहानियों में व्यक्ति विशेष की घुटन को उकेरा गया है।

टिप्पणी

इन कहानियों में संबंधों की खोज, उनकी सार्थकता और महत्व को रेखांकित किया गया है। यहां राकेश ने सांकेतिकता से काम लिया। यहां अपनी सांकेतिकता के विस्तार के लिए भी राकेश ने कोशिश की है।' संकेतों में राकेश ने व्यवस्था की बखिया उधेड़ दी है। इसमें संवेदना और सामाजिक सरोकारों के बीच की दूरी को खाई के रूप में दिखाया गया है और समाजिक व्यवस्था के लिए उसे जिसे पाटना जरूरी बताया गया है। साथ ही इस व्यवस्था में घुटन और आदमी के जानवर हो जाने की मनोदशा का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। राकेश जी ने तत्कालीन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की खिलाफत को भी अपनी इस कहानी के माध्यम से आवाज दी है।

'जानवर और जानवर' संग्रह की कहानियों में आर्थिक विषमता ने किस समा तक निम्न मध्यवर्ग को तोड़ दिया है, झिझोड़ दिया है और टूटकर मनुष्य किस तरह जीवन की बिडम्बनाओं व यातनामूलक असंगतियों को विवशभाव से सहता हुआ जीने की ललक लिए है, यही सब इस संग्रह की कहानियों की आत्मा में आन्दोलित उद्वेलित दिखाई देता है।"

एक और जिन्दगी - 'जानवर और जानवर' के तीन साल बाद 1961 में प्रकाशित इस संग्रह में राकेश का एक नई विचारधारा, कहानियों की एक नई पृष्ठभूमि और चेतना दिखाई देती है। राकेश ने लिखा है 'बात नई जगह जाकर नई तरह के व्यक्ति की कहानी लिखने की नहीं, उसी जगह रहकर उस इंसान के उन्हीं अंतर्द्वन्द्वों को जीवन के नए संदर्भ में देखने की है। हमारा जीवन आज एक बड़े संक्रातिकाल से गुजर रहा है, जिंदगी की नब्ज इतनी तेज है कि उसे हर जगह और हर पल महसूस किया जा सकता है।' और राकेश ने न सिर्फ इसे महसूस किया, बल्कि उसी शिद्दत के साथ उसे अभिव्यक्त भी किया, जो उनके इस सग्रह की कहानियों में दिखाई देता है। इसीलिए इसे नई कहानी की कड़ी में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है। इस संग्रह में 'सुहागिनें, 'आदमी और दीवार,' 'हक हलाल,' 'गुनाह बेलज्जत', 'जीनियस', 'बस स्टैण्ड की एक रात', 'मिस पॉल', 'वारिस' और 'एक और जिंदगी' कुल नौ कहानियों को शामिल किया गया। अगस्त, 1957 में राकेश ने विवाह बंधन तोड़ दिया था। यही वह समय है जब उन्होंने डी.ए.वी. कालेज जालंधर में चार साल, चार महीने नौकरी करने के बाद त्यागपत्र भी दे दिया था। इस दौरान अकेलापन ही राकेश का साथी रहा। उसे भोगा, जिया, महसूस किया और फिर उसे कहानियों में अभिव्यक्त किया। 'एक और जिंदगी' कहानी संग्रह की कहानियों में ये अकेलापन चीखता हुआ नजर आता है। बंधन से मुक्ति, तलाक, पति-पत्नी के बदलते रिश्ते, तलाक, मनुष्य की संवेदनाओं का धीरे-धीरे घुटन में बदलना और लगातार रिश्तों का बेमानी होते चले जाना ही इस दौर की मुख्य कथावस्तु है। राकेश ने लिखा है, 'इस दौर की अधिकांश कहानियां संबंधों की यन्त्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियां हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है। यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है और परिणति उसकी भी किसी तरह के सिनिसिज्म में नहीं, झेलने की चेष्टा में है। व्यक्ति और समाज को परस्पर विरोधी, एक-दूसरे से भिन्न और आपस में कटी हुई इकाइयां न मानकर यहां उन्हें एक ऐसी अभिन्नता में देखने का प्रयन्त है जहां व्यक्ति समाज की विडम्बनाओं का और समाज व्यक्ति की यन्त्रणाओं का आईना है।"

इससे पहले के संग्रह की सांकेतिकता समय के साथ इसमें और विस्तार पा गई। साथ ही वह और सक्षम और संघन भी होती चली गई। इनमें राकेश ने जो सहा, भोगा, देखा और जिन कष्टों से गुजरे उन्हें बडी ही ईमानदारी और कलात्मक ढंग से व्यक्त कर दिया।

'दागिने' और 'एक और जिंदगी' में भोगा हुआ ही यथार्थ दिखाई देता है, किन्तु यह मानवीय परिवेश का भी जाना माना यथार्थ प्रतीत होता है। जीवन का यथार्थ शरबत नहीं कुनेन की वह गोली है जिसे

टिप्पणी

अनुभव की जबान पर रखें तो वह तो कड़वी हो ही जाती है, उसे अभिव्यक्ति देने वाली शैली भी उससे अप्रभावित नहीं रह सकती है। यथार्थ की यह कड़वाहट कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष रूप से राकेश की कहानियों में मिल ही जाती है।"

राकेश ने व्यक्ति की पीड़ा को व्यापक स्तर पर देखा और व्यक्ति को समाज की इकाई माना, जो अकेलेपन के बावजूद समाज से कटकर नहीं जी सकता। इस संग्रह की अधिकतर कहानियों का मुख्य पात्र नारी है। उसके विविध रूप और चरित्र हैं। 'यह संग्रह राकेश की कथायात्रा का जीवंत सोपान है और इसकी अधिकतर कहानियां न केवल राकेश की उपलब्धि हैं, वरन् नई कहानी की भी उपलब्धि हैं।'

फौलाद और आकाश - "एक और जिंदगी' के करीब पांच साल बाद ये संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें नौ प्रयोगशील कहानियों 'ग्लास टैंक', 'ांचवें माले का फ्लैट', 'सेफ्टी पिन', 'सोया हुआ शहर', 'फौलाद का आकाश', 'जख्म', 'जंगला', 'चौगान', 'एक ठहरा हुआ चाकू' है। इस दौरान राकेश सिर्फ लेखन पर ही निर्भर रहे, कोई नौकरी नहीं की। उन्होंने लिखा है 'ग्लास टैंक से लेकर एक ठहरा हुआ चाकू तक जितनी कहानियां उन तीनों वर्षों में लिखी गई, उनमें से दो तीन कहानियों को छोड़कर प्रायरू सभी बड़े शहरों की जिंदगी की भयावहता की कहानियां हैं, हालांकि भयावहता के संकेत इनमें भी व्यक्ति के माध्यम से ही सामने आते हैं, फिर भी इनका केन्द्रबिन्दु व्यक्ति न होकर उसके चारों ओर का संत्रास है। 'जख्म' और 'ठहरा हुआ चाकू शीर्षक कहानियों में यह संत्रास अधिक रेखांकित है। इस दौर की कहानियों में मेरी एक और दृष्टि भी रही है-समय की मानसिकता के अनुकूल कहानी की भाषा और शिल्प के खोज के लिए अलग-अलग तरह के प्रयोग करने की।' ये प्रयोग उनके इस संग्रह से स्पष्ट है। इन कहानियों में परिवेश का संत्रास उभरकर सामने आया है। इसमें जिंदगी का दर्द और छटपटाहट है। नये की 'अतिशय चाहत' को आलोचकों ने राकेश की चूक के रूप में लिया। वे 'ग्लास टैंक' और 'फौलाद का आकाश' कहानियों के यथार्थ को कृत्रिम, जीवन से असम्बद्ध और आरोपित मानते हैं। इसी कारण उपेन्द्रनाथ अश्क ने लिखा है, 'नये के चक्कर में राकेश ने कुछ प्रयोग किये हैं। उनका संग्रह फौलाद का आकाश पढ़ता हूँ तो लगता है कि न किये होते तो अच्छा था। ग्लास टैंक बहुत अच्छी बनते-बनते रह गई है। राकेश ने उसमें बड़ी सूक्ष्मता से एक पारिवारिक ट्रेजेडी को आरोपित किया है, लेकिन 'ग्लास टैंक' का प्रतीक आरोपित लगता है। यदि ग्लास टैंक के सम्बन्ध में कही गई सभी बातें कहानी से काट दी जायें यानी कहानी के पहले चार पृष्ठ, चौथे पृष्ठ की अन्तिम चार पंक्तियों को छोड़कर, काट दिये जायें और कहानी दूसरे परिच्छेद से शुरू की जाय तो प्रभाव में कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा। बेहतर भले ही हो जाये।' इस कहानी संग्रह की कुछ कहानियों के परिवेश और परिस्थितियों को डॉ० धनजंय वर्मा भी आरोपित ही मानते हैं। उन्होंने लिखा है, 'इस संग्रह की कहानियों में न तो कोई निश्चित कथानक है, न परिस्थितियों और पात्रों से सम्बद्ध प्रसंगों के साक्षात्कृत संदर्भ हैं। इसके विपरीत यहां अनुभव प्रधान हो उठा है। उससे सम्बन्धित कुछ उत्तम क्षण, उन पर व्याप्त किसी मनरूस्थिति की वर्तुलाकार गति और वे सूक्ष्मतर सूत्र जो एक व्यापक परिदृश्य से जुड़कर उस क्षण और परिस्थिति को सार्थक बनाते हैं।' हालांकि कई आलोचक और खद मोहन राकेश इस संग्रह की कहानियों को 'परिपक्वता' से परिभाषित करते हैं।

मेरी प्रिय कहानियां में राकेश ने अपनी पसंद की कहानियो 'ग्लास टैक', 'जंगला', 'मंदी', 'परमात्मा का कुत्ता', 'अपरिचित', 'क ठहरा हुआ चाकू', 'चारिस', 'पांचवे माले का फ्लैट' और 'जख्म' को चुना। इनके बारे में राकेश ने लिखा है कि 'जो कहानियों मैने इस संग्रह के लिए चुनी हैं उसके चुनाव का कारण दे सकना मेरे लिए कठिन है। कहना हो तो केवल इतना कह सकता हूँ कि इस बार अपनी कहानियों में से गुजरते हुए इन कहानियों पर उंगली ठहरती गई।'

टिप्पणी

इन संग्रहों के माध्यम से राकेश की कथा यात्रा को समझा जा सकता है। पहले राकेश की कहानियां प्रगतिशील शैली में प्रेमचंद की परम्परा की प्रतीत होती हैं और लगातार अपने दूसरे, तीसरे और चौथे संग्रह में उनकी कहानियां यथार्थवादी और समकालीन होती चली जाती हैं, लेकिन इसके साथ 'एक घटना' का जिक्र नहीं करना बेमानी होगा। इसे 1974 में कमलेश्वर ने प्रकाशित करवाया, जिसमें राकेश की 12 कहानियों 'नन्हीं', 'भिक्षु', 'मंदिर की देवी', 'सतयुग के लोग', 'चांदनी और स्याह दाग', 'एक घटना', 'बनिय बनाम इश्क', 'कटी हुई पतंगें', 'लड़ाई', 'गुमशुदा', 'अर्द्धविराम', 'लेकिन इस तरह' को शामिल किया गया। ये सभी कहानियां राकेश को, उनके पंजाबी संवेदना और कहानी यात्रा को समझने में मददगार है। कमलेश्वर ने लिखा है 'इस संकलन की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पहली लिखित कहानी 'नन्ही' और पहली प्रकाशित कहानी 'भिक्षु' दोनों यहां मौजूद हैं और इन दोनों कहानियों में राकेश की ज्वलंत यात्रा के अग्निबीज मौजूद हैं। नन्हीं में कहानी यात्रा के और भिक्षु में रंगमंचीय नाटकों को उस यात्रा के जो 'आषाढ़ के एक दिन' के साथ सार्थक रूप से शुरू होकर एक मंजिल भी बन गई। यथार्थ और क्लासिक चेतना का यह संयुक्त उदय एक विलक्षण शुरूआत है और राकेश की यह खासियत थी कि वह शुरूआत करने में भी विश्वास रखता था और जो शुरू करता था उसे विलक्षणता से व्याप्त कर लेता था।'

इस प्रकार मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में समकालीन जीवन के सुखद-दुखद प्रसंगों का अंकन जिस सूक्ष्मता से किया है, उतनी ही गहराई से मानव--मानव के सम्बन्धों को उनकी पूरी कटुता तिक्तता और त्रासदी के साथ व्यक्त किया है। वे समकालीन परिवेश में ताप, संताप, भय, अकुलाहट, सुरक्षा, असुरक्षा, आत्मीयता, परायापन को व्यक्त करने में सक्षम हैं। इसलिए हम कह सकते हैं। कि आधुनिक कहानीकारों में राकेश ऐसे कहानीकार है जिन्होंने अपने अनुभव को ही कहानियों के शिल्प में ढाल दिया है।

उपन्यास साहित्य - 'नई कहानी' के भावों और चेतना का विस्तार ही राकेश के उपन्यासों में दिखाई देता है। समकालीन उपन्यासकारों में राकेश ने ही परम्परागत स्वरूप से हटकर उपन्यासों में अपनी अनुभूति के आधार में मध्यमवर्ग के सामजार्थिक जीवन को अभिव्यक्त किया। राकेश के तीनों ही उपन्यासों 'अंधेरे बंद कमरे (प्रकाशन 1961)', 'न आने वाला कल (1969)', 'अंतराल (1972)' की विषय वस्तु स्त्री-पुरूष संबंधों के बहुआयामी रूप ही हैं। वस्तुतरू इनके सभी पात्र मोहन राकेश के जीवन के आसपास के ही प्रतीत होते हैं। इसीलिए इनमें यथार्थता तो है, लेकिन अनुभव के विस्तार की कमी महसूस देती है। 'मोहन राकेश के तीनों उपन्यासों में शहरी जीवन की मध्यवर्गीय कुंठा का निरूपण है। नर-नारी सम्बन्धों के संदर्भ में इस कुंठा के अनेक पक्ष उपन्यासों में उभरकर सामने आए हैं इसीलिए इन उपन्यासों को अंधेरे की भटकन कहा गया है।' इन सबके बावजूद राकेश के उपन्यासों में नई कहानी की ही भांति नीवनता के पुट को नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने परम्परावादी लेखन से हटकर समकालीन विषयवस्तु को अपने उपन्यास लेखन का आधार बनाया।

प्रेमचंद से मोहन राकेश तक आते-आते हिन्दी उपन्यास में कथ्य शैली की दृष्टि से विराट अंतर आया है। इस काया पलट का मूल कारण स्थूलता का विसर्जन और सूक्ष्मता का निर्वहण ही है और परिवर्तन की सारी दिशाएं समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक उत्थान-पतन से उद्भूत हैं।' वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता ने भी लिखा है 'उपन्यास, मोहन राकेश के लिए एक ऐसी विधा के रूप में सामने आया, जिसके माध्यम से वह अपने चारों ओर के उमडते जीवन को अभिव्यक्ति दे सकते थे। उन्होंने देखा कि हार्डी, टाल्स्टाय, चेखव, 'रत और प्रेमचंद के उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति जीवन के स्थानीय रंगों की पहचान और उन्हें उनकी वास्तविकता में अंकित कर देने की योग्यता थी। उन्हें यह भी लगा कि

टिप्पणी

उपन्यास के पात्र अपने देश की मिली के बने होने चाहिए। पात्रों में यथार्थ की शक्ति तभी आ सकती है जब उन पात्रों द्वारा उपन्यास के पात्र अपने देश की मिट्टी के बने होने चाहिए। पात्रों में यथार्थ की शक्ति तभी आ सकती है जब उन पात्रों द्वारा कहा गया एक-एक शब्द उनकी जीवनगत परिस्थिति द्वारा विवश कर कहलवाया गया हो।'

बंद कमरे में - इसमें राकेश ने स्वतंत्रता के बाद बहुत तेजी से बदल रहे और नई दिशा की ओर बढ़ रहे समाज को दिखाया है। एक ऐसा बदलाव, जिसमें भौतिक जगत में आगे बढ़ने की होड़ है और प्रेम-विश्वास जैसे शब्द पीछे छूटते चले जा रहे हैं। इस भागमभाग में तनाव से निकटता बढ़ती जा रही थी। इसी को केन्द्र में रखकर राकेश ने तत्कालीन समाज, परिवार, राजनीति और परिवेश का चित्रण किया है। साथ ही एक ऐसे पुरूष की दोहरी मानसिकता को अभिव्यक्त किया है जो विचारों से नारी स्वतंत्रता को बढ़ावा देता है, लेकिन संस्कारों से पुरूष प्रधान संस्कृति के अनुसार पत्नी को अपनी इच्छा के अनुसार ही चलाना चाहता है। ऐसे में अगर पत्नी विरोध करती है तो उसके समूचे व्यक्तित्व और पुरूषत्व को चोट पहुंचती है। वह खुद भी नहीं समझ पाता कि आखिर उसे जाना किस ओर है। (वस्तुतः राकेश खुद भी इसी दोहरी मानसिकता से गुजरे। वे खुद भी नारी स्वतंत्रता और नारी मुक्ति के पक्षधर रहे, लेकिन पुरूष प्रधान पंजाबी संस्कृति भी उन पर हमेशा हावी रही। यही कारण है कि कमाऊ पत्नी से उनका तलाक हो गया) श्रीकांत वर्मा ने लिखा है, 'जहां तक इसकी घुटन, ऊब और एकरसता का संबंध है शायद यह पहला उपन्यास है जिसने इतनी तीव्रता के साथ इसे प्रतिष्ठित किया है। 'अंधेरे बंद कमरे' यदि एक महत्वपूर्ण उपन्यास है तो केवल इस दृष्टि से।' यह दिल्ली के अभिजात्य वर्ग के जीवन और नौकरीपेशा पति-पत्नी की मानसिक दशाओं पर आधारित है। एक सीमा तक यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास है जिसमें प्रेम की असली स्थिति की खोज, व्यक्ति स्वतंत्रता की व्यक्ति के अनुसार बदलती परिभाषा और संस्कारों और विचारों का द्वंद्व दिखाया गया है। इसका हर पात्र इस द्वंद से उबर ही नहीं पाता और ऊहापोह के बीच में ही अपनी मंजिल की ओर बढ़ने की कोशिश करते हुए दिखाई देता है।

वैसे इसकी मूल संवेदना पाठकों और आलोचकों के लिए भी अलग-अलग ही है। डॉ० मदान ने लिखा है, 'जो यदि कृति नहीं है तो अनुकृति भी नहीं है, उपलब्धि नहीं है तो सम्भावना अवश्य है। यह इसलिए कि इसमें कृति होने की क्षमता है, उपन्यास के मुहावरे को खोजने की लगन है।' खुद राकेश ने इसकी भूमिका में लिखा है 'मैं सोचकर तय नहीं कर पा रहा हूं कि इसे क्या कहूं? आज की दिल्ली का रेखाचित्र ? पत्रकार मधसदन की आत्मकथा? हरबंस और नीलिमा के अंतर्द्वन्द्व की कहानी? हवा में कहीं एक कोहिनूर झिलमिलाता है, उस कोहिनूर का किस्सा।' उपन्यास में हरबंस और नीलिमा के अंतर्द्वन्द्व को ही मूल संवेदना मानी जा सकती है। इस घटना से अन्य घटनाएं शाखाओं और उपशाखाओं की तरह कथा को निरंतर एक सूत्र में पिरोती चली जाती हैं।

"अंतराल एक ऐसे सर्जक की सर्जना है जिसमें उसका युग और उससे संबंधित सभी संदर्भ यथार्थ शैली में अभिव्यक्त हुए हैं। अतरू अंतराल युग-दर्पण में पड़ी समस्त छवियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है।"

इस प्रकार मोहन राकेश ने अपने उपन्यासों में विविध वर्गों के माध्यम से भिन्न-भिन्न प्रकार की संवेदनाओं का अंकन किया है। तीनों ही उपन्यासों में विभाजन के बाद देश में आये परिवर्तन से उत्पन्न मानसिकता और मोहभंग में जी रहे मनुष्य की कथा व्यक्त हुई है। पात्रों को उन्होंने प्राचीन आदर्शों के प्रति मोहभंग की स्थिति से गुजरते हुए दिखाया है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासों में व्यक्त समस्याएं काल्पनिक न होकर समाज में जी रहे आम और खास सभी परिवारों

टिप्पणी

के बीच से निकाली गई हैं और काफी हद तक ऐसा है भी, क्योंकि राकेश ने अपने उपन्यासों में कई जगहों पर अपने जीवन की ही कुछ घटनाओं को कथावस्तु बनाया है। उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि युग के भाव बोध को यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। 'वस्तुतरू पहला उपन्यास' 'अंधेरे बंद कमरे' अनुभूति और युगीन यथार्थ के संवेदनशील बोध की समन्विति का आभास देता है किन्तु बाद के दोनों उपन्यासों में युगीन यथार्थचेतना की अपेक्षा अनुभूति को ही अधिक महत्व मिला है। इसलिए 'न आने वाला कल' तथा 'अंतराल' अंतर्मन की अंधेरी गुफाओं पर रोशनी डालते हैं। ये दोनों उपन्यास आत्मान्वेषण के स्तर पर जीवन के सत्य के साक्षात्कार करने वाले उपन्यास हैं। मोहन राकेश के उपन्यास साधारण व्यक्ति के सुख-दुख, हर्ष-विषाद में मानवीय गरिमा की खोज करते हैं। साधारण की महत्ता उनके उपन्यास की विशेषता है।"

आधुनिक पत्नी की संवेदना घर की चारदीवारी को पार करके अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्तित्व बनाना चाहती है। नीलिमा और हरबंस की प्रेम कहानी में आधुनिक परिवेश के कारण ही दरार पड़ी। आधुनिक समाज और परिवेश को मोहन राकेश ने इस उपन्यास के पात्र मधुसूदन के सपने में ही व्यक्त कर दिया है, 'एक सपना था जो बार-बार दिखाई देता था, हर रात को दिखाई देता था और कई रातों को ताक कई बार दिखाई देता था। मैं देखता हुँ कि एक बड़ा सा इंजन है जिसके पीछे गड़ियों के कई एक डिब्बे लगे हैं। वह इंजन पटरी से उतरकर चलता है। मैं बहुत चाहता हूँ कि वह पटरी पर अब चढ़े, अब चढ़े, और कई बार सोचता हूं कि थोड़ी दूर और जाकर उसे पटरी मिल जाएगी। मगर वह पटरी के पास पहुंचकर नीचे ही चलता है, उसके ऊपर नहीं जाता।' इस सपने को अगर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो इंजन 'जीवन का रूप' है और पटरी 'जीवन की पटरी' और पटरी मिलने की आकांक्षा 'जीवन की अतृत्प अभिलाषा' है। आधुनिक समाज का हर किरदार अपना पूरा जीवन इसी अभिलाषा में काट देता है और इंजन-पटरी की ये आंख-मिचौली खत्म नहीं होती, फिर वह चाहे मधुसूदन हो, हरबंस, नीलिमा या शुक्ला।

अन्तराल - यह एक कस्बे के परिवेश और सामाजिक जीवन की कहानी है। इसमें तनाव, संत्रास और घुटन को दिखाया गया है। यहां स्त्री-पुरूष के नामहीन संबंधों पर आधारित वैयक्तिक जीवन को केंद्र बनाया गया है। श्यामा और कुमार दोनों के अपने-अपने जीवन की कुछ ऐसी घटनाएं हैं कि दोनों ही उस रिक्तता और अभाव की पूर्ति करना चाहते हैं। श्यामा अपने पूर्व पति देव के अभाव की पूर्ति का निरर्थक प्रयास करती है और कुमार अपनी प्रेमिका लता के कहीं और विवाह कर लेने की रिक्तता को भरना चाहता है। विवाह का मतलब कुमार की नजर में एक समझौता ही है और आवश्यकता महसूस होने पर वह उसे तोड़ने के भी पक्ष में है। इसी प्रकार मल्होत्रा दंपती में भी परस्पर प्यार और आत्मीयता नजर नहीं आती। 'अंतराल मूल रूप से संबंधों का उपन्यास है और इसमें नर-नारी संबंधों की बारकी से पड़ताल की गई है। परिभाषित प्रेमी-प्रेमिका और पति-पत्नी के अलावा इस उपन्यास में कुछ अनाम संबंधों के लिए नये धरातल की तलाश है।

श्यामा और कुमार के वैयक्तिक जीवन के अतीत बोध की संवेदना इतनी गहरी और सूक्ष्म है कि वे उपन्यास के अंत तक अपने अभाव की पूर्ति नहीं कर पाते। उनके बीच अंतराल क्यों बना रहता है? इसके पीछे क्या कारण है? इनका जवाब लेखक ने बड़े ही सूक्ष्य और मनोवैज्ञानिक तरीके से दिया है। यद्यपि इसके द्वारा राकेश ने किसी समस्या का निदान नहीं बताया है बल्कि परिवेश एवं परिस्थितियों के साथ अपने पात्रों की मोदशा एवं क्रिया कलापों को व्यक्त किया है। कथावास्तु, परिस्थिति और पीड़ा में इतनी सजीवता है कि सबकुछ अपने बीच का ही घटित होने वाला भाग लगता है।

टिप्पणी

'अंतराल' पानवीय रिश्तों की अपनी पूर्णता और पूरी तीव्रता में न जी पा सकने के अभाव बोध का उपन्यास है। उपन्यास में रिश्तों के सवाल का संदर्भ वैयक्तिक है और प्रसंग एक नामहीन संबंध का।"

श्यामा, सीमा, बीजी सभी अकेली, दुखी, कुंठित। ये सभी खुलकर जीने की तलाश में अंदर से ही घटती रहती हैं। श्यामा तो अपने पति के साथ के संबंधों को भी संबंध नहीं मानती बल्कि 'संबंध हीन संबंध' की संज्ञा देती है। श्यामा कुमार से प्रेम करती है, पर वह इसे सामाजिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाती। वह दोनों पुरूषों पति और प्रेमी के सामने अपना अस्तित्व मनवाना चाहती है। दूसरी ओर कुमार भी सुखी नहीं है। उसका तलाक हो चुका है। मल्होत्रा, देव अपनी पत्नी को जिस सांचे में देखना चाहते हैं वह उसमें फिट नहीं। हर पुरुष पात्र स्त्री पात्र से दुखी, ऊबा हुआ है। विवाह नाम की संस्था बिखरती जा रही है और जिन संबंधों को आकार लेते दिखाया जा रहा है उनमें न तो कोई नैतिक मानदंड हैं और न ही वैचारिक धरातला ये वस्तुत: राकेश की सोच है या उनके जीवन में आए किसी पल, घटना का एक प्रतिबिंब प्रो० मल्होत्रा, प्रो०, देव और गोपाल को केंद्र बनाकर राकेश ने विवाहित जीवन की स्थितियों को रेखांकित किया हैं। विवाह पूर्वक प्रेम संबंधों का चित्रण कर राकेश सामाजिक मान्यताओं पर प्रहार करते हैं और एक ऐसी व्यवस्था की वकालत करते हैं जहां स्त्री-पुरूष के खुले संबंधों के माध्यम से नए संबंधों की संरचना हो ..... जहां मनुष्य अपनी तरह से जीवन जीने के लिए स्वतंत्र हो। उसमें समाज, संस्कार कहीं बाधा न हों।

न आने वाला कल - यह उपन्यास कथा प्रयोग की दृष्टि से लिखा गया है, जिसमें एक निर्णय की अनेक प्रतिक्रियाओं को उभारने की कोशिश की गई है। उपन्यास के कवर पेज पर भी लिखा है, न आने वाला कल' आधुनिक तेजी से बदलते जीवन और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत प्रसिद्ध उपन्यास है जो आर्थिक संघर्ष, स्त्री पुरूष संबंध तथा साहित्य और कला की दुनिया को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करता है। यह उपन्यास प्रकाशित होते ही चर्चा का विषय बन गया था और अनेक युवक-युवती इसके चरित्रों में अपनी जीवन की झांकी पाते थे।' इसमें स्थान विशेष के परिवेश में जीने वाले लोगों की मन:स्थिति, जीवन शैली एवं उनकी निजी आत्मपरक पीड़ाओं को आधार बनाया है। इसमें मनुष्य की नियति, उसकी सोच और उसकी मन:स्थिति ही केन्द्र में है। इस उपन्यास में हर पात्र अनचाहे संबंधों की यंत्रणा भोग रहा है। ऐसे संबंध जो सामाजिक रूप से स्वीकृत होते हैं, बाहर से सुखद एवं पूर्ण दिखाई देते हैं, लेकिन अंदर से इन संबंधों में खोखलापन और घुटन भरी होती है और जिन्हें जीने या ढोने के अलावा और कोई रास्ता भी नहीं रहता। राकेश ने मनोज की मानसिक उथल-पुथल का वर्णन एक तिलचट्टे के माध्यम से किया है। इस पूरे घटनाक्रम का इतने मनोवैज्ञानिक तरीके से विश्लेषण किया गया है, कि पाठक कहीं न कहीं पात्र से खुद को जोड़ लेता है।

'न आने वाला कल' उपन्यास स्त्री पुरूष के संबंधों की गहराई में खोज करता है और इन संबंधों में तनाव एवं टूटने के कारणों पर प्रकाश डालता है। सूक्ष्म मनोविश्लेषण अधिक है और स्थल घटनाएं इसमे बहुत कम हैं।

उपन्यास के केन्द्रीय पात्र मनोज और शोभा ने प्रेम विवाह किया था, लेकिन दोनों को ही ये संबंध बोय प्रतीत होने लगता है, क्योंकि दोनों समझौता करके जीना नहीं चाहते हैं। एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवत्ति दोनों को ही अधूरा, दुखी और अकेला बना देती है और अहम् की टकराहट दोनों को अलग कर देती है। इनके अलावा अन्य पात्र पार्कर दंपती, लारा व्हिस्लर और जैनी, कोटली और शारदा, जिमी और रोज आद के संबंधों में भी अहम् की टकराहट को ही दिखाया गया है, जिसमें परस्पर संबंध नाममात्र ही रह जाते हैं। ये पात्र भी अपने वैवाहिक जीवन को केवल ढोते दिखाई देते हैं। राकेश की हर रचना के पात्र की तरह इसका भी मुख्य पात्र मनोज दोहरी मानसिकता में ही रहता है। फिर वह चाहे शोभा

टिप्पणी

से संबंधों को लेकर हो या त्यागपत्र देने के संबंध में। राकेश ने मनोज के माध्यम से अपने शिक्षक काल के अनुभवों को भी अभिव्यक्त किया है और जैसे वे खुद त्यागपत्र देते हैं वैसे ही इसका नायक मनोज भी स्कूल की मशीनी जिंदगी से उबकर त्यागपत्र देता है।

राकेश ने छोटी-छोटी बातों और स्थितियों का अनुभव के आधार पर इतना यथार्थवादी चित्रण किया है, कि वे उपन्यास में अपरिहार्य लगते हैं। यह अधिक प्रयोगशील और जीवन यथार्थ को गहरी पहचान कराने वाली रचना है। इसमें जीवन के विस्तार की अपेक्षा जीवन को संचालित करने वाली मूलभूत प्रवृत्तियां और व्यक्तित्व को निर्मित करने वाली परतों का विस्तृत विश्लेषण है। उपन्यास के पारम्परिक कथा संस्कार को उपन्यासकार ने तोड़ा है। यह उपन्यास किन्ही घटनात्मक लड़ियों से निर्मित नहीं हुआ है और न ही इसमें कौतुहलवर्द्धक घटनात्मक मोड़ हैं।'

एकांकी साहित्य - एकांकी से राकेश की नाटयकला के क्रमिक विकास और उसकी विचाराधारा को समझा जा सकता है। यद्यपि ये नाटकों के समकक्ष नहीं है और न ही इनमें नाटकों जितनी गहराई, चिंतनशीलता या कलात्मकता है, लेकिन इनका अपना महत्व है। 'अण्डे के छिलके रू अन्य एकांकी तथा बीज नाटक मोहन राकेश की नाट्य यात्रा की पूरी कहानी है।' नाटकों के व्याकरण और तंत्र की पहचान मोहन राकेश के एकांकी साहित्य में ही मिलता है, जिसे बाद में सृजनात्मक प्रयोग के रूप में बड़े नाटकों में इस्तेमाल किया गया है। एकांकी का कथानक भी समकालीन जीवन से ही लिया गया है, इसीलिए इनमें भी तत्त्कालीन जीवन की विसंगतियां, विडम्बना और संवेदना दिखाई देती है।

सत्य और कल्पना - सत्य और कल्पना: यह संग्रह 1949 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह सिर्फ 1940-50 के बीच हिंदी एकांकी रचना के दौर से ही साक्षात्कार नहीं कराता अपितु स्वयं रचनाकार के प्रारंभ बिन्दु से लेकर अंतिम समय तक की उनकी रंग-दृष्टि की विकास यात्रा और विकास को जानने-समझने का प्रामाणिक आधार भी प्रस्तुत करता है। इस संग्रह में प्रकाशित कुछ एकांकियों के बाद में संशोधित और नए प्रारूप भी सामने आए। जैसे 'घड़ी भर एकांत' के कवि नीरद को 'स्वयंवर' में कवि दिवाकर बनाकर उसकी कविता का ज्यों का त्यों इस्तेमाल कर लिया गया है और चरित्र भेद के बावजूद दोनों की नायिका का नाम करूणा ही है। 'मनहूस आदमी' का संशोधित रूप 'प्यालियां टूटती हैं' और 'प्रतीक्षा' का 'सिपाही की मां' बन गया है। 'मिट्टी के मानव' के 'सरस्वती' में प्रकाशित रूप पर कई संशोधन किए गए, जो 'सत्य और कल्पना' में छपे प्रारूप से काफी भिन्न है। अंत परिवर्तन के कारण इसके समग्र प्रभाव में भी काफी अंतर आ गया। 'कलिंग विजय' 1945 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। 1947-48 में इसका संशोधित रूप बंबई रेडियो से प्रसारित हुआ। इससे भी भिन्न रूप 1949 में एकांकी संग्रह 'सत्य और कल्पना' में छपा। फिर भी इसकी संशोधन यात्रा खत्म नहीं हुई।

1958 में राकेश ने इसे फिर से लिखा और 'कलिंग विजय' का यह नया रूप पहले से काफी अलग है। पहले प्रारूप में मौजूद असंधिमित्रा की दासी पद्मा वृद्धा का गीत (बेबस मन जो आस लगाए उसकी डोर हाथ न तेरे, फिर तु क्यों भरमाए?) और देवगुप्त एवं विजयगुप्त (चर) नामक गौण पात्रों को यहां हटा दिया गया है। इनके स्थान पर महामात्य की पत्नी और पाटलिपुत्र के सेनानायक कुमार की मां सुजाता के नए चरित्र की सृष्टि की गई है। इसके अतिरिक्त पहले प्रारूप में सद्यरू विधवा अनाम युवती को तारा का निश्चित चरित्र देकर विद्रोही युवक की बहन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस परिवर्तन से एकांकी में मानवीय संबंधों की ऊष्मा और नाटकीयता में तीव्रता पैदा हुई है। वस्तुत: राकेश 'सत्य और कल्पना' में प्रकाशित एकांकियों से संतुष्ट नहीं थे। इसी कारण वह उन्होंने इसे जल्द ही मार्केट से हटवा दिया और ये लोगों के लिए दुर्लभ हो गई। यहां तक कि यह संग्रह उनके मित्रों और करीबियों के पास भी दुर्लभ हो गया था। जयदेव तनेजा ने लिखा है, 'एकांकी संकलन सत्य और कल्पना की

टिप्पणी

तलाश में जब मैं उनके मित्र सत्येंद्र शरत के पास पहुंचा तो उन्होंने बताया कि स्वयं राकेश द्वारा भेंट की गई उसकी (शायद अंतिम) प्रति भी अब उनके पास नहीं हैं, क्योंकि बहुत पहले राकेश ने उसे वापस लेकर और उनके सामने ही यमुना में फेंककर हमेशा के लिए उससे मुक्ति पा ली थी। उन्होंने उसे डिसऑन कर दिया था और यही कारण है कि उनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची में अब कहीं उसका उल्लेख नहीं मिलता एक दिन अनीता जी के सहयोग से राकेश के सामान में से 'सत्य और कल्पना की एक खंडित प्रति प्राप्त हो गई।' 'सत्य और कल्पना' की संशोधन प्रक्रिया से यह स्पष्ट है कि राकेश की किसी रचना का पत्रिका में ही नहीं पुस्तकाकार प्रकाशित रूप भी अंतिम नहीं होता था। इसके बाद इसकी एकांकियों में संशोधित रूप 'अण्डे के छिलके' अन्य एकांकी तथा बीज नाटक' का प्रकाशन उनके अभिन्न मित्र ओमप्रकाश जी ने उनके देहांत के बाद 1973 में कराया।

अण्डे के छिल्के - अन्य एकांकी तथा बीज नाटक: इस संग्रह में चार एकांकी 'अण्डे के छिलके', 'सिपाही की मां,' 'प्यालियां टूटती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल', दो बीज नाटक 'शायद' और है और एक पार्श्व नाटक 'छतरयिां' संकलित है।

'अण्डे के छिलके' एक हास्यप्रधान एकांकी है, जिसमें प्राचीन और वर्तमान पीढ़ियों के संस्कारों, मर्यादाओं, विचारों, आडम्बरों आदि को विषय बनाया गया है। आजादी के बाद नहीं पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का द्वंद्व सर्वाधिक चर्चित विषय था। एक एकांकी में एक ऐसे संयुक्त और सुखी परिवार का चित्रण किया गया है, जिसकी तीन पीढ़ियां एकसाथ रहती हैं। मां जमुना पुरानी पीढ़ी की है तो बढ़े भैया माधव और भाभी राधा नई और पुरानी पीढ़ी को जोड़ने वाली कड़ी है। गोपाल, पत्नी बीना एवं सबसे छोटा श्याम नई पीढ़ी के हैं। इन पीढ़ियों के बीच मूल्यों और संस्कारों की टकराहट को हास्य के माध्यम से व्यक्त किया गया है। पुराने संस्कारी लोग अण्डा खना निषिद्ध मानते थे, जबकि नई पीढ़ी बड़ों से छुपकर अण्डा खाती है। घर की बहू सास के सामने धार्मिक किताब में छुपाकर चंद्रकांता पढ़ती है। अपनी मान्यताओं के साथ खुलकर जीने का साहस कोई नहीं दिखा पाता। इसी कारण मां से भय के खाये हुए अण्डे के छिलके मोजे में रखे जाते हैं। यहां मोहन राकेश ये संदेश देना चाहते हैं कि खोखला आदर्शवाद विचारों और आचरणों में विसंगति ही ले आता है। 'अण्डे के छिलके में मध्यवित्तीय दुराव-छुपाव की प्रवृत्ति पर चुटकी भरी गई है। यह एकांकी एक ऐसे परिवार की जीवन स्थिति पर आधारित है जिसमें प्राचीन संस्कारों की प्रबलता है। किन्तु वह समाज में चल रहे परिवर्तन के प्रभाव से भी अछूता नहीं है। दोनों की टकराहट स्वाभाविक है लेकिन संस्कारों, मर्यादा और अंध विश्वासों की ओट में छिपे आडम्बर, दुराव-छिपाव के राकेश पक्षपाती नहीं लगते।'

इस संग्रह का दूसरा एकांकी 'सिपाही की मां' में युद्ध की विभीषिका और उसका एक सिपाही के परिवार पर प्रभाव को दिखाया गया है। सा ही इसमें एक निम्र मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक मजूबरी और उनक लिए एक बेटी की शादी के महत्व और उसमें आने वाली परेशानियों को भी दिखाया गया है। इसमें मां के एक संवाद के दौरान राकेश लिखते हैं अगर लड़की के ब्याह की चिंता नहीं होती तो हम लोग आधा पेट खाकर रह लेते, पर मैं कभी इसे लड़ाई पर नहीं भेजती।' राकेश ने खुद भी युद्ध की विभीषिका देखी और उसमें ग्रामीण लोगों की सांत्वना का स्तर भी देखा। अपने इसी अनुभव को उन्होंने गांव के दो पात्रों दीनू और कुंती के माध्यम से व्यक्त किया है जिनका काम दूसरे के दुखों पर नमक डालना है। ये लोग सांत्वना देने के नाम पर दरअसल परिवार की चिंताएं ही बढ़ाते हैं। एकांकी में युद्ध पर गए एक सैनिक की मां बिशनी और बहन मुन्नी के इंतजार को दिखाया गया है। साथ ही युद्ध पर गए सैनिक की पत्नी की स्थिति भी राकेश ने मां के संवाद में स्पष्ट कर दिया है, 'यह मर गया तो इसकी बीवी भी फांसी लगाकर मर जाएगी।'

टिप्पणी

प्याली टूटती है - तीसरा एकांकी 'प्यालियां टूटती है' में जीवन में आये बदलाव को व्यक्त किया गया है। इसमें कृत्रिमता, होग, झूठ और संबंधों के बेगानापन को हमारे जीवन का हिस्सा बनते दिखाया गया है। साथ ही ये स्पष्ट दिखाया गया है कि किस तरह आर्थिक विषमता के कारण संबंधों की मिठास खत्म हो गई है। वस्तुत: संबंधों को यहां प्यालियों के लिए रूप में ही कमजोर दिखाया गया है, जहां हल्का-सा झटका भी इसमें कई दरार ला देता है।

बहुत बड़ा सवाल - संग्रह का चौथा और अंतिम एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' में व्यंग्य के माध्यम से सभा-सोसायटी में चलने वाले चर्चा सत्र की उपयोगिता को दिखाया है कि किस तहर बिना किसी प्रस्ताव को पास किए सभा समाप्त हो जाती है। समस्याएं ज्यों की त्यों रहती हैं और व्यर्थ की बहस में समय नष्ट होता है। इसमें मध्यमवर्गीय जीवन की स्थिति को बड़े ही स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया गया है। जीवन में आई नीरसता, जड़ता को राकेश ने बड़े सशक्त ढंग से व्यक्त किया है। इसमें अधिकतर पात्र कम काम करके अधिक सुविधाएं प्राप्त करना चाहते हैं। उन्हें समय की परवाह नहीं। अनावश्यक मीटिंगों में बात करना, आरोप-प्रत्यारोप उनकी संकीर्ण मानसिकता को दिखाता है। इसमें हर व्यक्ति सोचता है कि उसके सवाल जो जिन्दगी से, समाज से हैं, वे ही बहुत बड़े हैं। उन सवालों पर ही सबका ध्यान होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त संग्रह में बीज नाटक 'शायद' और 'हं' हैं। इन दोनों में वर्तमान युग के पारिवारिक विघटन, अकेलेपन, घुटन को दिखाया गया है। इन नाटकों को राकेश के नाट्य कला का बीज रूप भी कहा जाता है। 'सांकेतिकता इन बीज नाटकों का प्राण है। सभी कुछ बेमतलब सा दोहराया जा रहा है। तलाश है उसकी जो आदमी को रोज रोज नया उत्साह दे और जो है, इसमें कुछ नहीं है।"

'शायद' में स्त्री-पुरूष दो पात्रों को लिया गया है। इनमें पात्रों को कोई नाम नहीं दिया गया और न ही इनके व्यक्तित्व की कोई पहचान बताई गई है। मानवीय जीवन की जटिलता और संबंधों का बिखराव ही इनके मूल में है। इनमें वह छटपटाहट है जो उनकी रचना के हर पुरूष पात्र में देखी जाती है। 'जीवन की व्यापक संवेदनाओं को समेटने की क्षमता रखनेवाली इन रचनाओं में एकांकी-सा नुकीला, इकतरापन और शिल्पगत सौष्ठव नहीं ..... । शायद लघु आकार के पूर्णाक नाटक हैं।श

दूसरे बीज नाटक 'हूं' में जीवन के यथार्थ को व्यक्त किया गया है। इसमें पुरानी और नई पीढ़ी की विचाराधारा में भिन्नता को दिखाया गया है। साथ ही स्पष्ट बदलते समाज का क्रूर रूप दिखाया गया है कि किस तरह एक सामान की तरह जब मां बाप उपयोगी नहीं रह जाते, तो उन्हें छोड़ दिया जाता है।

इस संग्रह में संकलित पार्श्वनाटक 'छतरियां' राकेश की नाट्यकला को नवीन रूप में प्रस्तुत करता है। इसमें राकेश ने पार्श्व से आती ध्वनियों के माध्यम से सारे कथ्य को प्रस्तुत किया है। यह नया प्रयोग था जो अब तक की नाट्य परंपराओं और सीमाओं को तोड़कर अपनी सामर्थ्य को स्थापित करता है। इसमें 'छतरियां' प्रतीक हैं अपनी सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों की। मनुष्य इन छतरियों के साये में जीना चाहता है लेकिन स्थितियां ऐसा होने नहीं देतीं। 'इसका शिल्प और कथ्य दोनों ही एकदम भिन्न हैं जो नाटक के संबंध में राकेश के संयमित चिंतन और सृजन की आकुलता को, उनकी कल्पनाशील दृष्टि और समकालीनता के बोध को एक साथ व्यक्त करता है। इस नाटक में राकेश ने तत्कालीन समाज में परिवर्तित हो रहे जीवन मूल्यों से उत्पन्न स्थिति और उनसे जुड़े सवालों को उठाया है। सारी स्थितियों में परिवर्तन के बाद भी मनुष्य कितना एकाकी हो जाता है और उसके जीवन मूल्य उसके ही सामने टूटते हैं, विश्वास खंडित होते हैं, इससे उत्पन्न कुंठा को राकेश ने उभारा है।' इसमें राकेश का चिंतन झलकता है जो मनुष्य के अस्तित्व को लेकर ही सवाल खड़े करता है।

टिप्पणी

2.4 कथेत्तर साहित्य

मोहन राकेश ने स्वयं को कहानी, उपन्यास या नाट्य लेखन तक ही सीमित न रखकर सभी विधाओं में समान रूप से लिखा। इसीलिए उन्हें संपूर्ण समग्र चेतना का कथाकार कहा जाता है। उनकी रचनाओं में विविधता, व्यापकता और चिंतन का नया आकाश उनकी सृजनात्मक क्षमता की कहानी खुद बयां करता है। कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार के रूप में हिन्दी साहित्य की अग्रिम पंक्ति में स्थान बनाने वाले राकेश के कथेत्तर साहित्य पर नजर डालें तो वे निर्विवाद रूप से एक सशक्त निबन्धकार, आलोचक, सफल यात्रा लेखक, विशिष्ट जीवनीकार, उत्कृष्ट अनुवादक और बाल साहित्यकार भी दिखाई देते हैं। ये रचानाएं संख्या की दृष्टि से अधिक नहीं होने पर भी लेखन की दृष्टि से अपनी-अपनी विधा को समृद्ध करने में सक्षम

जीवनी साहित्य - जीवनी लेखन की शुरूआत और इसका विकास पश्चिमी देशों में हुआ। हिन्दी में यह विधा पाश्चात्य साहित्य की ही देन है, जो इतिहास और उपन्यास के मध्य कहीं उत्पन्न होती प्रतीत होती है। 'जीवनी घटनाओं का अंकन नहीं वरन् चित्रण है। यह साहित्य की एक विधा है, उसमें साहित्य और काव्य के सभी गुण है। वह मनुष्य के अंदर और बाह्य स्वरूप का एक कलात्मक निरूपण है। जिस प्रकार चित्रकार अपने विषय का एक ऐसा पक्ष पहचान लेता है जो उसके विभिन्न पक्षों में ओतप्रोत होता है और जिसमें नायक की सभी कलाएं और छटाएं समन्वित हो जाती हैं, उसी प्रकार जीवनीकार अपने नायक के आपे की गुंजी समझकर उसके आलोक में सभी घटनाओं का चित्रण करता है।"

इस प्रकार जीवनी अन्य विधाओं से भिन्न है। इसमें इतिहास की अपेक्षा वैयक्तिकता अधिक होती है। ये घटनाओं का स्थूल वर्णन नहीं, अपितु संबंधित व्यक्तित्व का सूक्ष्म मूल्यांकन होता है। इसमें यथार्थता की तीव्रता अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक होती है।

समय सारथी - इसमें 12 व्यक्तियों की जीवनियों को चार खंडों में बांटा गया है। इसमें 'सुदूर अतीत' के गौतम बुद्ध, सुकरात और अशोक से लेकर 'वर्तमान' (आधुनिक काल) के महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू और मार्टिन लूथर किंग तक के ऐसे महान व्यक्तियों की जीवनियां हैं जिन्होंने देश के नव निर्माण, विकास और नवीन संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और जो आधुनिक युग के प्रवर्तक और स्तम्भ माने जाते हैं। इसकी भूमिका में राकेश ने लिखा हैं 'इस संकलन में दी गयी जीवनियां केवल कुछ व्यक्तियों का इतिहास नहीं, एक तरह से पिछले अढ़ाई हजार वर्षों की प्रमुख मन: स्थितियों का भी इतिहास है। सुदूर अतीत में गौतम बुद्ध के मन में उठे पक्षों से लेकर वर्तमान में मार्टिन लुथर किंग की हत्या तक कहीं एक श्रृंखला है जिसे जोड़ने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए ये जीवनियां अपने ऐतिहासिक क्रम में हैं। हर काल की विशेष मनरू स्थिति के अनुसार उनका चुनाव किया गया है। पुस्तक का खंडों में विभाजन भी उसी आधार पर है। भारतीय मनरू स्थितियों के अध्ययन के साथ-साथ हर समय की समानान्तर विश्व मनरू स्थितियों का भी अध्ययन सम्भव हो सके, उसके लिए हर खंड में दो भारतीय जीवनियों के साथ एक जीवनी विदेश से भी ली गयी है।' स्पष्ट है कि 'समय सारथी' का लक्ष्य कुछ व्यक्तियों का जीवन परिचय देना नहीं अपित उनके माध्यम से उस युग की मानसिकता को अभिव्यक्त करना है। किसी एक युग के परिचय तक भी मोहन राकेश सीमित नहीं रहते। वह कई युगों तक व्याप्त मानवीय चेतना को अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इसमें जिनकी जीवनियों का चयन है वह सभी एक चरित्र के भी नहीं हैं। इनमें कोई दार्शनिक है, सम्राट है, स्वतंत्रता सेनानी है, संत है, भक्त है तो कोई साहित्यिक और राजनीतिक। कुछ पूर्व के है तो कुछ पश्चिम के। देश, सीमा, वर्ण, चरित्र सभी को लांघकर राकेश ने सबको एकसूत्र में बांधकर इन्हें मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि ये सभी असाधारण होकर भी जमीन से जुड़े रहे। राकेश ने पहले

टिप्पणी

खंड रू बुद्ध, सुकरात, अशोक, दूसरे खंड रू जॉन ऑफ, कबीर, मी (तीनों ही क्रांतिकारी), तीसरे खंड रू दयानंद, भगत सिंह, वाल्टेयर (तीरनों ही अपने अपने देश में क्रांति की मशाल जलाने वाले), चतुर्थ खंड रू महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और मारिनलूथर किंग (तीनों की देश के नवनिर्माण में अहम भूमिका) में शामिल शख्सियतों को देवता बनाकर पूजा नहीं बल्कि इन्हें मानव ही रखकर इनके उन गुणों को उभारा, जिनसे जनसामन्य और आज का समाज प्रेरणा ले सके। इन सभी ने परम्परा का विरोध किया है, सभी की जिंदगी गर्दिश में बीती है। सभी ने अपनी आत्मा पर किसी दूसरे का शासन स्वीकार नहीं किया और सभी ने मानवता की रक्षा के लिए संघर्ष किया।

'समय सारथी' में जीवनियों को भी कागज पर उतारने में राकेश का लेखन ज्यादा यथार्थवादी और समकालीन दिखाई देता है। इसमें भी उनके अनुभवों की छौंक दिखाई देती है, जो लेखन को ज्यादा रोचक और प्रासंगिक बनाती है। सभी को कहीं न कहीं आधुनिक समाज से भी जोड़कर स्पष्ट किया गया है कि इन सभी महापुरूषों की मौत अलग-अलग तरीके से, अलग-अलग जगहों पर हुई, लेकिन ये महापुरूष आज भी हमारे बीच में हैं। शरीर के रूप में न होकर विचारों के रूप में और इनके विचार युगों में एकजुट होकर आज ज्यादा प्रासंगिक हो गए हैं, जब न मानवता के मूल्य रहे और न ही मानवता को कुचलने वालों से संघर्ष करने का जज्बा।

यात्रा साहित्य - राकेश का स्वभाव और प्रवृत्ति ही ऐसी थी कि वे कभी एक स्थान पर टिककर नहीं रहे। अपने निजी जीवन और लेखन दोनों को ही लेकर भटकते रहे। इन यात्राओं में उन्होंने प्राकृतिक सौंदर्य, नारी सौंदर्य और देशभर के अलग-अलग स्थानों के सौंदर्य को और उसके अनुभव को अपने लेखन में अभिव्यक्त भी किया। अपनी यायावरी प्रवृत्ति के बारे में वे लिखते हैं, 'यायावर के जीवन का सबसे बड़ा संतोष इसमें है कि उसका रास्ता कभी समाप्त नहीं होता। वह चाहे जितना भटक ले, नई अनजान पगडंडियों का मोह उसके मन से कभी नहीं जाता।'

आखिरी चट्टान तक - 'यात्रा-वृत्त की विशेषता ही यह है कि लेखक और पाठक दोनों सहयात्री बनकर घूमें।' इस दृष्टि से देखें तो 'आखिरी चट्टान तक' में मोहन राकेश पाठक को गोवा से कन्याकुमारी तक की यात्रा करवाते हैं, जिसमें न सिर्फ भौगोलिक, अपितु मानसिक रूप से इन जगहों की संवेदना, संस्कृति से भी वे पाठकों को रूबरू करवाते हैं। वस्तुतरू यह एक संस्मरण है, जो उनकी दिसंबर 1952 से फरवरी 1953 के बीच की यात्रा के तुरंत बाद लिखा गया। इस यात्रा के दौरान ही कन्नानोर में उन्होंने 8 जनवरी 1953 को अपनी डायरी में लिखा है, 'मैंने अपनी यात्रा के नोट्स में कहीं लिखा है कि किसी भी अपरिचित व्यक्ति से चाहे उसकी भाषा, उसका मजहब, उसका राजनीतिक विश्वास तुमसे कितना ही भिन्न हो, यदि मुस्कुराकर मिला जाए तो तुम्हारी ओर जो हाथ बढ़ता है वह कोरा मनुष्य का ही होता हैरू कुछ ऐसी ही मुस्कुराहट की प्रतिक्रिया नाना व्यक्तियों पर मैंने लक्षित की है। यह ठीक है कि बाद में भाषा, मजहब और विश्वास के दाग उभर आते हैं, परन्तु वे सब फिर उस वास्तविक रूप को नहीं छिपा पाते और मनुष्य की मनुष्य से पहचान बनी रहती है।' इसके साथ ही राकेश ने डेल कार्नेगी की पुस्तक 'हाउ टू विन फ्रेंड्स एंड इन्फ्लूएंस पीपल' का एक कोट भी उदाहरण के रूप में लिखा है कि 'जब अपरिचित व्यक्ति से मिलो तो उनकी ओर मुस्कुराओ।

राकेश के ये नोट्स तो समग्र रूप में उपलब्ध नहीं होते, कि इस तरह की पंक्तियां और 'आखिरी चटान तक' पढ़ने के बाद ये तय है कि ये नोट्स ही इसके लेखन का आधार बने। इसमें प्रकृति के साथ ही जीवन के विभिन्न रंगों को दिखाया गया है। इसमें मनुष्य की प्रकृति और विकृति के भेद को भी स्पष्ट किया गया है। इसे हम याचा पत्तांत नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें तिथियों और स्थलों के उल्लेख को उतना महत्व नहीं दिया गया है, जितना लोगों की पीड़ा और उनके सुख-दुख की

टिप्पणी

अनुभूति को। 'लेखक की दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौंदर्य पर ही स्थिर नहीं रह गई है, बल्कि वह मानव की अंतरूप्रकृति और विकृति को भी भेद पायी है। यह यात्रा वृत्तांत साधारण से भिन्न है क्योकि यह स्थानों और तथियों को नहीं, अपरिचय की अनुभूति और पीड़ा को महत्व प्रदान करता है। इसमें किसान मजदूर, कुली-अफसर, व्यापारी-एजेंट, बेकार आवारा इस प्रकार सभी वर्ग के लोग अपने, कड़वे-मीठे अनुभव लेकर उपस्थित हुए हैं।'

राकेश की इस परानुभूति की अनुभूति की खासियत ही उनके साहित्य को यथार्थ का एक नया धरातल देता है। उन्होंने इसमें भी मनुष्य की भूख-प्यास, राग-विराग, वासना-प्रेम आदि के पीछे की मानसिकता को पहचानने का प्रयास किया है। इसमें एक ओर करूणा, वेदना, घृणा है तो दूसरी ओर निश्च्छल अनुभूति और सहज सौन्दर्य। इसमें पीड़ा की अनुभूति और सौन्दर्य साथ-साथ हैं। इसीलिए पाठक को इसमें कहीं भी नीरसता का बोध नहीं होता। राकेश ने अपनी अन्य रचनाओं की तरह इसमें भी दांपत्य जीवन के द्वंद्व आदि समस्याओं को सामने रखा है। साथ ही समकालीन समाजार्थिक, राजनीतिक समस्याओं और स्थितियों जैसे ठेकेदारी प्रथा, जमींदारी प्रथा आदि का भी उल्लेख किया है। राकेश की कलम से इन धर्मनगरियों में व्याप्त धार्मिक पाखण्ड भी अछूते नहीं रहे। इसमें राकेश के कविमन की भी झलक मिलती है। इसके वर्णन में कविता की लय है। 'प्रस्तुत यात्रा वर्णन में लेखक का आत्मीयस घुल-मिल गया है। इस कारण इसमें लेखक का व्यक्तित्व आसानी से झलकता है। फिर भी उन्होनें काफी हद तक तटस्थता बरती हैं। यह तटस्थता आत्मलीन सामान्य दर्शन की नहीं, बल्कि संवेदनशील दृष्टा की तटस्थता है। इसमें अलग-अलग अनुभव के खण्ड चित्र एक ही कैनवास पर सजाए गए हैं, इनसे जीवन का एक पूरा चित्र अपनी सारी जीवंतता के साथ पाठक के सामने उपस्थित होता है, जो सृष्टा की गहरी अनुभूति और दर्शित सत्य के उद्घाटक का वाहक बनता है।"

निबंध साहित्य - राकेशजी का व्यक्तित्व विविध आयामी था। यही कारण है कि साहित्य की अनेक विधाओं में उन्होंने अपना कुछ न कुछ योगदान दिया है। सामान्यतरू यह देखा जाता है कि रचनाकार किसी एक विधा विशेष में जितनी सफलता और कीर्ति प्राप्त करता है, उतनी दूसरी किसी विधा में उसे कदाचित ही मिलती है। किन्तु कुछ प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व ऐसे होते है, जो जिस विधा में हाथ डालते हैं उसमें उन्हें सफलता ही मिलती है। ऐसे ही महान प्रतिभा संपन्न रचनाकारों में राकेशजी थे। नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। इसके साथ ही साथ राकेशजी एक सफल निबंधकार के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। इनके निबंधों पर दर्शन और तत्वज्ञान का बहुत गहरा प्रभाव दिखाई देता है। राकेश जी के निबंध खासकर नई कहानी और नाटक के दर्शन पक्ष को उदघाटित करने मे विशेष रूप से सफल हुए हैं।

राकेश जी के समस्त सृजन पीठिका में उनका व्यक्तित्व प्रभावी बन गया है। गद्य की जिस विद्या की ओर वह उन्मुख हुए उसीमें उसने संपूर्ण जीवन के चित्रों को उकेर दिया है। आत्मप्रकाशन मनुष्य की प्रबल प्रवृत्ति है, वह नाटक, उपन्यास, कहानी के साथ-साथ निबंध में भी अभिव्यक्ति पाती है। निबंध में लेखक का व्यक्तित्व सर्वाधिक अहमियत रखता है। रचनाकार भले ही अपनी इच्छा से साहित्य में अपने व्यक्तित्व का प्रक्षेपण न करे, किन्तु वह अनजाने ही उसके सृजन में समावेश कर जाता है। राकेशजी के निबंध उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं। उनके निबंध किसी एक वर्ग तक सीमित न रहकर शैली व विषय विविधता के कारण अनेक वर्ग के हो गए हैं।

राकेशजी के लेख तथा निबंधों में 'परिवेश', 'रंगमंच और शब्द', 'बकलम खुद', 'साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि', 'कुछ और अस्वीकार', 'नयी निगाहों के सवाल' और 'हाशिए पर' महत्वपूर्ण है। इन निबंधों में राकेशजी का समीक्षक रूप उभरकर सामने आया है। उनके कुछ निबंधों को पढ़कर

टिप्पणी

ऐसा लगता है कि इन निबंधों पर उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव रहा है। विशेष रूप से उनका 'यात्रा का रोमांच' नामक निबंध पढ़ते समय पाठक तीव्रता से यह प्रतीत करता है कि इन निबंधों में कहीं न कहीं रचनाकार के स्वभाव और व्यक्तित्व की झलक मिलती है। उनके निबंधों के माध्यम से उनकी यायावरी वृत्ति का परचिय भी पाठकों को मिलता है। राकेशजी के निबंधों को पढ़ने से उनके विषय में सर्व साधारण रूप से पाठकों को मिलता है। राकेशजी के निबंधों को पढ़ने से उनके विषय में सर्व साधारण रूप से पाठकों की राय बनती है कि राकेशजी वातावरण और परिस्थितियों के दबाव से नये व्यक्तित्व के साथ अस्वाभाविक संबंधों के बीच जीना नहीं चाहते। इस संदर्भ में स्वयं उन्होंने एक स्थान पर कहा है-ष्व्यक्ति अपनी आंतरिक प्रवृति के अधिक अनुकूल होकर जी सकता है या अधिक उन्मुक्त भाव से अपने को नये अनुभवों के बीच खुला छोड़ सकता है। राकेशजी का यह कथन स्पष्ट करता है कि वे प्रवृत्ति के अनुकूल होकर जीना चाहते हैं, तो साथ ही साथ नये अनुभवों के बीच भी अपने आपको खुला छोड़कर जीना चाहते हैं।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि राकेशजी ने अपने निबंधों में अनेक स्थानों पर खुलकर अपने विषय में कहा है। राकेशजी के उपर्युक्त निबंध संग्रह बहुत कुछ अर्थ में बिलकुल नये लगते हैं। नये लगने का कारण यह भी है, कि इन निबंधों में अनेक स्थानों पर आत्मकथात्मक शैली को अपनाया गया है। इस प्रकार के निबंध व्यक्तिपरक निबंधों के अंतर्गत आते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि उनके निबंध आत्मीय कथन है। अपने से बात करते हुए हम उन्हें कई बार पाते हैं। उन्होंने कहा भी है कि "हम अंदर से विभक्त हैं। हर बात दो तरह से सोचते हैं। दोनों तरह से उसे ठीक पाते है। दोनों तरह से स्वीकार करना चाहते हैं। नहीं कर पाते, यही अन्तर्द्वन्द्व है। अन्तर्द्वन्द्व ही नियती है। हमारी नहीं सबकी। कोई न माने तो वह झूठा है हम झुठे नहीं ।"

राकेश जी ने विभिन्न शैलियों में निबंध लिखे है। उनके अधिकतर निबंध समीक्षात्मक, चिंतनपरक, आत्मपरक शैली के अंतर्गत आते है। उन्होंने अपने निबंध साहित्य में विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया है। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि राकेशजी की निबंध शैली विषय की द्रष्टि से मौलिक तथा उत्कृष्ट है।

डायरी साहित्य - राकेशजी की डायरी भी रचनात्मक साहित्य का एक अनन्य ढप है। "राकेश उन लोगों में से थे, जो बड़ी लगन व नियमितता से डायरी लिखते हैं। इन डायरियों की सब से बड़ी विशेषता है, जीवन और माहौल की छोटी से छोटी चीज से बड़ी से बड़ी चीज तक अत्यंत बेलाग और गहन प्रतिक्रियाएं ।"

सच्चाई और ईमानदारी से लिखी यह डायरी दिनचर्या मात्र नहीं है। रचनात्मक अनुभूतियाँ और प्रेरणा का मूल स्रोत इस डायरी में देखा जा सकता है। राकेशजी की डायरी में बीच-बीच में कुछ ऐसे हिस्से मिलते हैं जिनमें वह डायरी के बारे में ही जिक्र करते हैं। राकेशजी ने स्वयं लिखा है कि मै जिन्दगी भर डायरी लिखने की आदि नहीं डाल सका। राकेशजी ने कईबार कोशिश की बीच-बीच में छूटती गईरू किन्तु उन्होंने पुन:लिखना शुरू कर दिया। वस्तुतरू डायरी एक बहुत ही व्यक्तिगत चीज होती है यही आदमी का सच्चा स्वरूप है जिसमें वह बिना लाग-लपेट के अपना अन्दर-बाहर व्यक्त करता है। इसमें केवल उसीकी नहीं अपितु उसके साथ जुड़ें समस्त व्यक्तियों की सच्चाईयां भी व्यक्त होती हैं। एक लेखक अपनी साहित्य विद्याओं के माध्यम से स्वयं को व्यक्त तो कर लेता है किन्तु यह सीमित अभिव्यक्ति होती है। डायरी लिखकर वह स्वयं को हल्का महसूस करता है। राकेशजी जैसे भावुक रचनाकार के लिए डायरी लिखना अति आवश्यक हो जाता है। उनकी डायरी में युवाकाल से लेकर अन्त तक के अनुभव है। उनके जीवन में जो पात्र आया उसको उन्होनें सीधे सच्चे शब्दों में व्यक्त

टिप्पणी

किया है। ग्राकेश की जिन्दगी एक खुली किताब रही है। उसने जो कुछ लिखा और किया वह दुनिया को मालूम है। लेकिन उसने जो कुछ जिया वह सिर्फ उसे मालूम था।"

प्रकृति का चित्रण और जीवन का माहौल, दार्शनिक अभिव्यंजना, जीवानुभूति आदि के समन्वय से राकेशजी की डायरी सामान्य डायरी न रहकर एक साहित्यिक कृति बन गई है।

पत्र साहित्य - डायरी के ही सामानांतर राकेश के जीवन और उनके साहित्य परिवेश को जानने का कोई प्रमाणिक दस्तावेज उपलब्ध है तो वह उनके द्वारा और उनको लिखे गए पत्र ही हैं। इन पत्रों को जयदेव तनेजा ने अपनी पुस्तक 'राकेश और परिवेश पत्रों में संकलित और संपादित किया है। पत्रों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की पहल राकेश की पत्नी अनीता राकेश ने की। इसमें उनके, घर परिवार के सदस्यों, प्रशंसकों, प्रकाशकों और मित्रों के करीब दो हजार पत्रों में से 770 पत्रों का संग्रह किया गया है। इसकी प्रमाणिकता और विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए संपादक ने अंग्रेजी में लिखे गए पत्रों को अनूदित करने के बजाए ज्यों का त्यों रहने दिया है। स्वयं संपादक के शब्दों में कहीं कहीं मामूली अपवादों को छोड़कर वर्तनी और वाक्यों की अशुद्धियों को भी जानबूझकर ठीक नहीं किया गया है।

अपनी व्यस्तता के बावजूद राकेश पत्र के लिए समय जरूर निकाल लेते। तनेजा ने लिखा है, यह सच है कि राकेश के लगभग प्रत्येक पत्र में लेखक को उनसे पत्र न लिखने अथवा पत्रोत्तर न देने की समान शिकायत रही है। परन्तु झूठ यह भी नहीं कि कई बार राकेश ने सिर्फ पत्र लिखने के लिए कॉलेज से छुट्टी ली और एक बार तो केवल एक महीने में सौ से भी अधिक पत्र लिखे।' डायरी की तरह पत्रों को भी प्रकाशित करवाने और नहीं करवाने को लेकर कई जगह राकेश की दुविधा दिखाई देती है। कई जगहों पर उन्होंने पत्रों को प्रकाशित करने की इच्छा जताई, लेकिन उनकी मृत्यु के पश्चात इसको लेकर दुविधा स्वाभाविक थी। बाद में परिजनों और राकेश के करीबी मित्रों के कहने पर तनेजा ने यह काम अपने हाथ में लिया। पत्रों का महत्व इस दृष्टि से ज्यादा है कि इसमें राकेश के साहित्यिक, सामाजिक, पारिवारिक संबंध के साथ ही तत्कालीन स्थितियां और उनका राकेश के लेखन पर प्रभाव को आसानी से विश्लेषित किया जा सकता है। इसमें पत्रों को परम्परानुसार तारीखवार न रखकर संबंधों के हिसाब से ही संयोजित किया गया है। इस तरह से इसे पांच अध्याय में बांटा गया है।

प्रथम अध्याय (घर रू रेत में डूबती बूंद की अकुलाहट): इसमें राकेश के जीवन क्रम और व्यक्तिगत सम्बन्धों के विकास को रूपायित करने के लिए पत्रों को समय के अनुसार रखा गया है। राकेश ने अपने जीवन में जो कुछ किया उसके केंद्र में कहीं न कहीं 'घर' ही था। तीन पलियों के अतिरिक्त राकेश के जीवन में आनेवाली प्रेमिकाओं और महिला मित्रों की संख्या कम नहीं है, लेकिन तनेजा के शब्दों में 'आजन्म मां और अंतिम समय में पत्नी अनीता को छोड़कर किसी भी स्त्री ने राकेश को न तो पूरी तरह समझने का प्रयत्न किया और न ही देर तक साथ निभाया।' इसके पहले हिस्से में उनकी मां का पत्र है। साथ ही सुशीला, पुष्पा, अनीता, चंद्रा (औलक) के पत्र भी शामिल है। इसके अलावा इसमें उनकी एक मात्र महिला मित्र वीणा के पत्रों को शामिल किया गया है। संभवतरू संपादक ने वीणा की राकेश के जीवन और साहित्य में वीणा के महत्व को देखकर ही ये फैसला लिया। इस अध्याय में राकेश के मानसिक भूगोल के पर्वतों, दरों, खंदकों, खाइयों और झरनों सरोवरों के एक पूरे इतिहास का अक्स देखा जा सकता है।"

अध्याय दो (परिवार रू रिश्ते-नाते): इसमें राकेश के मित्रों के पत्र शामिल किए गए हैं। खासकर जुलाई 1947 में बंबई विश्वविद्यालय के एल्फिंस्टन कॉलेज में पहले दिन बतौर हिन्दी प्राध्यापक गए मदन मोहन राकेश से उनके एक छात्र गिरधारी लाल वैद के मिलने, फिर मुलाकात की दोस्ती में परिणति और इस दोस्ती के अंत तक बने रहने की कहानी इन पत्रों में सरसता के साथ सामने आती है।

टिप्पणी

साथ ही राज बेदी और उज्जवला भाभी से भी दोस्ती की कहानी पत्रों में भी नाटकीयता का पुट लाते हैं। इनके अलावा वीरेन (वीरेन्द्र) के पत्रों से भी उनके और राकेश के मध्य छोटे-बड़े भाई का संबंध बयां होता है, फिर चाहे वह अधिकतर अलग अलग ही क्यों न रहे हो।

अध्याय तीन (एक्सक्लेमेशन मार्क): इसमें राकेश के समकालीन साहित्याकार, मित्र और प्रतिद्वंद्वी राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी के पत्रों और उनके संबंध में राकेश के जवाबी पत्रों को शामिल कियाग गया है। ये इन तीनों साहित्यकारों के आरंभिक दौर के कुछ दिलचस्प पत्र हैं। इसमें आपस की तकरार भी दिखाई देती है तो प्यार भी। इसकी भूमिका में एक अक्टूबर 1963 को अनीता राकेश के एक अप्रकाशित पत्र में राकेश और राजेंद्र के संबंधों की गहराई स्पष्ट होती है। 'ये (राजेन्द्र-राकेश) दिन में पचास बार लड़ते हां और सत्तर बार दोस्ती करते हैं। ये लोग न लड़े बिना रहते हैं और न ही दोस्ती किए बिना।' यहीं पर खुद राकेश ने राजेन्द्र यादव के संबंध में लिखा है, 'दोस्ती या दुश्मनी जो भी है, लड़ते-झगड़ते हुई थी, उसी तरह चल रही है और चलती रहेगी। कारण कि मैं यह बिना एक्सक्लेमेशन मार्क के इस आदमी के बारे में सोच ही नहीं सकता और इस आदमी को अपने नाम के साथ पंक्चुएशन मार्क बिलकुल पसंद नहीं।'

अध्याय चार (आत्म-बोध और विरोध के बीच): इसमें राकेश के प्रकाशकों, सम्पादकों, नाट्य समीक्षकों आदि को और उनके द्वारा दिए गए जवाब को शामिल किया गया है। नौकरी और पैसों की कभी भी परवाह नहीं करने वाले राकेश की लेखकीय गरिमा, आत्मसम्मान और रचनाकार के अधि कारों की प्रतिष्ठा के लिए लड़ी गई लड़ाई इन पत्रों के माध्यम से उजागर होती है। उनकी लड़ाई हमेशा सिद्धान्तों पर हुई और वे इस संघर्ष में हमेशा अपनी बात मनवाने में कामयाब रहे। मोहन राकेश ने ही लिखा है, 'जब भी मैं अपने पूरे सीने का जोर लगाकर इन अधिकारों के लिए लड़ता हूं, तो केवल अपने अकेले के लिए नहीं। मैंने लड़ाई सिर्फ इसलिए तो शुरू नहीं की है कि इसका लाभ सिर्फ अकेले मुझे मिले।'

अध्याय पांच (आत्मीयता के वृत्त): इस अध्याय को भी दो भागों में बांटा है। पहले (नई कहानी के सहयात्री और) में नई-पुरानी पीढ़ी के 56 कथाकारों, समीक्षकों और अन्य साहित्यिक सहयात्रियों के छोटे-बड़े 119 पत्र संकलित हैं। इसमें राकेश और उनके कथा समय और उसके नेपथ्य की स्पष्ट-अस्पष्ट किन्तु प्रामाणिक तस्वीर उभरती हैं। इन खतों के आईने में नई कहानी के आंदोलन (बावजूद इसके कि उसके तीनों सूत्रधार-राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव-प्रत्यक्षतरू यहां नहीं हैं) की धड़कन को साफ देखा सुना जा सकता है। दूसरे (वसुधैव कुटुम्बकम) में उनके बहुसंख्य विदेशी मित्रों में से 12 के पत्रों को शामिल किया गया है। राकेश ने कई देशों की यात्राएं की और उनका मित्र संसार भी विश्वभर में फैला हुआ था। वह जिससे मिलते, उसको अपना बना लेते और कई बिना मिले ही उनको उनके साहित्य के माध्यम से जानते थे। शायद इसीलिए मास्कों के वी.ए. चेर्निशोव ने हिन्दी में उन्हें लिखा, 'मैं आपको लंगोटिया दोस्त समझता हूँ और व्यक्तिगत रूप से न जानने पर भी हमारा परिचय बड़ा घनिष्ठा-सा लगता है।" और अंत में: इसमें मोहन राकेश की पुण्य तिथि 3 दिसंबर 1994 को अनीता राकेश द्वारा उन्हें विशेष रूप से लिखा गया पत्र शामिल किया गया है, जिसमें उनके परिवार की वर्तमान स्थिति, घर के लिए राकेश की तलाश का दर्द और इस दर्द का अनीता के दिल में एहसास, इन सभी बातों को रोचक ढंग से शामिल किया गया है।

पत्रों की इस लड़ी में कई जगह के मोती गायब हैं और यह स्पष्ट भी नहीं है कि इन मोतियों को इस लडी में पिरोया ही नहीं गया था, या बिखरने के बाद संग्रह के दौरान वह मोती संग्रह और संपादन करने वाले को मिले ही नहीं। इससे राकेश के जीवन के कई रंग धुंधले से ही दिखाई देते हैं या यू

टिप्पणी

कहें कि उनका एह पहलू ही सामने आ पाता है। हालांकि इसकी कमी संपादक तनेजा को भी खली है। उनहोंने इसकी भूमिका में लिखा है 'काश। यह एकालाप की जगह सम्वाद के रूप में होती। तमाम पत्रों के साथ राकेश के भी उत्तर होते-जैसा कि किसी हद तक राकेश अनीता, गिरधारी राकेश और मोहन राकेश-श्यामानन्द जालाना के प्रसंग में दिखाई पड़ता है। परन्तु यह भी हो सकता है कि यह अतृप्ति और कमी ही इस पुस्तक की उपलब्धि बन जाए। क्योंकि इससे इतना तो सद्धि होगा ही कि हिन्दी के इस सर्वाधिक एकस्पोड समझेध्माने जाने वाले जटिल रचनाकार के बारे में अभी भी ऐसा बहुत कुछ है, जिसे जानना शेष है।"

अनुदित साहित्य - राकेशजी के द्वारा अनूदित तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं 'कृश्मृच्छकटिक', 'शाकुन्तल' और 'एक औरत का चेहराश। संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठित नाटककार शूद्रक का बहुचर्चित नाटक 'मृच्छकटिक' का हिन्दी अनुवाद राकेशजी ने प्रस्तुत किया है। संस्कृत की समृद्ध नाट्य परंपरा से गहरे परिचय के कारण उनकी नाट्य कृतियाँ अधिक सफल हैं। कालिदास की विश्व-प्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' और शूद्रक कृत 'मृच्छकटिकम' का सरल अनुवार कर राकेशजी ने सामान्य पाठकों के लिए उसे सुलभ बनाया है। सन् 1961 ई० में 'मृच्छकटिकम' का अनुवाद हुआ, जिसके पीछे पूर्ववर्ती अनुवादों के प्रति असन्तोष का भाव छिपा था। सन् 1965 ई० में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का अनुवाद प्रस्तुत किया गया। अनुवाद के सम्बन्ध में राकेशजी की धारणा और उनके विचार तथा अनुवाद के प्रति उनकी गंभीरता का परिचय 'शाकुन्तल' की भूमिका से मिलता है। 'मृच्छकटिकम' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' के अनुवादों में शूद्रक और कालिदास के साथ कहाँ तक न्याय हुआ है यह मैं नहीं कह सकता। परन्तु मेरा प्रयत्न अवश्य रहा है कि जहाँ तक बन पड़े मूलग्रंथ और अर्थ दोनों की अनुवाद में रक्षा की जाय, साथ ही यह भी कि अनुवादक की ओर से अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग कम हो और किसी भी तरह का अतिरिक्त आशय उसमें न आने आए। फिर भी कुछ स्थल ऐसे हैं, जहाँ नाटकीय अन्विति के निर्वाह के लिए या श्लोकों के अनुवाद का मुक्तक लाभ बनाये रखने के लिए थोड़ी-बहुत स्वतन्त्रता मुझे लेनी पड़ी है। उसके लिए बहुत अधिकार मैने अपने को नहीं दिया, पर मूल का अनुसरण करने के लिए लय और अन्विति की उपेक्षा कर जाने से अनुवाद का उद्देश्य ही शायद पूरा न हो पाता। अनुवाद में बहुत-सी सीमाएँ अनुवादक की हो सकती हैं पर कुछ सीमाएँ ऐसी भी हैं जो इस तरह के प्रयत्न में स्वतरू अन्तर्हित रहती हैं। फिर मूल रचना से आज का सदियों का अन्तर-भाषा, शिल्प, भाव-योजना तथा परिकल्पना का ..... अपने में ही एक सीमा है।" राकेशजी के ये अनुवाद काव्य-चेतना और रंग-दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हेनरी जेम्स की श्रेष्ठतम कृतियों में से एक हैकृश्दि पोट्रेट औफ ए लेडी। इस उपन्यास का राकेशजी ने अनुवाद किया और नाम दिया "एक औरत का चेहरा''। हेनरी जेम्स के उपन्यास सम्बन्धी कठिनाई से राकेशजी भलीभांति परिचित थे और उनके सामने प्रमुख दो चुनौतियाँ थींअंग्रेजी मुहावरे और अनुवाद को अनुवाद की कृत्रिमता से बचाते हुए अपनी भाषा की सहज अन्विति में अर्थ सम्प्रेषण की। एक वर्ष के परिश्रम के उपरान्त राकेशजी ने इस उपन्यास को हिन्दी मे अनूदित किया। विश्व की एक श्रेष्ठ कृति का अनुवाद राकेशजी की ही नहीं, हिन्दी साहित्य की उपलब्धि है।

संस्मरण साहित्य - अनुभव और स्मृति के आधार पर रचित साहित्य को संस्मरण कह सकते हैं। भावाभिव्यक्ति संस्मरण को अधिक रोचक और भावूपर्ण बना देती है। 'अतीत का अनुभव' रोचक प्रसंग के रूप में वर्णित किया जाए तो वह संस्मरण की संज्ञा पाता है। इस संदर्भ में तो मोहन राकेश का पूरा लेखन ही संस्मरण की श्रेणी में आता है, लेकिन अन्य विधओं में कल्पना और परानुभव का भी समावेश करने के कारण उसे संस्मरण नहीं कह सकते। मोहन राकेश के मरणोपरान्त जयदेव तनेजा

टिप्पणी

ने मोहन राकेश की अप्रकाशित रचनाओं के संग्रह 'मोहन राकेश एकत्रा' में दो संस्मरण 'ऊंची झील' और 'मकबरे और आज' प्रकाशित किए। ये दोनों यात्रा संस्मरण हैं, जिन्हें हम यात्रा साहित्य का भी एक भाग कह सकते है, लकिन 'आखिरी चट्टान तक' और इन दोनों संस्मरणों में मौलिक अंतर ये है कि इस संस्मरण में लेखक अपनी यात्रा तक केन्द्रित रहा है, जबकि आखिरी चट्टान तक, में लेखक और पाठक दोनों सहयात्राी थे।

कोल्हाई ग्लेशियर के ऊपर दूध्सर झील का संस्मरण 'ऊंची झील' । मई 1960 को आकाशवाणी इलाहाबाद से प्रसारित हुआ था। इस यात्रा पर उपेंद्रनाथ अश्क और कमलेश्वर भी उनके साथ थे। 'परिवेश' में 'यात्रा का रोमांस' निबंध् भी इसका ही थोड़ा भिन्न रूप है। अमूमन संस्मरण में रची-बसी नीरसता को राकेश ने इसमें से निचोड़ दिया था और इसमें कहानी सी सरसता और उपन्यास-सा गांभीर्य ला दिया है। झील के मानवीयकरण और उसे बच्चे की उपमा देने से संस्मरण की सजीवता और बढ़ गई थी, लेकिन राकेश के आकस्मिक निध्न के कारण वह पूरी लिखी नहीं जा सकी। इसी का एक हिस्सा राकेश की रूस यात्रा के दौरान वहां के ऐतिहासिक नगर समरकंद में गुजारे गए यादगार लम्हों और मूल्यवान अनुभवों में रचा-बसा यह संस्मरण 'मकबरे का आज है। इसे 'सारिका' के सितंबर 1972 के अंक में सर्वप्रथम प्रकाशित किया गया था। इस संस्मरण लेखन की भाषा नाटकों के कापफी करीब है। इसी कारण इसमें रोचकता अध्कि है। पूरा संस्मरण संवादों में आगे बढ़ता है जैसे:

'जीना कितनी अच्छी चीज है हां है तो।
पर हर वत्तफ आदमी इस तरह महसूस नहीं करता। पता नहीं क्यों।'

भेंटवार्ता साहित्य - भेंटवार्ता साहित्य का महत्वपूर्ण भाग है दोतरपफा संवाद अर्थात जहां दो लोग आपस में बातचीत कर रहे हों। राकेश का नाटड्ड लेखन में अग्रिम स्थान इसी शैली में लेखन मे सि हस्तता के कारण ही बना। भेटवार्ता मुख्यत: नोटबुक या डायरी का ही हिस्सा प्रतीत होते हैं। इसीलिए इसमें यथार्थ स्थिति, परिस्थिति और संवेदना दिखाई देती है। जयदेव तनेजा द्वारा संपादित पुस्तक 'मोहन राकेश एकत्रा' में मोहन राकेश: आरंभिक जीवन में राजिंदर पाल और राकेश की अंतरंग बातचीत का संग्रह किया गया है। इसमें राकेश के साहित्य, परिवार और परिस्थितियों का वर्णन है। इसके अलावा साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि में भी मोहन राकेश के विभिन्न साहित्यकारों से की गई भेटवार्ता को शामिल किया गया है।

बाल साहित्य - मोहन राकेश ने बच्चों के साहित्य का भी सृजन किया। 'बिना हाड़ मांस का आदमी' में बच्चों के लिए लिखी गई कहानियां हैं। इनमें उनकी चार कहानियां 'कांटेदार आदमी,' 'बिना हाड़-मांस का आदमी, 'सुनहरा मुर्गा, काला बंदर और लाल अमरूद का पेड़', और गिरगिट संकलित हैं। इसका प्रकाशन राकेश की दूसरी बरसी पर हुआ। सामान्यत: माना जाता है कि बाल साहित्य लिखने के लिए बाल मनोविज्ञान का अध्ययन जरूरी है। इसी के जरिए लेखन में ऐसे वातावरण का निर्माण किया जा सकता है जो बच्चों को न सिपर्फ आकर्षित करें बल्कि उन्हें सही रास्ता भी दिखाएं। अगर राकेश के बाकी साहित्य से इसकी तुलना करते तो उनके जैसे गंभीर और यथार्थवादी लेखक से इतनी सहज, सरल और रोचक लेखन की उम्मीद बेमानी-सी प्रतीत होती, जिसमें बाल मनोविज्ञान का भी बारीकी से ध्यान रखा गया है। यद्यपि उन्होंने बाल मनोविज्ञान का कही अलग से अध्ययन किया, इसका उल्लेख नहीं मिलता। पिफर भी उनकी संवेदना और परानुभव को ग्रहण करने की क्षमता के कारण बाल साहित्य में कहीं भी बाल मनोविज्ञान की कमी प्रतीत होती।

इस संग्रह की सभी कहानियों में रोचकता विद्यमान है। सभी में ईमानदारी, प्रेम, सहकारिता और आत्मतप्ति का महत्व प्रतिपादित किया गया है। साथ में अप्रामाणिकता, स्वार्थ, लालच के बुरे परिणाम

टिप्पणी

को मनोरंजक शैली में अंकित किया गया है। 'सुनहरा मुर्गा, काला बंदर और लाल अमरूद का पेड़' जैसी बाल मनोविज्ञान पर आधरित कहानी से मुर्ग, बंद और पेड़ को आधर बनाकर बच्चों को एकता का संदेश देते हैं जिसमें वह ये भी दिखाते हैं कि एकता के बिना पेड़ जैसा मजबूत किरदार भी कुछ नहीं कर सकता। 'बिना हाड मांस का आदमी' कहानी में वैज्ञानिक आविष्कारों की ओर बालकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए लेखक ने बढी कुशलता से मानवता की श्रेष्ठता स्थापित की है।

राकेश ने बाल कहानियों में विश्वसनीयता को बहुत महत्व दिया है। 'कांटेदार आदमी' कहानी में अंकित घटनाएं बच्चों को विश्वसनीय लगने वाली हैं और वे बेइमानी के बुरे पफल से अवगत हो जाएंगे। इसके अतिरिक्तफ 'एकत्रा' में जयदेव तनेजा ने 'पिता-पुत्राी' संवाद में राकेश के अपने तीन साल की बेटी से वार्तालाप का भी मनोहरी दृश्य मिलता है। इसकी शैली में जहां नाटकीयता है, तो संवाद और मनोभाव मनोवैज्ञानिक हैं।

इस तरह इन सभी कहानियों में रोचकता के साथ ही बाल मन से संगति सुगमता से सथापित करती हैं। इनमें विश्वसनीयता, कौतूहल और मनोवैज्ञानिकता है, जो आधुनिक जीवन के अनुकूल है। राकेश ने साहित्य की लगभग हर विध को अपनाया और उसे एक नई परिभाषा भी दी। उनका साहित्यिक युगबोध, इतिहास बोध, मानवीय और क्षेत्रा विशेष की संवेदना उनकी रचना को विशेष आयाम देती है। यही कारण है कि उनके बाल साहित्य को भी विशेष रूप से सराहा गया।

आलोचना साहित्य - समकालीन साहित्य के प्रति सजगता और उसकी अभिव्यत्तिफ स्वयं ही आलोचना को आकार देता है। मोहन राकेश ने समय-समय पर कहानी, नई कहानी, उपन्यास, नाटक, रंगमंच, कला, कविता आदि सामयिक विषयों पर अपने विचार व्यत्तफ किए। साहित्य, साहित्य में यथार्थ का महत्व, लेखक का दायित्व आदि सवालों को भी उन्होंने बेबाकी से उठाया। जयदेव तनेजा ने अपनी संपादित पुस्तक 'एकत्रा' में मोहन राकेश की दो आलोचनाओं 'भारतमंजरी पर एक दृष्टि' और 'नूरजहां को संकलित किया है। 'भारतमंजरी पर एक दृष्टि' की आलोचना को दो भगों में बांटा गया है। पहला-क्षेमेंद्र के काव्यालोचना से सिद्धांतों का निर्देश और दूसरा-उन सिद्धांतों के अनुसार क्षोमेंद्रकृत भारतमंजरी पर समालोचना। इस आलोचना में राकेश के संस्कृत और संस्कृति दोनों के ज्ञान का परिचय मिलता है। साथ ही काव्य व्याकरण और अनुभूति का भी व्यापक रूप देखने को मिलता है, जो उनके 'नूरजहां' प्रेमकाव्य की आलोचना में और अध्कि स्पष्ट हो जाता है। इसमें जहां वह कवि गुरूभत्तफ सिंह के मानवीय भावों की सुंदर अभिव्यत्तिफ की प्रशंसा करते हैं, वहीं अपने काव्य ज्ञान और काव्य प्रेम को और भी स्पष्ट करते हैं, जिसकी झलक उनके 'आषाढ़ का एक दिन में मिली थी।

समय-समय पर मोहन राकेश के द्वारा की गई समीक्षाओं को भी इसी के अंतर्गत लिया गया है, जिसम यशपाल के कहानी संग्रह 'तुमने क्यों कहा मैं सुंदर हूं' और मार्कन्डेय के कहानी संग्रह 'पान पफूल' की पुस्तक समीक्षा, निराशावादी यथार्थ और कला की आशा समीक्षा लेख और हरिशंकर परसाई के कहानी संग्रह हसत हैं, रोते हैं की समीक्षा, 'एण्टन चेखव: इन्टव्यू' की पुस्तक समीक्षा शामिल है।

संपादन साहित्य - बतौर संपादक मोहन राकेश ने सारिका को एक नई ऊंचाई, नया आयाम और साहित्य जगत में एक नई पहचान दी। सरिका के संपादक रहते हुए ही राकेश ने अन्य लेखकों को भी अपना पोट्रेट लिखने के लिए प्रेरित किया। राजेन्द्र सिंह बेदी, नागार्जुन, यशपाल, कृशनचंदर, अमृता प्रीतम, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ अश्क, कमलेश्वर, कर्रतुल ऐन हैदर, विष्णु प्रभाकर, राजेन्द्र यादव, विमल मित्रा, भगवतीचरण वर्मा और भीष्म साहनी आदि ऐसे ही नाम है। इसमें खुद मोहन राकेश ने अपना पोट्रेट भी प्रकाशित किया। इसमें जितने लोगों के पोट्रेट है उन्होंने इसे लिखने में पूरी ईमानदारी बरतने की कोशिश की। इसी कारण ये इनके आंतरिक व्यत्तिफत्व को उजागर करने में सक्षम है।

टिप्पणी

इन लेखों में एक दो को छोड़कर सभी ने अपने बचपन की बहुत ही सहज और आत्मीयतापूर्वक अभिव्यत्तिफ की है, लेकिन युवा काल के बारे में लिखते समय सहजगता बरत है और थोड़ा बहुत लिखकर आगे बढ़ गए। नागार्जुन को छोडकर सबके लेखों में थकान और क्षोभ भी ध्वनित होता है, लेकिन इसमें थकान से जूझने का उत्साह भी कम दिखाई नहीं देता। इसमें एक आस्था है और हर परिस्थिति से निपटने का जज्बा। कहीं भी आरा का स्वर धीमा नहीं पड़ा। सभी ने अपने यथार्थ को स्वाभाविक रूप में अभिव्यत्तफ किया है।

तमाम संघर्षों, व्यत्तिफगत तनावों और सुख दुख के क्षणों के बीच से गुजरते हुए कोई प्रतिभा किस तरह रचनात्मकता ग्रहण करती जाती है, इसी संघर्षशील यथार्थ का चित्राण इस संह में दिखाई देता है। इन लेखों में अलग-अलग उम्र के लेखकों का पारस्परिक अन्तर स्पष्ट होने के साथ-साथ उनकी सामान्य दिशा और सामान्य खोज पर भी प्रकाश पड़ता है। इसके जरिए राकेश ने एक नई विध का सूत्रापात किया। ये पोट्रेट वर्तमान समय में इन लेखकों और उनके साहित्य को समझने का एक महत्वपूर्ण जरिया बनते हैं। खा कर हिन्दी के शोधर्थियों के लिए ये एक अनूठा संग्रह है।

इस प्रकार राकेश ने साहित्य की विभिन्न विधओं को जिस प्रकार नई दिशा दी, उससे कहीं अध्कि प्रयोग और नयापन वे संपादन में भी लेकर आए। उनका साहित्यिक युगबोध्, इतिहास बोध् उनके संपादन में भी दिखाई देता है।

2.5 निष्कर्ष

इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं, कि राकेशजी का व्यत्तिफत्व एवम् जीवन वाघ्गमयी रहा होगा। राकेशजी ने साहित्य जगत में अपना एक नाय मुकाम तय किया है साथ ही साथ जीवन में आई सभी मुसिबतों एवम् कष्टों को सहकर उनसे डटकर सामना किया। राकेशजी के जीवन में इतने संघर्ष थे कि वे सीधे, सापाट व्यत्तिफत्व के नहीं रह सकते थे। उनका जीवन संघर्ष से ही शुरू हुआ है और संघर्ष में ही समाप्त हुआ। बाहर से अव्यवस्थित और आवेश से परिपूर्ण दिखाई देनेवाला उनका व्यत्तिफत्व उनके लेखन में बड़ा ही व्यवस्थित और संवेदनशील था। स्वाभिमान, जिंदादिली और दोस्तों के नाम सबकुछ लुटा देने की उनकी प्रवृत्ति ने उनके व्यत्तिफत्व को एक अलग ही रूप दिया है। बाहर से हंसी के ठहाके लगानेवाला यह रचनाकार अपने भीतरी संसार में वेदना लेकर जीता है। अपनी आंतरिक पीड़ा और व्यथा को वे खामोश होकर भोगते रहे। यह ठीक ही कहा गया है कि फ्मेरी दृष्टि में राकेश का असली व्यत्तिफत्व वह नहीं था जो बाहर से आभासित होता था, वरन वह था जो नहीं दिखाई दिया। जो उन्होनें कहा उसकी अपेक्षा जो नहीं कहा वही राकेश का असली कथ्य था। मैं समझता हूं कि राकेशजी अपने साहित्य, अपनी मान्यताओं और प्रस्तुतियों के माध्यम से अपने व्यत्तिफत्व को भी विश्लेषित कर गये हैं। पिफर भी कई बातें ऐसी भी हैं, जो अभी नहीं कही जा सकी हैं यहां तक की अनीता की कलम से भी वह अलिखित ही रह गई हैं।

राकेशजी के कृतित्व को देखकर हम कह सकते हैं, कि राकेशजी बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रचनाकार थे। उन्होंने गद्य की विविध् विधओं को लेकर उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया है। गद्य की विधओं में उन्होंने कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, समीक्षा, रेखाचित्रा, संस्मरण, डायरी, जीवनी, यात्रा-वृतांत आदि बहुत कुछ लिखा, जिसमें एक सपफल और श्रेष्ठ गद्यकार का सहज, स्वाभाविक और मोहक रूप दिखाई देता है। जिस किसी विध को लेकर उन्होंने लिखा उसमें उनके भीतर बैठा हुआ एक सर्जक कलाकार और भावुक रचनाकार ही व्यत्तफ हआ है। अपनी शैली के वे स्वयं निर्माता हैं। उन्होंने जो भी लिखा उसमें एक भावुक रचनाकार के सहज स्वाभाविक और अप्रतिम व्यत्तिफत्व की ही अभिव्यत्तिफ हुई है।

टिप्पणी

अनुभूति की गहरी पकड़ सकेशजी में थी। अनयत सत्य और भोगे हुए यथार्थ को उन्होंने अपनी हर रचना में बड़ी ईमानदारी के साथ व्यत्तफ किया है। अपनी रचनाओं के माध्यम से राकेशजी ने आडंबर, कृत्रिमता, सस्ती भावुकता और व्यंग्यवृत्ति को निष्कासित कर अपने पाठकों के साथ अपना आत्मीय संबंध् स्थापित किया। वास्तव में उनकी रूचि रचनाओं में वर्तमान जीवन की आधुनिकता, अनुभूति का सत्य और अभिव्यत्तिफ की जीवंतता व्यत्तफ हुई है। यही कारण है कि उनका समस्त साहित्य उनकी अभूतपूर्व प्रतिभा और सृजन शत्तिफ का प्रमाण है।

2.6 प्रश्नबोध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश की पत्नियों के नाम लिखिए।**
2. **मोहन राकेश ने किस आयु में प्रथम कविता लिखी?**
3. **'आषाढ़ का एक दिन' मोहन राकेश की किस प्रकार की विध है?**
4. **मोहन राकेश ने आधे-अधूरे नाटक की रचना कब की?**
5. **मोहन राकेश का कौन-सा नाटक उनकी मृत्यु के कारण अधूरा रह गया?**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश के व्यत्तिफत्व के विषय में उनकी पूर्वपत्नी सुशीला डोभाल के क्या विचार रहे हैं?**
2. **'मोहन राकेश के अंदर दो मोहन राकेश थे, दोनों में भीतर ही भीतर तीव्र और गहरा संघर्ष चल रहा था। उनकी रचनाओं में वही प्रकट हुआ है।' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत है?**
3. **मोहन राकेश और उनकी दादीजी के स्वभाव में क्या असमानताएँ दिखाई देती है?**
4. **मोहन राकेश की शिक्षा-दीक्षा किस प्रकार हुई?**
5. **मोहन राकेश का अध्ययन और अध्यापन के क्षेत्रा में क्या योगदान है?**

♦♦♦♦♦

इकाई 3

विशेष साहित्यकार: नाटककार मोहन राकेश

संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच की परिकल्पना
3.3 नाटक और रंगमंच का संबंध
3.4 नाटकों के प्रस्तुतिकरण को लेकर मोहन राकेश
3.5 मोहन राकेश के नाटकों का मंचन
3.6 मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच
3.7 मोहन राकेश के नाटकों में रंगमंचीय नए प्रयोग
3.8 मोहन राकेश के नाटकों में दृश्य विधान में संकेत
3.9 नाटक की रचना-प्रक्रिया तथा अभिनेयता
3.10 मोहन राकेश का नाट्ड्ड-चितंन रंगमंच सम्बन्धी अवधारणा
3.11 मोहन राकेश का रंगमंचीय निर्देश
3.12 ध्वनि संयोजन
3.13 संगीत योजना
3.14 वेशभूषा तथा रूप विन्यास
3.15 अभिनय और अभिनेता
3.16 रंगशिल्पगत तुलनात्मक अध्ययन
3.17 रंगमंच और शिल्प
3.18 रंगदीपन
3.19 शब्द और रंग का मेल
3.20 समकालीन हिन्दी रंगमंच और मोहन राकेश के नाटक
3.21 उपसंहार
3.22 प्रश्नबोध

टिप्पणी

3.1 प्रस्तावना

मोहन राकेश रंगमंचीयता को नाटक की कसौटी मानने वाले हैं। उनके सभी नाटक रंगमंचीयता के व्यापक गणों से संपन्न हैं। रंगमंच नाटक का अभिन्न अंग है। एक दृश्यकला होने के नाते नाटक को लोगों तक पहुँचाने के लिए अनेक व्यत्तिफयों का सहयोग अनिवार्य है। नाटक को आकर्षणीय बनाने के लिए रंग-सज्जा. प्रकाश पर्दा संगीत नृत्य आदि की भी आवश्यकता है। स्वातंत्रायोत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच एक नवीन परिवेश की उपज है। रंगमंच के बारे में नेमिचन्द जैन ने कहा है-फ्रंगमंच कलात्यक अभिव्यत्तिफ का ऐसा माध्यम है जिसमें मनोरंजन का अंश कलाओं की तुलना में अपेक्षाकृत सबसे अध्कि है। अपने नाटक के विकसित रूप को नये-नये प्रयत्न से जोड़ने का प्रयतन प्रासंगिकता के आधर पर किया है।

3.2 मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच की परिकल्पना

रंगमंच के बारे में राकेश की परिकल्पना की एक पृथक दृष्टि है। उनके मन में दृढ़ विश्वास था कि किसी न किसी दिन हिन्दी नाटक का रंगमंच अनेक प्रयोगों से गुजरकर एक स्थिर सुंदर आकार प्राप्त करेगा। मोहन राकेश के पहले जगदीशचन्द्र माथुर और ध्र्मवीर भारती ने नाटकों में नयी शैली का प्रयोग कर नाट्ड परम्परा को नयी दिशा प्रदान की थी। हर एक नाटक की रचना के साथ मंच का जन्म भी होता है। पुराने जमाने में रंगमंच हमेशा बदलता ही रहता था क्योंकि नाटक का दृश्यबंध् भिन्न रहता था। युग परिवर्तन के साथ रंगमंच में भी परिवर्तन होता गया। फ्रंगमंच एक अनुभूति है इसे हम रंगमंच का आन्तरिक पक्ष कह सकते हैं। पर जीवन में इसकी विराटता और समग्रता को देखना और उसके विभिन्न तत्वों को सही अर्थों में तथा उसके ही अनुपात में समझना रंगमंच की अनुभूति का व्यावहारिक पक्ष है।" नाटक के प्रमुख दो पक्ष होते हैं। उनमें दृश्य पक्ष ही अध्कि महत्वपूर्ण है। दृश्य पक्ष की विजय रंगमंच पर ही होती है। जो भी हो रंगमंच नाटक का एक प्रमुख तत्व है। नाटक की सपफलता रंगमंच के मेल से ही सम्भव है। नाटक समकालीन संवेदनाओं को दर्शकों तक पहुँचाने का एक साध्न है। डॉ. सुरेन्द्र देवशास्त्राी के अनुसार-दृश्य काव्य में शब्दों के अतिरित्तफ पात्रों की वेशभूषा, उनकी आकृति और भाव भंगिमा तथा क्रियाओं के अनुकरण और भावों के अभिनय द्वारा दर्शकों को भाव मग्न किया जाता है। यद्यपि ये काव्य पढ़े तथ सुने भी जा सकते हैं, किन्तु इससे उनके पूर्ण आनंद का अनुभव पाठक श्रोता को तब तक नहीं हो पाता है। जबतक रंगमंच पर उनका अभिनय नहीं कर दिया जाता है।

मोहन राकेश ने अपने नाटकों को रंगमंचीय प्रयोगों द्वारा जनता के निकट पहुँचाने का सपफल प्रयास किया है। मोहन राकेश नाटक और रंगमंच की परिकल्पना की हिन्दी के नाट्ड साहित्य को समृद्ध किया है, और नाटक व रंगमंच की दूरी खत्म की हुई आगामी नाटककारों की नूतन प्रयोगों की प्रेरणा भी उन्होने दी। अब भी यह देखा जा सकता है कि प्रयोगों का दौर समाप्त नहीं हुआ है तथा नये नाटक और नये रंगमंच को साकार बना देने में राकेश का बड़ा हाथ है। फ्नाटक न केवल साहित्य है और न केवल रंगमंचीय कला यही उसकी जटिलता है।"

3.3 नाटक और रंगमंच का संबंध

आधुनिक रंगकर्मियों, नाटककारों तथा नाट्डालोचकों ने नाटक तथा रंगमंच की पारस्परिक गहराई से विचार किया है। रंगमंच की परिकल्पना के बिना नाटक की सार्थकता, प्रासंगिकता, कलात्मकता और प्राणवत्ता आज संभव नहीं है। इस दृष्टि से नाटक और रंगमंच का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध् बार-बार रेखांकित किया गया है। नाटक और रंगमंच में सृजनशील स्थितियों के अन्वेषण से यह सिद्धहो गया है कि इस विशिष्ट विध की स्थिति अन्य विधओं से अपनी प्रकृति में हुई भिन्न है क्योंकि नाटक एक त्रिआयामात्मक

टिप्पणी

विध है, जिसमें नाट्ड्ड-कृति, प्रस्तुतिकरण एवं सामाजिक प्रेक्षक तीनों का समन्वय नाटकीय कलात्मकता के लिए अपेक्षित है। कृति से सृजनात्मक अनुभूति, प्रस्तुतिकरण से अभिनयाभिव्यत्तिफ एवं प्रेक्षक की भावानुभूति से आत्मसाक्षात्कार होता है।

नाटक रंगमंच पर पुनर्सजन और पुनर्निमिती पाता है, जिससे उसकी समप्रेषणीयता और बढ़ जाती है, श्रव्यकाव्य के तत्वों को समाहित करने के साथ नाटक दृश्य काव्य की शत्तिफयों और संभावनाओं को दोहरे वनित, प्रतिध्वनित है। नाटक साहित्यिक निबन्ध तिहरे कलात्मक बांध् के साथ उभारता है। इसलिए नाट्ड्डानुभूति को अपनी विशिष्ट प्रकति और कारण अन्य अनुभूतियों से अलगाया है। काव्येषु नाटक रम्यम् सूत्रा में यही सत्य ध्वनित, प्रतिध्वनित के कलात्मक अभिव्यत्तिफ का विशेष द्वार है, जिसमें अन्त: वृतियों का परितोष अन्य कला अध्कि होता है। नाट्ड्ड की व्यापकता के सम्बन्ध् में भरतमुनि का कहना है कि फ्ऐसा न कोई ज्ञान है । हैन कला है, न विद्या न योग है, न कर्म है, जो इस नाट्ड्ड में न देखा जाता होश नाटक में जीवन का इतना व्यापक अनुकरण होता है, कि उससे कुछ भी छूट ही नहीं पाता। इस दलित अनेक कलाओं के योग से विकसित होने वाली कला ही नाट्ड्डकला है। समाज का ऐसा कोई भी वर्ग नहीं कर इस कला से छूट पाता हो। सभी प्रकार की रूचि वाले लोग नाटक से समान आनंद प्राप्त कर लेते हैं या कालिदास नेष्मालविकाग्निमित्रा' नाटक के प्रथम अंक में गणदास से कहलवाया भी है कि भिन्न रूविकार लोगों के लिए नाटक ही ऐसा रंजन है जिसमें सभी को आनंद मिलता है। नाटक का दृश्य होना ही उस सर्वाध्कि सशत्तफ रूप है जिसमें कथात्मक आनंद ही नही सभी पात्रों तथा स्थितियों का आन्तरिक साक्षात्कार की हो जाता है। रंगमंच से कटा हुआ नाटक संवादात्मक कथा मात्रा है। सभी कथाओं की परिकल्पना प्रस्तुत करने वाला नाट्ड्ड लोक-अनुरंजन का माध्यम है। 'नाट्ड्डशास्त्रा' के प्रथम अध्याय में इस बात पर अनेक बार हमारा इसी कारण डॉ रघुवंश नाटक का आधर अध्कि 'मनोवैज्ञानिक' मानते हैं-ष्दृश्य काव्यों के क्षेत्रा में सृजन-प्रक्रिया के मनोविज्ञानिक स्तर का दुहरा आधर रहता है। वास्तव में इसके दो रूप रहते हैं, प्रथम तो नाट्ड्ड रचना के रूप में नाटककार की अभिव्यत्तिफ द्वितीय इस रचना का सूत्राधर शिक्षित अभिनेताओं द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शन करता है, पर सूत्राधर नाटक की भावानुभूति के आधर पर अनुभव के वास्तविक रूप भौतिक प्रदर्शन को रंगमंच पर अवतरित करता है, दृश्य काव्य का आधर इसी कारण अध्कि मनोवैज्ञानिक संवाद को नाटक का प्राण अथवा कलेवर कहा गया है। किन्तु संवाद मात्रा होने से कोई रचना नाटक नहीं बन सकती। अत: नाटक को अभिनय से पूर्ण स्वतंत्रा पाठड्ड कृति मानना भ्रामक है। नाटक का दृश्य होना ही उसका सबसे बड़ा आकर्षण है। कृति की साहित्यिक गरिमा की महत्ता होती है, किन्तु नाट्ड्डास्वाद पात्रों एवं दृश्यों द्वारा प्रत्यक्ष कथा में ही पूर्ण होता है। इसी कारण नाटक की रचना प्रक्रिया को अभिनेयता सदव परिचालित करती है। बंगला के प्रसिद्ध रंग-निर्माता तथा अभिनेता शम्भु मित्रा ने लिखा है। महान नाटककार एसा ही गुंजाइश महान अभिनेताओं के लिए पैदा करते हैं, इसीलिए उनके नाटक महान नाटक होते हैं।

हिन्दी रंगमंच और मोहन राकेश के नाटक

जयशंकर प्रसाद के बाद हिन्दी रंगमंच एक नई तैयारी के साथ सामने आया है। और यही वह समय जब हिन्दी रंगमंच पर मोहन राकेश का उदय हुआ। राकेश के नाटकों को आरम्भ से ही इतनी प्रसिद्धि मिला हिन्दी और भारतीय भाषाओं के रंग मंच का शायद ही कोई उल्लेखनीय निर्देशक या कलाकार होगा। नाटककार मोहन राकेश को कोई-कोई नाटक प्रस्तुत न किया हो। ऐसी स्थिति बनी कि राकेश के नाटका प्रदर्शनों ने आधुनिक हिन्दी रंगादोलन को न केवल समृद्ध किया बल्कि बहुत दूर तक एक आश्वास्ति हिन्दी रंगमंच के पूरे इतिहास को ही बदल दिया। यह कितना सुखद अनुभव है कि रंगमच ऐतिहासिक मोड़ पर मोहन राकेश जैसा प्रतिभाशाली नाटककार अपनी लेखनी लिए हुए खड़ा था। मोहन

विशेष साहित्यकार:
नाटककार मोहन राकेश

टिप्पणी

का 'आषाढ़ का एक दिन' न केवल संगीत नाटक अकादेमी द्वारा सर्वश्रेष्ठ नाटड्ड रचना के रूप में पुरस्कृत हुआ बल्कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निर्देशक इब्राहीम अल्काजी ने सर्व प्रथम इसी नाटक को मंचन के लिए चुना। उनके कलपनाशील निर्देशन में यह प्रस्तुति अविस्मरणय सिद्ध हुई। हिन्दी नाटक और रंगमंच की पहल बड़ी शुरूआत राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन की इब्राहीम अल्काजी द्व ारा प्रस्तुति से ही होती है। मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिनश् इलाहाबाद कलकत्ता और लखनऊ में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के प्रदर्शन से पहले खेला जा चुका था। 'लहरों के राजहंसश् का भी पहला मंचन सत्यवृत सिन्हा द्वारा प्रयोग रंगमंच की ओर से इलाहाबाद में हुआ।

ष्हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी परंपरा के साथ अनुस्युत नहीं है। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियाँ ही हमारे सामने हैं। परन्तु न तो हमारा जीवन उन सब उपलब्धियों की माँग करता हैए और न ही यही संभव प्रतीत होता है कि हम उस रंगमंच को व्यापक रूप से ज्यों का त्यों अपने यहाँ प्रतिफलित कर दें।श्श् इस कथन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य रंगमंच का अंधानुकरण मोहन राकेश को किसी भी कीमत पर स्वीकार्य नहीं था। वह अपनी जमीन टटोल रहे थे। इस मनोभूमिका को उनका यह कथन स्पष्ट रूप से सामने आता है कृश्हिन्दी रंगमंच के विकास का यह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधायों से संपन्न रंगशालाएँ राजकीय या अर्द्ध राजकीय संस्थाओं द्वारा जहाँ.जहाँ बनावा दी जाएँ जिससे वहाँ हिन्दी नाटकों का प्रदर्शन किया जा सके। प्रश्न केवल आर्थिक सुविधा का ही नहीं एक सांस्कृतिक दृष्टि का भी है।"

मोहन राकेश के लिए रंगदृष्टि की खोज का अर्थ है। सांस्कृतिक दृष्टि की तलाश और यह सांस्कृतिक दृष्टि की तलाश अपनी नाट्य परम्परा के भीतर से ही की जा सकती है। उस परम्परा को साकार करने के लिए 'आषाढ़ का एक दिनश् नया स्वप्न लेकर आया था। इस नाटक के दूसरे संस्करण की भूमिका में राकेश ने लिखा कृश्लखनऊ तथा दिल्ली के कुछ मित्रों ने नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने की योजनाएँ भी बनाई थी जो अभी तक कार्यन्वित नहीं हुई। मै समझता हूँ कि एक नाटकीय कृति के वास्तविक मूल्य उसकी सफलता अथवा असफलता का निर्णय रंगमंच पर ही होता है।" अच्छे सफल नाटकों की रचना के लिए अपेक्षित तो यही होगा कि प्रकाशन से पूर्व ही उनका रंगमंच पर अभिनय हो और उस अनुभव के प्रकाश में ही नाटक को उसका अंतिम रूप दिया जाए। परन्तु लगता है उस स्थिति तक पहुँचने में हमें कुछ वर्ष लगेंगे। नाटक के तीनों अंको का सेट एक ही है इसलिए मैं समझता हूँ उसे खेलने के लिए थोड़े से ही साधनों की आवश्यकता होगी भूमिकाओं के लिए विशेष रूप से बहुत कुशल अभिनेताओं की आवश्यकता होगी। 'आषाढ़ का एक दिनश् के सृजन और प्रदर्शन की दिमागी हलचल का संकेत मोहन राकेश की डायरी के पन्नों में मिलता है। हिन्दी नाटक को को उन्होने एक नया युग दिया प्रौढ़ कियाए वे हिन्दी नाटक में परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

3.4 नाटकों में प्रस्तुतीकरण को लेकर राकेश मोहन

नाटकों के प्रस्तुतिकरण को लेकर मोहन राकेश की स्थिति यह रही उनके समय तक हिन्दी रंगमंच भी काफी विकसित हो गया। स्वतंत्र देश की खुली धरती और आकाश के नीचे बड़ी.बड़ी नाट्य संस्थाएँए निर्देशकए अभिनेता और रंगकला के व्याख्याकारए भी उभरे। नाट्य कला केंद्रों का व्यापक स्तर पर जन्म हुआ। लेकिन फिर भी राकेश निर्देशकों के भँवर जाल में घूमते रहे। कई बार वह निर्देशकों की समस्याओं को हल करने के लिए उसके पास तक गए। लेकिन निर्देशकों ने उनकी बात प्राय: इस कान सुन उस कान निकाल दी। आधे.अधूरेश् नाटक को लेकर जो तनाव पैदा हुआ उसने मोहन राकेश को बहुत मानसिक आघात दिया। इसके पहले 'आषाढ़ का एक दिनश् का रेडियो प्रसारण सुन कर वह

टिप्पणी

कह उठे थे "मन होता है आत्महत्या कर लूँ या अपने संपूर्ण लिखे हुए को जला डालूँ।" यह विद्रोह नहीं है आत्मघाती निराशाजनक स्थिति का चरम विस्फोट हैं।

मोहन राकेश ने कितनी मानसिक हिंसा सही इसका एक उदाहरण उनकी डायरी के पन्नों में मिल जाता है। मोहन राकेश के इस कथन का आज हमें स्वयं नया पाठ करना चाहिए। यह पाठ स्वयं उनके साथ होने वाली मानसिक हिंसा और दमन को प्रस्तुत करता है।

'आधे-अधरे' का ढांचा बहुत सावधानी से बनाया गया और निश्चय ही उसमें कलात्मक बारीक डिजाइन डाली गई। स्थिति की विडंबना को हर कोण से ध्वनित किया गया लेकिन हुआ क्या? राकेश के नाटकों की ज्यादातर प्रस्ततियाँ गवाह है कि निर्देशकों ने नाटककार को प्रसिद्धि की ओर धकेल कर अपने को केन्ट में स्थापित किया। किसी-किसी ने तो कुछ भूमिकाएँ ही निकाल दी या उन्हें मनमाने ढंग से प्रस्तुत किया यह सीमाहीन व्यक्तिवादिता का असहिष्णु उदाहरण है। यदि राकेश का नाटक अपने में एक पूरा संसार है तो उसे प्रयोग के स्तर पर मूर्त करने का प्रयास तो होना चाहिए। लेकिन बिना प्रयास किए अपनी सुजानात्मकता शामिल करना नाटककार की प्रतिभा पर संदेह करना है। रोकश की कला उनके आश्रित रही वह अपनी कला के आश्रित कभी नहीं रहे। आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए भी उन्होंने सृजनात्मक साहित्य और बिकाऊ साहित्य के अंतर को मिटने नहीं दिया।

मोहन राकेश की नाट्य प्रस्तुतियों को एक और अलग कोण से देखे-नाटक को सही अर्थो में जनाश्रयी कोण से देखे तो प्रयोग का एक अर्थ यह भी हागा कि नाट्य प्रस्तुतियो में कुँवर नारायण के शब्दों में वह भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शकों से संवाद की दिशा में प्रयत्नशील है इस मायने में उसके प्रयोग के दायरे में केवल नाटक ही नहीं दर्शक भी है। मोहन राकेश के नाटकों की बड़ी तादाद में प्रस्तुतियाँ हुई हैं और इन प्रस्तुतियों से हिन्दी रंगमंच की नई संभावनाओं का विस्तार हुआ।

3.5 मोहन राकेश के नाटकों का मंचन

मोहन राकेश के चारों नाटकों का मंचन प्रायरू सभी महत्वपूर्ण रंगमंडलियों ने किया। प्रथम तीनों नाटकों की प्रस्तुतियाँ सर्वत्र सफल रही। 'आधे-अधूर' नाटक ने मंचन की सफलता के कारण खूब ख्याति प्राप्त कर ली। विभिन्न भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में भी इसका अनुवाद और मंचन हुआ है। राकेश को अखिल भारतीय नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित करने में 'आधे-अधूरे' के मंचन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आधुनिक हिन्दी नाटक तथा रंगमंच के लिए मोहन राकेश की देन अत्यंत महत्वपूर्ण है। शताब्दियों से संवेदनशून्य पड़े हिन्दी रंगमंच को नयी चेतना भरकर सही अर्थों और संदर्भो में पुनः प्रतिष्ठित करने का बड़ा कार्य राकेश द्वारा सम्पन्न हुआ। हिन्दी रंगमंच को नये आयाम और नयी दिशा देने के लिए राकेश ने अनेक प्रयोग किये हैं। अपने रंगप्रयोगों के कारण मोहन राकेश हिन्दी नाटक के प्रथम समर्थ रंगशिल्पी माने जाते हैं। नाटककार मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' लहरों के राजहंस' और 'आधे-अधूरे' ने हिन्दी नाटक को सहसा ऐसे फलक पर लाकर खड़ा किया जहाँ साहित्य, रंगमंच, भाषा, समीक्षा, रंगकर्म सब एक प्रकार से सामूहिक चेतना के साथ साकार हो उठे।" नाट्य साहित्य में रंगमंच को साकार बना देने में राकेश का बड़ा हाथ है।

रंगमंच से जुड़ा हुआ नाटक मूल रूप में अपने समय के जनसमुदाय से इसका प्रत्यक्ष सरोकार होता है। दर्शक अपनी और अपने समय की समस्याओं को ही रंगमंच पर मूर्त रूप में देखना चाहता है। नाटककारों ने अपने समय की चेतना को किस तरह व्यक्त किया। इसे उनके नाटकों में देखा जा सकता

टिप्पणी

है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों को रंगमंचीय प्रयोगो द्वारा जनता के निकट पहुँचाने का सफल प्रयास किया है।

यथार्थवादी रंगमंच की सृष्टि यथार्थवादी दृश्यबंध की सीमाओं में नाटक की रचना की और उनका मंचन या वस्ततरू मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच ने हिन्दी के नाट्य साहित्य को समृद्ध किया है और नाटक व रंगमंच की दूरी खत्म की है, आगामी नाटककारों को नूतन प्रयोग की प्रेरणा भी उन्होने दी। अब भी यह देखा जा सकता है कि प्रयोगों का दौर समाप्त नहीं हुआ है तथा नये नाटक और नये रंगमंच की सम्भावनाएँ बनी हुई है।

3.6 मोहन राकेश के नाटक और रंगमंच

मोहन राकेश रंगमंचीयता को नाटक की कसौटी माननेवाले हैं। उनके सभी नाटक रंगमंचीयता के व्यापक गणों से सम्पन्न है। आपने नाटक के विकसित रूप को नये-नये आयामों से जोड़ने का प्रयत्न किया है। रंगमंच के बारे में राकेश की एक पृथक दृष्टि है। उनके मन में यह दृढ़ विश्वास था कि किसी न किसी दिन हिन्दी नाटक का रंगमंच अनेक प्रयोगों से गुजरकर एक स्थिर सुंदर आकार प्राप्त करेगा। डॉ. राय का मत है कि रंगमंच नाटक से बाहर होता ही नहीं। हर नाटक का रंगमंच नाटक के साथ ही जन्म लेता है। इसलिए रंगमंच की तलाश नाटक के बाहर नहीं हो सकती वेद प्रकाश की राय में "रंगमंच देशकाल की संस्कृति के महत्वपूर्ण उपादान की भूमिका को निभाता है ।"

आधुनिक काल में यथार्थवादी नाटकों की रचना ही अधिक हुई। यह परम्परा इन्सान और बनडिशाँ के यथार्थवादी नाटकों से आयी है जिसका विकास आधुनिक नाटकों में मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' 'लहरों के राजहंस' 'आधे-अधूरे' और 'पैर तले की जमीन' आदि में पाया जाता है।

मोहन राकेश ने अपने प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की भूमिका में इस प्रकार लिखा है-हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्युत नहीं है।

3.7 मोहन राकेश के नाटकों में रंगमंचीय नए प्रयोग

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में कई रंगमंचीय प्रयोग किए हैं। मोहन राकेश नाटक साहित्य के सबसे बड़े प्रयोगधर्मी हैं। राकेश के 'अषाढ़ का एक दिन' से ही विकासोन्मुख एवं समृद्ध रंगमंच का आरम्भ हुआ। राकेश ने अपने नाटकों द्वारा रंगमंच के नये आयामों की खोज की। इस प्रकार की तलाश में वे काफी सफल भी हुए हैं। राकेश ने आधुनिक रंगमंच को साधारण लोगों की पकड़ में पहुंचा दिया। राकेश का रंगमंच के सम्बंध में अपना नया और व्यक्त दृष्टिकोण है। तकनिकी रूप से समृद्ध और संश्लिष्ट रंगमंच भी अपने मन में विकास की एक दिशा है, परन्तु उससे हटकर एक दूसरी दिशा भी है और मुझे लगता है कि हमारे प्रयोगशील रंगमंच की वही दिशा हो सकती है। वह दिशा रंगमंच के शब्द और मानव पक्ष को समृद्ध बनाने की है-अर्थात न्यूनतम उपकरणों के साथ संश्लिष्ट प्रयोग कर सकने की है। यही रंगमंच में शब्दकार का स्थान महत्वपूर्ण जितना कि हम अब तक समझते आये हैं।

रंगमंच वास्तव में एक कला ही है। इस प्रकार मोहन राकेश के समय से लेकर रंगमंचीय प्रयोग शुरू हुए। समूचे भारतीय रंगमंच के सामने हिन्दी रंगमंच ने अपना स्थान बनाया। मोहन राकेश ने इतिहास और मिथक का उपयोग समकालीन संवेदनाओं में गंथकर प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश ने इस प्रकार की नाट्य रचना के उद्दश्य की ओर 'आषाढ का एक दिन' प्रस्तुत करने के लिए हमारे संवादो को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रगमच की आवश्यकता है, वह पाश्चत्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस सम्बन्ध का रूप-विधान नाटकीय प्रयोगों के आभ्यन्तर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं तथा

टिप्पणी

दिग्दर्शों के हाथों उसका विकास होगा।श' डॉ० जयदेव तनेजा ने कहा कि हिन्दी नाटक के साथ-साथ हिन्दी रंगमंच को भी विकसित, विस्तत समय प्रतिष्ठित करने के महत्वपूर्ण कार्य में राकेश ने उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया है।

3.8 राकेश मोहन के नाटकों में दृश्य विधान में संकेत

जायरा में संकेतों का विशेष महत्त्व है। संकेतों के द्वारा नाटक की कथावस्तु का उद्‌घाटन श्री किया जा सकता है। इसका प्रयोग राकेश ने अपने नाटकों में किया है। राकेश अपने प्रथम नाटक में घार स्थिति सामग्रियों का क्रमिकरण, पूर्ण कुंभ का उल्लेख छाज में धान फटकना आदि संकेतों द्वारा घर के लोगों का स्वभाव, मानसिक स्थिति और जीवन का अभाव आदि व्यक्त करते हैं नाटक के शुरू में घर का वातावर सव्यवस्थित था। लेकिन अन्त तक आते आते पानों तीसरे अंक के शुरू में घर की अव्यवस्था नायिका के पतन का संकेत देती है। संवाद की कुशलता से भी हम पात्रों की मानसिक स्थिति को समझ पाते हैं। उसी तरह 'आषाढ़ का एक दिन' नामकरण इस नाटक के वातावरण से मिलता-जुलता है। नाटक की शुरुआत और समाप्ति आषाढ़ की वर्षा से होती है।

'लहरों के राजहंस' में भी रंग-निर्देश हुआ है। इसमें दृश्य बंध का साज-श्रृंगार हमें यह संकेत देता है कि वहाँ कोई उत्सव हुआ है। सुंदरी का साज-शृंगार उनके मन के अहं की सूचना देती है। बुद्ध के दर्शन की टकराइट का संकेत है। यह तो उनके एक व्याघ्र का सूचक है। कमलताल पर पंखों की फटफटाहट भी सुंदरी की मानसिक स्थिति का संकेत देती है। दर्पण के गिरकर टूट जाने की आवाज भी एक संकेत है कि सुंदरी की सभी इच्छाएँ इसी प्रकार चूर-चूर हो जाने को हैं। इस प्रकार राकेश ने अपने नाटकों में संकेतों का खूब प्रयोग किया है।

'आधे-अधूरे' नाटक का दृश्यबंध एक मध्यवर्गीय परिवार का ड्राइंग रूम है। नाटक के आरम्भ में वह कमरा खूब सजाया हुआ था। लेकिन अन्त में आते ही क्रमीकरण और सजावट अस्त-व्यस्त सा हो जाता है। तिपाई कुर्सी इधर-उधर पड़ी हुई है। यह नाटक पात्रों मानसिक तनाव और घुटन का संकेत देता है! सावित्री और बिन्नी हमेशा बाहर की ओर बड़ी आशा के साथ देखती रहती हैं। यह भी एक संकेत है कि वे दोनों इस वातावरण से दूर जाना चाहती हैं इस प्राकर सम्पूर्ण नाटक में संकेतो का प्रयोग इधर-उधर हुआ है।

'पैर तले की जमीन' नाटक में मृत्यु को सामने देखकर बचाव के लिए इधर-उधर खटखटानेवाले आदमी औरतों का चित्रण हुआ है। नाटक में आदि से अन्त तक बीच-बीच में टेलीफोन की घंटी हमें खतरे की सूचना देती है। उसी प्रकार अब्दुल्ला की जल्दबाजी में भी एक दु:सूचना है।

राकेश मोहन की संकेत योजना के बहुत अधिक उदाहरण अनेक (सभी) नाटकों में मिलते हैं। इसमें बाढ़ की सूचना ध्वनि संकेतों द्वारा की गई है। नाटक एक चेतना सम्पन्न कला है और लोगों में चेतना भरने की शक्ति भी रंगमंचीयता से उपलब्ध होती है।

3.9 नाटक की रचना-प्रक्रिया तथा अभिनेयता

प्रत्येक साहित्यिक विधा की एक विशिष्ट प्रकृति होती है और यह प्रकृति ही उसका स्वरूप निर्धारित करती है। नाटक एक संवादात्मक, दृश्यात्मक सामूहिक कला है। सामूहिकता की घोषित बलवता ही उसके अन्तर्द्वन्द्व तत्वों और अन्तर्सम्बधों को नियमित एवं संचालित करती है। नाटक हो या कविता या उपन्यास रचना प्रक्रिया का प्रश्न सदैव जटिल रहा है तथा इस सम्बन्ध में मत-वैविध्य भी स्वाभाविक है। इसका एक कारण तो यह है कि कवि स्वभाव, कवि दृष्टि और विषय वस्तु के अनुसार रचना

टिप्पणी

प्रक्रियाएँ भी भिन्न-भिन्न होती है। अत: रचना प्रक्रिया का कोई निर्विशिष्ट सामान्य रूप नहीं है, यद्यपि यह सही है कि उस प्रक्रिया के मूल तत्व सर्वसामान्य हैं।

सार्थक नाटकीय शब्द-चेतना को प्राप्त करने के लिए नाटककार को रंगकर्मी की विभिन्न स्थितियों तथा मनोदशाओं से होकर गुजरना पड़ता है। सुप्रसिद्ध नाट्य चिन्तक चेनी शेल्डना मानते हैं कि "जो कुछ भी हो स्वागत तो उसी कलाकार का होना चाहिए, जिसमें साहित्यिक प्रतिभा के साथ रंगमंचीय योग्यता भी हो।' अपनी कठिन प्रयोगात्मक यात्रा में वह जीवन की संश्लिष्ट जटिल किन्तु आन्तरिक यथार्थ से जगमग संवेदना की भूमि का साक्षात्कार कर लेता है। आत्म चेतना का यह प्रत्यक्ष संवेदनात्मक ज्ञान ही रचना प्रक्रिया का प्रथम महत्वपूर्ण सोपान हैं। इसके पश्चात वह आन्तरिक विकास से नाट्यगतियों का द्वितीय सोपान पाता है, यहीं पर निषेध भी विकसित हो जाते है। इतिहास अनुभव तथा परम्परा बोध एक ऐसी दृष्टि को विकसित करते हैं जो उसे लगातार संशोधित तथा सम्पादित करती चलती है।

रचना प्रक्रिया का प्रश्न एक प्रकार से सम्पूर्ण 'नाटकीय तकनीक' से जुड़ा हुआ है। नाट्य लेखन के ऊपर शिल्पीय परिस्थिति का दबाव रहता है। अत: नाट्य सृजन-प्रक्रिया अभिनेयता से प्रतिबद्ध होती है। अन्य किसी साहित्यिक विधा का लेखक अपनी रचना का मानदण्ड एक सीमा तक स्वयं हो सकता है, किन्तु नाट्य लेखन तो दृश्य होकर ही एक नई सार्थकता पाता है। अत: अभिनय द्वारा मूर्त होने की क्षमता और सम्भावना ऐसी कसौटी है जिस पर खरा उतरे बिना नाटक का अस्तित्व नहीं। इसी कारण नाट्य रचना करते समय लेखक को रंगमंच का ध्यान अवश्य रखना होता है। साथ ही यह भी माना गया है कि किसी नाटक की रंगमंच पर असफलता एक सीमा तक नाटककार की भी असफलता है।

"There would seem to be not doubt that we must take the abovious as the truth, recognizing that an image of the theatre persists potently in the mind of true dramatist, and that, if his play written for the stage fails somehow he has failed."

3.10 मोहन राकेश का नाट्यचिंतन और रंगमंचीय अवधारणा

मोहन राकेश का नाट्य-चिंतन बहु आयामी और संश्लिष्ट है। इस चिंतन में बदलते समय के सन्दर्भ में नाटक और रंगमंच को लेकर नए प्रश्न उठाए गए हैं, और नाटक में शब्द की महिमा पर ध्यान केंद्रित किया गया है। राकेश ने भारतेन्दु और प्रसाद के रंग-चिंतन पर विचार करने के बाद नाटककार के रंगमंच की तलाश की इस तलाश के दौरान ही उन्होने अनुभव किया कि आज के व्यक्ति और आज के साहित्य के बीच एक दरार लगातार बढ़ती जा रही है, जिसने पूरे परिवेश की संस्कारगत मान्यताओं तथा मूल्यों को या तो पूरी तरह तोड़-फोड़ दिया है, या उन्हें हाशिए पर फेंक दिया है।

रचनाओं में बाहरी विघटन और अंदरूनी तोड़-फोड़ की जो स्वीकृति है, वह स्थिति-परिस्थिति की टकराहट का परिणाम है। इस टकराहट में सब कुछ गया बीता नहीं है। रचनात्मक सार्थकता को प्रतिष्ठित करने वाले, आंतरिक प्रयोग रंगमंच की नई चुनौतियाँ बनी है। परिवारिक सम्बन्धों के जिस ढाँचे को मनुष्य अपना विकास मानता आया था, उसके चारों ओर सांस्कृतिक मान्यताएँ न केवल भीतर से खोखली हुई हैं, बल्कि उन पर नए सिरे से सोचने का संकट आज का वास्तविक रचना संकट है। इसे सृजनशीलता का संकट भी कह सकते हैं।

संकट का यह बिन्दु मोहन राकेश के चिंतन को शक्ति देता है, उसे कमजोर नहीं बनाता इसका कारण यह है कि मोहन राकेश कथावस्तु से ज्यादा चरित्रों पर अपने को केन्द्रित करते हैं, और चरित्र ही परिवेश की अंतर्वस्तु है। मल्लिका हो या कालिदास, अनुस्वार हो अनुनासिका कोई तो स्तर भेद है, लेकिन चरित्र के भीतर राकेश अपने विचारों की सृजनात्मकता से एक ऐसा नाट्य बिंब रचते हैं कि

टिप्पणी

सहसा हमें चकित होना पडता की मोहन राकेश यह मान कर चलते हैं कि आज का रचनाकार यदि टूट-फूट के सामाजिक संकट को अपनी चिंतन लय से पकड़ नहीं पाता, तो वह आधुनिकता के अपने तमाम दवों के बावजूद आज का नाटककार नहीं निलवा के शब्दों में कहें तो अतीत उनके लिए व्यतीत नहीं है, वह अनेक परतों में सिमट गया है। लेकिन जार नहीं हो गया। उसे सृष्टि के द्वारा पुनः जीवंत धड़कन या संवेदन का हिस्सा जा सकता है। अतीत हए हनिहाय से वह पात्र चनते हैं, लेकिन उन्हें अतीत का नहीं रहने देते, वर्तमान जीवन की सृजनात्मक संभावनाओं और संदरी और गौतम खिंचे चले आते हैं। हम उन्हें पहचानते हुए समझते हैं, और समझते हुए पहचानाना चाहते हैं। समय का अंतराल हमारे अनुभव को बाधित नहीं करता है, क्योंकि राकेश नाटक और रंगमंच दोनों में अपनी रचना शक्ति से समय का अतिक्रमण करते हैं, और भारतीय सभ्यता, संस्कृति की कहानी 'लहरों के राजहंस' जैसी महान कृति में ढल जाती है।

रचनाकाल कलाकृति को राग-विराग के संघर्षों में डालकर पाठक को अलगाव के पथ नहीं छोडता अग्रगामी दिशा-दृष्टि देता है। इसलिए समय को जो यथार्थ प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र में मौजूद था वह यथार्थ मोहन राकेश का नहीं हो सकता। इतिहास का जो अर्थ प्रसाद के लिए था, वह राकेश के लिए नहीं हो सकता, क्योंकि संन्दर्भ बदल गये थे और उन संदर्भो में मौजूद रचनाकार की मानसिकता आरोपित यथार्थ के साथ मिल कर रचना दृष्टि पा रही थी। रचना में मनः स्थितियाँ जितनी संश्लिष्ट होती गई रंगमंच उन मनोवेगों के लयात्मक वहन के लिए उतनी ही बड़ी चुनौती बनता गया। फिर यह बात भूलने की नहीं कि मोहन राकेश अपने परिवेश और निरंतर बदलते यथार्थ के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

नाटककार मोहन राकेश का अहं उनकी मूल चित्तवृति को उछाल देता था, क्योंकि उन्होंने संस्कृत के श्रेष्ठ नाटक पढ़े थे। नाटक और रंग मंच को ज्यो का त्यों प्रस्तुत कर देने वाला सिद्धान्त उन्हें कभी रास नहीं आया, क्योंकि नाटककार का अपना एक कल्पनात्मक रंगमंच होता है, जिसमें दृष्टि निवास करती है।

नाटककार को अधिकार का प्रश्न और उसका स्थान राकेश के लिए जीवन मरण का प्रश्न इसलिए था की निर्देशक रचनाकर्म की पूरी हैसियत पर कब्जा करना चाहता था। भारतीय चिंतन की इस परंपरा से राकेश का गहरा साक्षात्कार था। इसलिए रचनाकार के व्यक्तित्व की लड़ाई लड़ने का उन्होंने संकल्प किया और "रंगमंच की पूरी प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहा। यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं लगती। न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता इससे दूर अपनी अलग चार दीवारी तक इन दोनों को एक धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंग प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बन सके। साथ ही यह भी कि वह उस प्रक्रिया को अपनी प्रयोगशीलता के अगले चरण के रूप में देख सके।"

मोहन राकेश भवभूति के उस दर्द को भूले नहीं थे, जिसमें किसी समानधर्मी के कभी-न-कभी होने की बात कही गई थी। वकील के बेटे राकेश ने नाटक और रंगमंच की वकालत में एक पूरा मुकदमा खड़ा कर दिया और कहा कि नाटककार की मौजूदगी में ही उसका कोई नाटक प्रस्तुत हो। मोहन राकेश के इस कथन में एक अलग पाठ भी छिपा हुआ है। श्यामानंद के प्रस्तुतिकरण की बात तो ठीक है, लेकिन अपनी टोन में जो 'यह भी कहना चाहूँगा या 'मैं समझता है' पर जोर है। उसकी अर्थापति क्यों है? उसकी अर्थापति है नाटक के साथ राकेश का लगाव इतना गहरा था कि वह एक-एक शब्द में अपनी मौजदगी पाते थे। कल मिलाकर मोहन राकेश ने हिन्दी रंगमंच की पूरी परंपरा का एक बिम्ब अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। रंगमंच का यह बिम्ब उसके नाटकों पर कितना खरा उतरता है यह एक अलग तरह का प्रश्न है जिसका कोई एक उत्तर दे पाना समझदारी नहीं होगी।

टिप्पणी

3.11 मोहन राकेश का रंगमंचीय निर्देश

मोहन राकेश की रंगमंचीय समझ इतनी प्रखर थी कि अभिनेताओं को अभिनय करने तथा निर्देशकों को नाटक का निर्देशन करने में शायद ही कोई कठिनाई उपस्थित होती है। दृश्यबंध का राकेश पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। वे एक-एक वस्तु का सूक्ष्म परिचय देने का प्रयत्न करते हैं। मल्लिका की झोपड़ी उसके घर की वस्तुओं तथा दो दिपाधारों की योजना हो, राकेश ने बड़े ही सूक्ष्म तरीके से निर्देश दिए हैं। दृश्य व्यवस्था में वे ऐसी कोई कठिन वस्तु नहीं रखते जो रंगमंच पर उपस्थित न की जा सकती हो। 'आधे-अधूरे' का दृश्यबंध सम्बन्धी चिनिर्देश तो राकेश की रंगमंचीय समझ का उत्कृष्ट उदाहरण है। "मध्यवित्तिय स्तर से ढहकर निम्न मध्यवित्तिय स्तर पर आया एक धार। सब रूपों में इस्तेमाल होने वाला घर घर में व्यातीत स्तर, के टूटते अवशेष किसी न किसी तरह अपने लिए जगह बनाए, अपनी अपेक्षाओं से नहीं कमरे की सीमाओं के अनुसार, चीजों का आपसी रिश्ता टूटा हुआ असुविधाओं में सुविधा खोजने की कोशिश घिसी-फटी सीली-निरर्थक चीजें अध टूटा-टी-सेट धूल की जमी तह। कोई कह सकता है कि यह नाटक के तनाव भरे अधूरे वातावरण का अधूरे लोगों का पूरा सांकेतिक चित्र नहीं है।"

अर्थात राकेश के मंचसज्जा सम्बन्धी निर्देश, निर्देशक को मार्गदर्शन करते हैं। साथ ही एक विशेष अर्थ प्रदान करते हैं। 'आषाढ़ का एकदिन' का रंग-निर्देश अत्यन्त विशद एवं लम्बा है। उदाहरण के लिए "एक साधारण प्रकोष्ठ, दीवारे लकड़ी की है, परन्तु निचले भाग में चिकनी मिटटी से पोती गयी है। बीच-बीच में गेरू से स्वास्तिक चिन्ह बने हैं। सामने का द्वार अंधेरी डयोढ़ी में खुलता है। बाँयीं ओर का द्वार दूसरे प्रकोष्ठ में जाने के लिए है। द्वार खुला होन पर उस प्रकोष्ट में बिछे तल्प का एक कोन ही दिखाई देता है। चूल्हा है। आसपास मिली और काँच के बर्तन सहेजकर रखे हैं। दूसरी ओर झरोखे से कुछ हटकर तीन-चार बड़े-बड़े कुम्भ हैं। चूल्हा के निकट दो चौकियाँ हैं। उन्हीं में से एक पर बैठी अम्बिका छाज में धान फटक रही है।

'लहरों के राजहंस' नाटक के प्रारंभ में भी विस्तृत रंग-निर्देश दिये गये हैं। "दायी ओर गोलाकार चबूतरा। सुंदर बिछावन तकिये के पीछे एक ऊँचा दीपाधार शिखर पर पुरूष मूर्ति, बाँहे फैली हुई हैं तथा आँखे आकाश की ओर उठी हुई। बायी ओर एक झूला और उससे थोड़ा हटकर एक मत्स्याकार आसन, आसन के पास ही मदिरा कोष्ठ इसी ओर मंच के आगे के भाग में एक छोटा दीपाधार शिखर पर नारी मूर्ति बाँहे सम्बधित तथा आँखे धरती की ओर झुकी हुई।" मोहन राकेश रंग निर्देश पर बल देकर नाट्य रचना करते थे। राकेश के सभी नाटकों में रंग निर्देश मिलते

3.12 ध्वनि संयोजन

रंगमंच पर वातावरण को यथार्थता प्रदान करने के लिए ध्वनि-संकेत प्रयोग में लाये जाते है। वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा विद्युत यंत्रों की वयवस्था के साथ ही आज के नाट्य प्रदर्शनों में ध्वनि-प्रभावों का विशेष महत्व बढ़ा है। व्यवसायिक रंग शालाओं में इसके लिए बड़े-बड़े उपकरणों की सहायता ली जाती है। ध्वनि-संकेत के प्राचीन साधन कंठ हाथ-पैर तथा वाद्य यंत्र थे। कुछ प्रतिभा सम्पन्न कलाकार अपने कंठ से अनेक ध्वनियाँ प्रस्तुत कर प्रेक्षक को सत्याभास कराते थे। किन्तु आज वैज्ञानिक साधनों की सहायता से मूल ध्वनियों को यथातथ्य रूप में सुनाया जा सकता है। टेप-रिकार्डर का प्रयोग इस सम्बन्ध में बड़ा ही उपयोगी। वाछित प्रभाव को पहले से ही टेप पर अंकित कर लिया जाता है, फिर नाट्य मंचन के समय ध्वनि प्रभाव का गांभिर्य तभी रक्षित रह पाता है, जबकि उसके प्रस्तुतिकरण में निमिष मात्र भी जल्दी अथवा देर न हो। ध्वनि तथा मंचित किया जाने वाला दृश्य में इतना अधिक

टिप्पणी

सामंजस्य होना चाहिए कि प्रभाव को अधिकाधिक पूर्ण बनाया जा सके। दोनों में कुछ ही समय का अंतराल बिल्कुल उल्टा प्रभाव उत्पन्न कर हास्यास्पद स्थिति को जन्म देगा उदारू जब मंच पर गोली चलाई जाए उस क्षण विशेष में ही नेपथ्य से ध्वनि-प्रभाव दिया जाय।

जाटय संस्थाओं में अलग से इफैक्ट्स विभाग होत हैं, जो बराबर ध्वनि प्रभाव अंकन तथा ध्वनि-संयोजन क्षेत्र में प्रयोग करते रहते हैं तथा प्रदर्शनों में निर्देशक समस्त ध्वनि प्रभावों के लिये उतरदायी होते हैं। इसके लिये रेप रिकार्डर प्रयुक्त किय जाते हैं। कुछ विशेष ध्वनियों के रिकार्ड भी तैयार मिलते हैं। एक रिकार्ड पर एक तरफ तीन से लेकर पाँच ध्वनियाँ अंकित रहती हैं। अतरू परिचालक को प्रत्येक ध्वनि का नामोल्लेख रिकार्ड के उस स्थल विशेष पर कर लेने की आवश्यकता होती है। ट्रांसमिशन भी एक प्रकार का रिकार्ड है जो प्राय: धीमी गति से धमता है। लंबे ध्वनि-संकेत यथा-लगातार दृष्टि गर्जन आदि प्रस्तुत करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है।

ध्वनि संकेतों का विशेष महत्त्व रेडियो नाटकों में होता है। जहाँ सामाजिक नाटक को देखता नहीं सुनता है। अतरू ध्वनी-प्रभाव तथा पात्रों की आवाज ही नाट्य प्रभाव के लिये उत्तरदायी होती है।

3.13 संगीत योजना

"नाट्यशास्त्र'' में लगभग छह-सात अध्यायों (28-34) में नाट्य-प्रयोग की सिद्धि के लिए गीत वाद्य के महत्व का विस्तृत विवेचन किया गया है। पूर्वरंग का आरम्भ गीत-नृत्य के साथ होता है। नाट्य-प्रयोग के मध्य में भी गीत का प्रयोग होता है। गीत-वाद्य नाट्य-प्रयोग के मध्य में भी गीत का प्रयोग होता है। गीत-वाद्य नाट्य-प्रयोग में अलातचक्र की तरह मिले रहते हैं। वाद्य-भांडो एवं वीणा का वादन भी गीतों के संतुलन में करके रस-पारिपाक में सहायता पहुँचाई जाती है। गीत का प्रयोग भाव-रस के प्रकाशन के लिए होता है। अतिशय गीत-प्रयोग का विरोध भी आदि आचार्य ने किया क्योंकि उस स्थिति में नाट्य प्रयोग राग-जनकन होकर 'खेद-जनक' हो जाता है।

गीत-वाद्य विधान के सम्बन्ध में भरतमुनि ने पूर्ववर्ती संगीताचार्यों स्वाति, नारद, तुंबख आदि का उल्लेख किया है। भरत ने उनका आकलन कर शास्त्रीय रूप देते हुए उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने सप्तस्वर रसानुसार स्वर योजना, वर्ण और अलंकार, ताल-लय और यति की महता, ध्रुव का स्वरूप और भेद, वाद्य के प्रकार तथा उनका तालाश्रित प्रयोग आदि विषयों का विवेचन किया है।

कालिदास के तीनों नाटकों में गीतों का विधान किया गया है। अभिज्ञान शाकुंतलम् के आरंभ में ग्रीष्मऋतु का गीत नटी गाती है, हंसपदिका के गायन का संकेत है। लोक नाट्य परम्परा का गायन स्थल मंच यह क्षेत्र विशेष रूप से बना होता है। "रंगशाला में गायकों और वाद्यकों की मंडली के स्थान ही विशेष महत्ता है; क्योंकि पदों और औपचारिक दृश्य परिवर्तन के अभाव में गीत और वाद्यवादन ही कथा सूत्र को श्रृंखलाबद्ध करते हैं, तथा प्रसंगों के बीच कालावधि में पूरक का काम करते हैं' संगीत पूरी स्वतंत्रता के साथ कई प्रकार से अपना उद्देश्य पूरा कर सकता है। साथ ही सम्बन्ध विषय पर प्रतिक्रिया भी प्रस्तुत कर सकता है।

मनोरंजन की विविधता भी इसके द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। आधुनिक नाट्य में नेपथ्य- संगीत का विशेष महत्त्व है। टेप रिकार्ड किया गया संगीत प्रभाव आज बहुत ही महत्वपूर्ण बन गया है। वातावरण का निर्माण करने अवसरानुकूल बाद्य संगीत संवादों की पृष्ठभूमि में तथा करूण शांत वीर भंगार आदि रसों की निष्पति में नेपथ्य संगीत तथा करुण शांत वीर शृंगार आदि रसो की निष्पति में नेपथ्य संगीत तथा पृष्ठभूमि संगीत अत्यधिक उपयोगी होता है।

विशेष साहित्यकार:
नाटककार मोहन राकेश

टिप्पणी

नवीन दृश्य विधान में जहाँ दृश्य परिवर्तन तथा अंक परिवर्तन के समय परदा गिराने उठाने का प्रचलन समाप्त कर दिया गया है, एक दृश्य से दूसरे के बारे में अंतराल में कुछ पल के लिए संगीत प्रभाव का प्रयोग कर मनेहरी वातावरण की सृष्टि की जाती है।

3.14 वेशभूषा और रूपविन्यास

'नाट्यशास्त्र' में भरतमुनि ने अंग रचना तथा वेश विन्यास को अहार्य अभिनय के अन्तर्गत स्थान दिया है। पात्रों के अनुरूप तथा प्रकृतिगत वेशभूषा, अंग-सज्जा तथा अलंकरण का महत्व केवल बह्यावरण के रूप में ही नहीं, अपितु पात्रगत विशिष्टता के रूप में भी है। किसी भी भाँति की सांस्कृतिक विरासत के यह वाहक होते हैं। ऐतिहासिक- पौराणिक पात्र अपने 'स्वरूप' के निर्माण अंग-रचना तथा वेश-वन्यास से तुरन्त ही पहचाने जाते हैं।

'नाट्य शास्त्र' में पात्रों के वस्रालंकार केश विन्यास एवं अंग-रचना सम्बन्धी विधियों का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक रंग-निर्माताओं ने भी रूप-सज्जा तथा अहार्थ सम्बन्धी अनेकानेक विधियों की चर्चा की है, जिनमें दिए गए विस्तृत विवरण नाट्य-प्रयोग के लिए व्यावहारिक दृष्टि ये पर्याप्त उपयोगी है।

नाटक के निम्न वर्ग के पात्रों की वेशभूषा में घिसी हुई पैर चिकने कोट, फटी हुई आस्तीन और चीकट स्कर्ट का प्रयोग होता था। जिससे कि बीते हुए समय की गंध एवं रंग का आभास हो सके।

नाटक की रचना चाहे शास्त्रीय नियमावली के भीतर हुई हो अथवा लोक-नाट्य शैली में लिखा नाटक हो, उच्च कोटि का साहित्यिक नाट्य, गीत-नाट्य हो अथवा दक्षिण भारत का शास्त्रीय नृत्य, सभी में, वेशभूषा तथा मुख्य-सज्जा का विशेष महत्त्व होता है। ऐतिहासिक नाट्य-प्रस्तुति में देश-काल की प्रतीति अहार्य द्वारा होनी चाहिए तो समाजिक नाटको के विभिन्न वर्गीय पात्रों का उनकी वेशभूषा द्व ारा प्रतिनिधित्व होना चाहिए। इस समय यह भी ध्यानत्व है कि यथार्थवादी रंगमंच की वेशभूषा तथा प्रभाववादी रंगमंच की वेशभूषा एक दूसरे से नितांत भिन्न होती है। वेशभूषा तथा रूप-सज्जा द्वारा नाट्य-प्रस्तुतिकरण में सामयिक तथा स्थानगत प्रतिबद्धता उत्पन्न की जाती है। किसी भी विशिष्ट पात्र की रूप-सज्जा की परिकल्पना निश्चय ही उसकी भूमिका के आंतरिक रूपांकन के समान्तर होती है।

आधुनिक रंगमंच रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़कर आगे बढ़ता है। 'आषाढ़ का एक दिन' एक साधारण नाटक है। इस नाटक के सभी पात्रों की वेशभूषा बिलकुल साधारण है। डॉ० वशिष्ट नारायण के अनुसारदृ "नाट्य के संदर्भ में वेशभूषा का प्रथम गुण उसकी कलात्मकता है।" जो भी हो वेशभूषा का अलग महत्व ही है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के आरम्भ में नायिका मल्लिका भीगी सी पुलकित सी प्रवेश करती है। इस समय नायिका का वेश विधान अत्यन्त अनुयोज्य है। लहरों के राजहंस की नायिका सुंदरी का वेष विधान अत्यंत साजसजावट बहुत ही अनुरूप है। 'आधे-अधूरे' नाटक के पात्र भी साधारण वेशभूषा में प्रत्यक्ष होते हैं। वेशभूषा अलंकारादि एवं मेकअप के द्वारा दृश्य की अभिव्यंजना क्षमता बढ़ जाती है। आजकल नाटकों में सादा वेश विधान है और काले या सफेद वस्त्रों का उपयोग ही होता है। कभी-कभी चेहरे पर लेपन आकारपूर्ण, भौहें लाल रंग के होठ आदि तक अनिवार्य है। इन सब अलंकारों का उपयोग राकेश के नाटकों में हुआ है।

'भरत ने वेश रचना के लिए वस्त्र आभूषण माल्य प्रतिशिर केश विन्यास अंग रचना, अंग, राग, अनुलेपन, आदि का विवेचन किया है और सारे अहार्य में चरित्र के अनुरूप सामजस्य पर बल दिया है, और विभिन्न उम्र, जाति, वर्ण स्तर वय के आधार पर विभिन्न कोटि के वेश रूप और रंग का निर्धारण उन्होने उनकी भूमिकाओ, अवस्थाओं, प्रकृतियों आदि के अनुसार किया है।" नाटक में वस्त्र

विशेष साहित्यकार:
नाटककार मोहन राकेश

टिप्पणी

विन्यास का बड़ा महत्त्व है। राकेश के सभी नाटकों में वेशभूषा को महत्त्वपूर्ण और अनुयोज्य ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन्हीं तत्वों के अनुसार ही राकेश ने वेशभूषा का उपयोग किया है।

3.15 अभिनय और अभिनेता

'अभिनय' नाटय प्रदर्शन का मूलभूत तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है। नाट्य-प्रयोग अभिनय काशी सिद्ध होता है। अभिनय के अन्तर्गत समस्त नाट्य-कर्म समाहित हो जाता है। इसी के द्वारा 'काव्य' नाध्य बनता है। अभिनय में ही नाटक के प्राण रस का उन्मेष होता है। अभिनय में ही नट-नटी, विभाव अनभाव और संचारियों द्वारा रस निष्पति में सहायक बनते हैं। 'णी' धातू में अभि उपसर्ग लगाने से 'अभिनय' शल बनता है। अभिनय से तात्पर्य है- नाट्य प्रयोग के द्वारा मुख्यार्थ को समाज के- हृदय तक पहुँचना और विभाजन करना अर्थात रसास्वाद कराना है।

अभिनेता नाट्य कृति को रूपायित करता है। अतरू वही नाटक का वाहक होता है। नाटकों के संवादों को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त करने के साथ ही अभिनेता नाटककार की मूलभूत अनुभूति को उसकी व्यक्त अव्यक्त संभावनाओं के साथ उदघाटित करता है। नाट्य-भ्राँती अभिनय द्वारा ही उत्पन्न की जाती है। अच्छे अभिनय की पहचान यह है कि दर्शक उसके निसृत विभिन्न रसों के अर्णव में आमूल-चूल डूब जाए। वाणी तथा व्यवहार अभिनय के साध होते हैं। नाट्य संवादों के पीछे छिपी अन्तर्तम भावनाओं, उद्देश्यों, विचारों, अनुकृत पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अभिनय द्वारा उदघाटित करना अभिनेता का ध र्म होता है। धर्मवीर भारती ने लिखा हैइस अभिनेता की सफलता इस बात में न थी कि वह, केवल वह दिखाई पड़े बल्कि दर्शकों को भी, और मूर्तिमान कर दे उस नाट्य-स्थिति को जो नाटककार की कल्पना में साक्षात्कृत हुई होगी।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ही भरतमुनि ने प्रयोगात्मक नाट्य-विज्ञान को व्यावहारिक अथा शास्त्रीय रूप में अभिनय' का नाम दिया था। पात्र अनुकार्य करता है, अपनी शीररिक मनोवेगों की अभिव्यंजना रूप-सज्जा तथा वस्त्र-विन्यास के द्वारा अभिनेता कवि-निबद्ध पात्रों के विचारों, भावों तथा कथावस्तु आदि को रूपयित करता है इन माध्यमों द्वारा समाज को रसाभिमुख करता है।

अतरू अभिनय करने वाला पात्र अभिनेता होता है। नाटककार की कृति का प्रदर्शन अभिनय के द्वारा होता है। यह उसका आधार होता है।

3.16 रंगशिल्पगत तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी नाटकों के रंगान्दोलन के इतिहास में मोहन राकेश का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। मोहन राकेश के पूर्व हिन्दी भाषा तथा नाटक को विशेष गरीमा प्राप्त नहीं थी। मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन नाटक के अपूर्व प्रस्तुतिकरण से हिन्दी नाटक को एक सम्मान का स्थान प्राप्त हुआ। उनके सभी नाटक सभी भारतीय भाषाओं से अनुदित और मंचित हुए। डा. जयदेव तनेजा के शब्दों में, "हिन्दी के नए-पुराने सभी नाट्य लेखकों और रंगकर्मियों के लिए मोहन राकेश का कृतित्व आज भी एक चुनौती बना हुआ है। मोहन राकेश ने हिन्दी नाटक, नाटककार और रंगमंच को एक विशिष्ट गरिमा, प्रौढ़ता और मर्यादा प्रदान की हिन्दी के नये रंगादोलन के उद्भव, विकास और उसे समृद्ध करने में राकेश के नाटकों के बहुभाषी बहुसंख्य प्रदर्शनों ने निर्णायक भूमिका निभाई है।" नाटक के लेखन और मंचन के क्षेत्र में मोहन राकेश ने नए-नए प्रयोग किए। आकर्षक दृश्य बन्ध, ध्वनि और प्रकाश-योजना, रंग संकेत की सहायता से नाटक को सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास मोहन राकेश ने किया।

राकेश के दौरान रंगमंच की जो अवस्था थी वही मराठी रंगमंच की भी थी। मराठी नाट्यजगत पर भी पाश्चात्य नाटककारों से प्रभावित नाटकों का प्रभाव था। मोहन रोकेश की नाटक की समझ और

टिप्पणी

रंगशिल्प के विकास की दृष्टि से देखा जाए तो उनके प्रारंभ के नाटक बीज अवस्था में दिखाई देते हैं। 'आधे-अधूरे' का शिल्प विधान राकेश के पिछले नाटकों की अंक दृश्य व्यवस्था से भिन्न है। 'आषाढ़ का एक दिन' 'लहरों के राजहंस' तीन अंको के नाटक हैं 'आधे-अधूरे' मध्यान्तर की व्यवस्था के साथ केवल दो हिस्सों में बँटा नाटक है। इस प्रकार 'आधे-अधूरे' नाटक शैली, शिल्प और कथ्य की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी नाटकों में महत्वपूर्ण साबित होता है, जहाँ से आगामी पीढ़ी प्रेरणा ले सके। आज जो अनेक शिल्पगत प्रयोग वाले नाटक लिखे जा रहे हैं, उनमें सर्वाधिक नीवनता इसी अंक दृश्य योजना को लेकर देखी जाती है। मध्यांतर द्वारा विभजित नाटक, दृश्य संख्याओं वाले नाटक आदि आज के नए नए प्रयोग की शुरूआत मोहन राकेश से होती है।" इस प्रकार नाटक को आधुनिक प्रयोगशील स्वरूप देने में मोहन राकेश की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

3.17 रंगमंच और शिल्प

एक नाटक की सफलता उसकी रंगमंचीयता में है। राकेश का विश्वास यह था कि यदि "जीवन की कसौटी नाटक है तो नाटक की कसौटी रंगमंच है" यही कारण है कि नाटककार को रंग शिल्प पर अधिक ध्यान देना पड़ता है। रंगमंचीय शिल्प पर कोई त्रुटि रह जाये तो वह नाटक सफल नहीं होगा।

मोहन राकेश का रंगमंचीय दृष्टिकोण बिल्कुल नया है। मोहन राकेश ही सबसे प्रमुख एवं प्रथम प्रयोगध र्मी नाटककार हैं।ष्आषाढ़ का एक दिन' उनका पहला महत्वपूर्ण नाटक है।

3.18 रंगदीपन

अभिनय कला प्रथा उसके मध्यम गति को पूर्णता व्यंजित करने के लिए पर्याप्त अर्थात समुचित प्रकाश की आवश्यकता होती है। प्रकाश व्यवस्था के माध्यम से दृश्यात्मक रूप में चाक्षुष संरचना तथा देशकाल एवं घटना स्थल को व्यंजित करने में सहायता की जाती है। प्रकाश व्यवस्था का प्रयोजन दृश्यबोध का सृजन है। उसके द्वारा घटना-स्थल, संरचना एवं मनोभाव की सृष्टि के साथ ही नाटकीय शैली तत्व का व्यक्तीकरण किया जाता है।

"प्राचीन नाटकों के अभिनय के सन्दर्भ में भरतमुनि ने नाट्य-प्रयोग के लिए समय निर्धारित करते हुए बताया कि प्रातरू तथा दिन के तीसरे प्रहर तथा रात्रि में प्रथम और अंतिम प्रहर में नाट्याभिनय किया जाना चाहिए।" रंग प्रदीपन के संदर्भो में उनका मत है कि जलते हुए दीपक की अधिक आवश्यकता न होगी, रात्रि के लिए दीपक जलाए जाने की यह व्यवस्था अपेक्षित होगी। परंतु जहाँ तक शैलगृहाकार रंगमंडप का प्रश्न है, उसमें गवाक्षों के रहते हुए भी दिन में रंग-दीप्ति की आवश्यकता होगी।

भारत के लोक-नाट्य में दीपक अथवा मशाल के मंद प्रकाश में पात्रों की अंगसज्जा तथा वेश-विन्यास का रंग बहुत ही आकर्षक रूप में उभर कर आता है। चमत्कारिक दृश्यों में कभी-कभी पूर्ण अंधकार तथा अद-प्रकाशित मंच की व्यवस्था होती थी।

आजकल लोक रंगमंच को फिर से महत्व मिलने के कारण समरस प्रकाश में भी प्रस्तुतियाँ होती हैं। चित्रित रंगों तथा रूप-सज्जा को विभिन्न प्रकाश स्थितियों में प्रभावपूर्ण बनाये रखने का कौशल्य अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प्रत्येक नाटक के प्रकार तथा शैली एवं निर्देशक की रंग परिकल्पना के अनुसार प्रकाश के प्रत्येक प्रयोजन के विशिष्ट प्रयोग की योजना की जाती है। प्रकाश यंत्रों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है कि वे व्यक्ति के प्रकाश संवेदन सम्बन्धी सीमा रेखा को भली भाँति ग्रहण कर सके। नाटकीय प्रदर्शन में केवल प्रत्यक्ष करने की अपेक्षा आभासित करने की संभावना को अधिक महत्व दिया जाता है।

टिप्पणी

ब्रेख्त बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि रोशनी सीधी तथा तीव्र हो ताकी पात्रों की भावाभिव्यक्ति के उतार चढ़ाव को स्पष्टता के सभी देखा जा सके। मंच प्रकाश पर लिखी गयी उनकी किताब में कहा गया है, किष्ऊघतो हुई रोशनी में मेरे दर्शक ऊँघने लगेगे मिस्त्री जी चूंधियानेवाली तेज, रोशनी दो ताकि दर्शक जागते रहें। अगर उन्हें सपने दखने हैं तो चमकती हुई रोशनी में देखे। रात के अंधेरे को हमारे जगमगाते हुए लैम्प और चांद और भी गहरा कर सकते है। रोशनी तेज करों, ताकि दर्शकर हमारा नाटक देखें जो हमने उनके लिए तैयार किया हैष् रंगदीपकीय उपकरणों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।-(1) संघात उपकरण यथा पद प्रकाश, 'शीर्ष प्रकाश, (2) तीव्र प्रकाश (3) बिन्दु प्रकाश (4) लैंसयुक्त लालटेने तथा अलोक चित्रप्रक्षोक।

3.19 शब्द और रंग का मेल

मोहन राकेश शब्द पर अनुसंधान कर रहे थे। स्वाभाविक है कि राकेश शब्द पर अधिक ध्यान दें। आधुनिक संवेदनाओं को व्यक्त करने का जरिया उन्होंने शब्दों को माना, 'राकेश को रंगमंच की संभावनाएँ ध्वनि के क्षेत्र में दिखलाई पड़ी और इसे ही वे भारतीय नाटक का वैशिष्टय बनाना चाहते थे। उनका निश्चित मत था कि, 'शब्दों की योजना नाटक में इस प्रकार करते हैं, जिससे पात्रों को अपनी अभिनय क्षमता दर्शाने का अवसर मिलता है। मल्लिका की प्रेरणा से ही कालिदास उज्जयिनी जाता है। पर जब वह चला जाता है। मल्लिका की विरह भावना इस तरह व्यक्त होती है। अत्यंत कम शब्दों में माँ और बेटी एक-दूसरे का दु:ख जान लेते हैं। क्रिया और शब्दों के संगम से यहाँ अभिनय व्यक्त हो रहा है।

"अंबिका; मल्लिका!

मल्लिका रूक जाती है, पर कुछ भी उत्तर न देकर मुँह हाथों में छुपा लेती है। अंबिका उठकर धीरे-धीरे उसके पास आती है और उसे बाहों में ले लेती है। सारा शरीर रूलाई से कांपते रहता है, पर गले से स्वर नहीं निकलता अंबिका की आँखों में पानी भर आता है और वह उसके कांपते शरीर को अपने से सटाये उसकी पीठ पर हाथ फेरती रहती है। फिर होठों और गालों से उसके सिर को दुलारने लगती है।

अंबिका: अब भी रोती है? उसके लिए? उस व्यक्ति के लिए जिसने।" कम शब्दों में भवनाओं की अभिव्यक्ति राकेश की श्रेष्ठ रंगमंचीय समझ का ही उदाहरण है।

कुछ स्थानों पर संक्षिप्त संवाद किया, भाव मुद्रा का मेल स्थापित कर रोकश ने अभिनय अभिव्यक्ति की नयी शैली चित्रित की है। 'आधे-अधूरे' में एक निर्णायक क्षण है, सावित्री जगमोहन के पास चले जाने का निर्णय लेती है। बड़ी लड़की कहती है-"और सोच लो थोड़ा....." सावित्री आवेग में गले की माला को उंगली से लपेटती है और वह झटका लगने से टूट जाती है। यहाँ शब्द क्रिया साथ-साथ चलते है। फलत: सारी स्थिति प्रतीकार्थ को तो व्यक्त करती ही है, साथ ही दो चार शब्दों के प्रयोग से एक नया अर्थ व्यक्त होता है।

3.20 समकालीन हिन्दी रंगमंच और राकेश मोहन के नाटक

बहुमुखीय प्रतिभा के धनी मोहन राकेश ने गद्य की अनेक विधाओं में काम किया किन्तु उनकी विशिष्ट पहचान एक संवेदनशील नाटककार, उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में है। मोहन राकेश का जन्म 7 जनवरी 1924 को अमृतसर में हुआ। इनका मूल नाम मदन मोहन गुगलानी था। पहली बार मदन मोहन राकेश के नाम से उनकी कहानी 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई और बाद में मोहन राकेश

टिप्पणी

के नाम से हिन्दी साहित्य जगत में चर्चित हो गये। मोहन राकेश बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। उन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास, यात्रा विवरण, निबन्ध आदि लिखकर साहित्य क्षेत्र में अपना स्थान स्वयं निर्धारित किया है। किन्तु नाटककार के रूप में माहेन राकेश को विशेष ख्याति मिली है। मोहन राकेश को कहानी के बाद सफलता नाट्य-लेखन के क्षेत्र में मिली। हिन्दी नाटकों में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद का दौर माहेन राकेश का दौर है जिसे हिन्दी नाटकों में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद का दौर मोहन राकेश का दौर है जिसे हिन्दी नाटकों को फिर से रंगमंच से जोड़ा। उन्होंने अच्छे नाटक लिखे और हिन्दी नाटक को अंधेरे बन्द कमरे से बाहर निकाला और उसे युगों के रोमानी ऐन्द्रजालिक सम्मोहक से उबारकर एक नए दौर के साथ जोड़कर दिखाया। वस्तुत: मोहन राकेश के नाटक केवल हिन्दी के नाटक नहीं है। वे हिन्दी में लिखे अवश्य गए है, किन्तु वे समकालीन भारतीय नाट्य प्रवृत्तियों के द्योतक है। उन्होंने हिन्दी नाटक को पहली बार अखिल भरतीय स्तर ही नहीं प्रदान किया वरन उसके सदियों के अलग थलग प्रवाह को विश्व नारक की एक सामान्य धारा की ओर भी अग्रसर किया। प्रमख भारतीय निर्देशकों इबाहीम अलकाजी, ओम शिवपुरी, अरविन्द गौड़, 'यामानन्द जालान, राम गोपाल बजाज और और दिनेश ठाकुर ने मोहन राकेश के नाटकों का निर्देशन किया। हिन्दी नाटक के क्षितिज पर मोहन राकेश का उदय उस समय हुआ जब स्वाधीनता के बाद पचास के दशक में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का ज्वार देश में जीवन के हर क्षेत्र को स्पन्दित कर रहा था। उनके नाटकों ने न सिर्फ नाटक का आस्वाद, तेवर और स्तर ही बदल दिया, बल्कि हिन्दी रंगमंच की दिशा को भी प्रभावित किया। उसके पहले, भरतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद जैसे प्रतिभावान रचानाकारों के बावजूद, हिन्दी नाटक अधिकांशतरू या तो सस्ते में मनोरंजन का साधन बना हुआ था या फिर नाट्य पुस्तकों की दीवारों के पीछे बन्द था। पचास के दशक में उसे धीरे-धीरे एक अत्यन्त ही समर्थ किन्तु जटिल और परिश्रम तथा प्रशिक्षण-साध्य कला माध्यम के रूप में स्वीकृति मिलना शुरू हुआ और साथ ही नाट्यकर्मियों से भी अधिक जागरूकता, संवेदनशीलता और कलात्मक गंभीरता की अपेक्षा होने लगी। 1958 में संगीत नाटक अकादमी द्वारा मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' को सर्वश्रेष्ट नाटक के लिए और कलकत्ते की नाट्यमंडली 'अनामिका' को विनोद रस्तोगी के 'नये हाथ' के सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतीकरण के लिए पुरस्कारों में इस बदलती हुई स्थिति की ही स्वीकृति दी। उसके बाद से हिन्दी नाटक लगातार आगे बढ़ता रहा है। और सारी सीमाओं के बावजूद उसके क्रमशरू हिन्दी के सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में और देश के नाटक साहित्य में सार्थक स्थान हासिल किया है।

मोहन राकेश ने कथ्य, शिल्प और प्रयोग तीनों ही दृष्टियों के आधुनिक नाटकों की शुरुआत की। नाटक की रंगमंचीयता को ध्यान में रखते हुए इनके नाटक सफल नाटक हैं। याथार्थ धरातल से जुड़े, परिष्कृत नाट्य शिल्प वाले मोहन राकेश के नाटकों ने हिन्दी नाटक और रंग मंच को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। मोहन राकेश के तीनों नाटकों में स्त्रीवादी चिंतन विकसित होता हुआ दिखाई देता है। 'आषाढ़ का एक दिन' (1958) में आदर्श भारतीय स्त्री का समर्पण है, जबकि 'लहरो के राजहंस (1963) में स्त्री के अहं-पोषित रूप को अभिव्यक्ति मिली है, वही 'आधे-अधूरे' (1969) में आर्थिक रूप से सक्षम और आधुनिक स्वतंत्र नारी निकम्मे पुरुष से विरोध करती हुई अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु विद्रोह करती है। अपने अधूरेपन को भरने के लिए स्वतंत्र रूप से पूर्णता की खोज करती है तथा एक अधूरा नाटक 'पैर तले की जमीन' है। मोहन राकेश के अंतिम नाटक का प्रकाशन उनके निधन के बाद हुआ। इसे वह अपूर्ण लिखा छोड़ गये थे इस नाटक को उनके मित्र कमलेश्वरजी ने पूरा किया। उनका प्रकाशित पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' वास्तव में यही वह हिन्दी का पहला नाटक भी

टिप्पणी

था जिसने हिन्दी रंगमंच के अपने स्वतंत्र स्वरूप की नींव भी रखी।

आषाढ़ का एक दिन

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया आधुनिक बोध के विविध आयामें को उद्घाटित करने वाला यह नाटक आधुनिक हिन्दी नाट्य युग का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। इतिहास प्रसिद्ध कवि कालिदास के रूप में रचनाकार के सृजन के विविध द्वन्द्वों, कालिदास, मल्लिका, प्रियंगुमंजरी तथा विलोम जैसे पात्रों के रूप में आधुनिक स्त्री पुरुष के संबंधों की जटिलता को, परिवेश से कटे विवश आधुनिक मानव की पीड़ा को प्रस्तुत किया है। नाटक की भाषा पात्र और विषय वस्तु के अनुकूल और संप्रेषणीयता के गुण से युक्त है। संवाद-योजना, रंग-मंचीयता के अनुकूल क्षिप्र, चरित्रोद्घाटक, उद्देश्योन्मुख और प्रभावी है। अभिनेयता के लिये कथावस्तु, पात्रों की सीमित संख्या संक्षिप्त प्रेषणीय संवाद ध्वनि-संकेत, स्थान-संकलन की दृष्टि से यह सफल नाटक है। स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी नाटक की श्रृंखला में 'आषाढ़ का एक दिन' एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के म उल्लेखनीय है। यह मोहन राकेश का सर्वप्रथम, बहुचर्चित तथा लोकप्रिय नाटक है। इसमें कवि कालिदा एक प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। आषाढ़ का एक दिन' में ऐतिहासिक पात्रों के साथ काल्पनिक है। मोहन राकेश ने इतिहास और कल्पना के सामंजस्य से प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों को समन्वित कर 'शाश्वत सत्य को युगानुरूप पुष्ट किया है। इस नाटक का कालिदासदृइतिहास का कालिदास नहीं मोर राकेश कालीन कालिदास है। 'आषाढ़ का एक दिन' हिन्दी के युगान्तरकारी नाटककारों में से एक मोहन राकेश की एक कृति है। इस नाटक को हिन्दी साहित्य में इसलिए जाना जाता है क्योंकि इस नाटक से हिन्दी रंगना यथार्थवाद की उस समय नयी परम्परा को एक बहुत मजबूत प्रोत्साहन मिला। मोहन राकेश ने कहा है कि किसी रंगमंच पाश्चात्य रंगमंच से अत्यधिक भिन्न है। हमारे पास उपलब्धियों को देखने के लिए पाश्चात्य रंगमंची है क्योंकि हिन्दी रंगमंच किसी एक विचार विशेष से बंधा हुआ नहीं है। मोहन राकेश ने हिन्दी रंगमंच के उद्देश को भी परिभाषित करने की कोशिश की है। उनका कहना है कि रंगमंचक को हिन्दी भाषी प्रदेश की दैनिक आवश्यकताओं और उनके सांस्कृतिक महत्व को अभिव्यक्त करने वाला होना चाहिए और ऐसा पाश्चात्य रंगमंच की अंधाधुंध तरीके से नकल करने से संभव नहीं है और इस बात के लिए सराहना होनी चाहिए कि इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कालिदास को कथानक में सम्मिलित किया गया है, जो कि अपने आप में स्वंय बहुत बड़े नाटककार थे। अगर यह कहा जाये कि इस नाटक का नायक कालिदास न होकर मल्लिका थी तो इससे को अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस नाटक को हिन्दी साहित्य के कुछ शुरुआती स्त्री-प्रधान रचनाओं में जगह दी जा सकती है। तृतीय अंक में कालिदास के संवाद, जहाँ उन्होंने अपने मानसिक द्वंद्व का चित्रण किया है, भी कथानक की स्त्री प्रधानता कोई कम नहीं कर सकें। मल्लिका का चित्रण एक स्वंतत्र, आत्म-निर्भर, विचारशील, आधुनिक और निर्णायक नारी के रूप में हुआ है। इस नाटक में इतिहास के पुनरुत्थानवादी काव्य की झलक कहीं से भी देखने को नहीं मिलती। मोहन राकेश ने अपने आपको कालिदस और मल्लिका के प्रसंग तक सीमित रखा है। अनावश्यक रूप से संस्कृति का गुणगान इस नाटक में देखने को नहीं मिलता है। कहानी के लिहाज से भी यह अत्यंत सीमित और सार-गर्भित रचना कही जायेगी। पातंजलि के एक उल्लेख के अलावा कहीं भी लेखक ने पात्रों के ज्ञान को दर्शाने के लिए संदर्भो का सहारा नहीं लिया जिससे पूरे नाटक में गति बनी रही है। भाषा अत्यधिक संस्कृतिनिष्ठ नहीं है, पढ़ने पर प्रवाह बना रहता है। इस नाटक के मंचन देश-विदेश में हुये हैं। जिनमें से कुछ प्रसिद्ध लोगों द्वारा अभिनीत और निर्देशित मंचनों के दृश्य इस पुस्तकों में दिए गए हैं। मोहन राकेश को उनके नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में सर्जक के रूप में जाना जाता है। यह नाटक सन् 1958 में प्रकाशित हुआ थ। इसे हिन्दी के आधुनिक नाटकों के

विशेष साहित्यकार:
नाटककार मोहन राकेश

टिप्पणी

क्रम का पहला नाटक भी कहा जाता है। सन् 1959 में इसे सर्वश्रेष्ठ नाटक होने का सम्मान संगीत नाटक एकादमी के द्वारा दिया गया था। मोहन राकेश क इस वैचारिक नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' को लेकर मणिकौल ने सन् 1971 में एक फिल्म का निर्माण भी किया था, जिसे फिल्मफेयर अवार्ड भी मिला। मोहन राकेश के द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' को हिन्द साहित्य जगत में मील का पत्थर कहा जा सकता है।

लहरों के राजहंस

यह नाटक भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया आधुनिक बोध कराने वाला प्रभावशाली नाटक ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक दुविधाग्रस्त मानव के द्वन्द्व, उसकी पीड़ा अलगाव बेचौनी का पूरा नाटकीयता के साथ प्रस्तुत किया गया है। महाकवि अश्वघोष की काव्य कृति सौन्दरानन्द पर आधारित ना में जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्वंद्व के कारण गहराते पीड़ा बोध को उद्घाटित किया गया है जिस नाटककार पूरी तरह सफल हुआ है। संवाद-योजना, पात्रों की मनरू स्थिति के अनकल सफल, यथाथपरका वस्त और तीक्ष्ण है जिसके कारण नाटक की प्रभावान्विति सतत बनी रहती है। भाषा नाटक की मूल संवेदना के अनुसार भावों और विचारों को वहन करने वाली हैं। अभिनेयता की दृष्टि से यह सफल नाटक है जिसके कारण कई संस्थाओं के द्वारा इसका सफल मंचन किया जा चुका है। 'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा, सशक्त नाटक है। 'आषाद का एक दिन' यदि भावना में भावना का वरण की कहानी है तो 'लहरों के राजहंस' नारी के आकर्षण-विकर्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति हैं एक में समर्पित नारी का चित्रण है तो दूसरे में रूप पर गर्व करने वाली रानी की विविध मनः स्थितियों के संदों का आलेखन है। कालिदास अपार मानसिक संघषों से पीड़ित आधुनिक मानव का प्रतिरूप तो नन्द प्रवृत्ति में पिसकर छटपटाते हुए प्राणों को लेकर जीवन के चौराहे पर खड़ा है। इसमें नाटककार मोहन राकेश ने भौतिकता और अध्यात्मिकता के मध्य उलझे हुए व्यक्ति की चेतना को नन्द और सुन्दरी के द्वंद्व के माध्यम से मुखरित करने का प्रयास किया है।

आधे अधूरे

मोहन राकेश का यह अत्यंत ख्याति प्रसिद्ध और चर्चित नाटक है। आधुनिक मध्यम वर्गीय परिवार की विसंगतियों को यह नाटक यथार्थपरकता के साथ अद्घाटित करता है। पति-पत्नी के आपसी तनाव, परिवार के सदस्यों की घुटन, तनाव और बिखराव के रूप में पारिवारिक विघटन की समस्या को पूरी वास्तविकता के साथ यह नाटक सामने लाता है। अधिक आभावग्रस्तता और सुविधाओं की अकांक्षा, परिवेशगत दबाव और मानसिक तनाव में आधी-अधूरी जिन्दगी जीते पात्रों द्वारा पूर्णता पाने की लालसा में आपसी टकराहट नाटक की मूल संवेदना है। पत्नी सावित्री की कर्मठता तथा पारिवारिक जिम्मेदारी को अकेले उठाने के दर्द के साथ अपने महत्व का एहसास, पति महेन्द्रनाथ को निष्क्रियता जन्य निराशा और तनाव तथा पति के रूप में पत्नी की सम्पूर्ण पुरूष की अन्ततरू असफल तलाश और इसी बीच परिवार के अन्य सदस्यों का एक दूसरे से कटाव इस नाटक का केन्द्र बिन्दु है। वस्तुतरू यह नाटक मध्यवर्गीय परिवार की आकांक्षाओं, तृष्णाओं लगाव व तनाव की कहानी है जिसे 'एक स्तर पर स्त्री पुरूष के बीच के लगाव और तनाव का दस्तावेज' कहा गया है। रंगमंच की दृष्टि से यह सफल नाटक है। यह नाटक 'आषाढ़ का एकदिन' और लहरों के राजहंस की तुलना में भिन्न कोटि का नाटक है। अलोच्य नाटक में आज के मानव की अनियंत्रित एवं अंतहीन यंत्रणाओं के बीच नारी मुक्ति भावना, वैवाहिक संघर्षों की विडंबना, पुरूष के अधूरेपन तथा विघटनशील जीवन मूल्यों का प्रकर्ष है। समूचा नाटक घर की चार दीवारी के अन्दर के अधूरेपन की कथा व्यंजित करता है। 'आधे-अधूरे' में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय परिवार की मनोस्थितियों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है।

टिप्पणी

'आधे-अधूरे' के सभी चरित्र आधे अधूरे हैं। आधुनिक परिवेश में जी रहे यह पात्र कुंठा और संत्रास के शिकार हैं। महेन्द्रनाथ और सावित्री पति-पत्नी के अटूट रिश्ते में बंधे हैं, फिर भी अलगाव की विशद छाया उनके संबंध पर निरंतर बनी रहती है। पूर्णता की खोज में दौड़ रही स्त्री पर निरंतर चोटें खा रहा महेन्द्रनाथ, सावित्री से प्रेम करते हुए भी मानसिक तंगदिली में जी रहा है। यही तनाव, संशय और कुंठा इन दोनों की नियति बन गई है। सावित्री महेन्द्रनाथ को एक निठल्ला, बेकार और पराधीन पुरूष मानती है, जिसकी कोई अहमियत या माद्दा नहीं है। इसीलिए वह इसकी खोज अन्य स्थानों पर अन्य पुरूषों से करती रहती है। जबकि महेन्द्रनाथ भी स्वंय को बार-बार घिसने वाला रबर का एक टुकड़ा समझता है जिसकी परिवार के सदस्यों की दृष्टि में कोई अहमियत नहीं है। अपने अहं पर बार-बार कुठाराघात होने पर वह सावित्री को मारता-पीटता है जिससे परिवार में घृणा, उपेक्षा और तंगदिली की रूग्ण छाया बनी रहती है। आधुनिक दौर के पितृसत्तात्मक परिवेश में घर का आर्थिक बोझा उठाती हुई सावित्री जैसी भारतीय स्त्री की स्थिति का यथार्थ निरूपण मोहन राकेश ने इस नाटक में किया है। सावित्री 'आधे-अधूरे' नाटक का प्रमुख नारी-चरित्र एवं नाटक की 'नायिका' है। मध्यमवर्गीय स्त्री का प्रतीक जो अर्थाजन की खोज, आधुनिक स्त्री, पत्नी के रूप में, फैशन को अपनाने वाली आधुनिक महिला, कामकाजी स्त्री, अति महात्वाकांक्षी स्त्री, जीवन में अनन्त इच्छाओं को रखने वाली स्त्री। नाटक महेदनाथ की नौकरी पेशा पत्नी के रूप में चित्रित की गयी है।

महेन्द्रनाथ के साथ पिछले बाईस वर्षों से अपने वैवाहिक जीवन को ढो रही है। उसकी दो बेटियाँ कि और किन्नी एवं बेटा है अशोका घर की पूरी जिम्मेदारियाँ उसी पर हैं। कामचोर पति, मैग्जीन की कमी इकट्ठा करनेवाला निठल्ला लड़का, स्वंय के प्रेमी के साथ भाग जानेवाली स्वच्छंद बिन्नी और जिसी लड़की किन्नी से बना परिवार चलाते-चलाते तनाव और घुटन से तंग आ चुकी सावित्री का अंह उसे बारसक्त होने को प्रेरित करता रहता है नाटककार मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' नाटक की नायिका 'सावित्री द्वारा नारी की मुक्ति भावना, विघटनशील जीवनमूल्य वैवाहिक संबंधों की विडंबना आदि पर पर्याप्त प्रकार डाला है। यह नाटक स्वातंत्यतिर परिवर्तित सामाजिक परिवेश में एक परिवार के आपसी तनाव के बीच कर क्यों? और कैसे? के प्रश्नों का अपने ढंग से संश्लेषण है। खुद नाटककार उसके बारे में लिखते हैंचालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरूचिपूर्ण' सावित्री हँसते-खेलते जिंदगी जीना चाहती है, वह भी भरी-पूरी जिंदगी। उच्च वर्गीय औरतों की तरह जीवन में बहुत कुछ प्राप्त करना चाहती है। 'आधे-अधूरे' आधुनिक मध्यवर्गीय, 'शहरी परिवार की कहानी है। इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने को अधूरा महसूस करता है। हर सदस्य अपने को पूर्ण करने की चेष्टा करता है। पत्नी सावित्री पति के पास काम नहीं रहने की वजह से नौकरी करने घर से बाहर निकलती है। उसे तब पति में दायित्वबोध की कमी नजर आती है। उसे लगता है कि वह सबसे बेकार आदमी है। वह सम्पूर्ण मनुष्य नहीं है। बाहर निकलने पर सावित्री की मुलाकात चार लोगों से होती है। एक है धनी व्यक्ति, वह मित्र स्वभाव का है और सज्जन व्यक्ति है। दूसरा डिग्री धारी व्यक्ति शिवदत्त है जो सारे संसार में घूमता रहता है। वह एकनिष्ठ नहीं है। तीसरा सामाजिक व्यक्ति है, मनोज। वह सावित्री से दोस्ती लिए गांठता है पर उसकी बेटी से प्रेम विवाह करता है। और चौथा व्यक्ति एक व्यापारी है। वह चालाक और घटिया किस्म का आदमी है। चालीस वर्षीय सावित्री जिसके चेहरे पर अभी भी चमक बरकार है अपनी जिन्दगी के खालीपन को भरने के लिए एक सम्पूर्ण पुरूष की तलाश में रहती है। इस क्रम में वह इन पुरूषों के सम्पर्क में आती है। इनसे संबंध बनाकर भी उसे पूर्णता का अहसास नहीं होता। हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उसका उपयोग करता है।

विशेष साहित्यकार:
नाटककार मोहन राकेश

टिप्पणी

पैर तले जमीन

यह मोहन राकेश का अन्तिम नाटक है। जिसका खाका उन्होने अपने जीवन काल में पूरा कर दिया था। किन्तु इसे नाटक का आकार देने का कार्य उनके मित्र कमलेश्वरजी ने किया। पर इस बात का ध्यान रखा गया कि वह पूरी तरह से मोहन राकेश का ही नाटक रहे। उसमें किसी दूसरे के स्पर्श का आभास न हो। दो अकाविभाजित इस नाटक की सम्पूर्ण घटना एक ही स्थान पर घटती हैं। अपने मनोरंजन के लिये एक स्थान पर एकत्रित हुए लोगो के चेहरों से सन्निकट आती मौत से एक-एक कर के नकाब हटने लगते हैं। मुत्यु बार व्यक्ति के अन्दर तरह-तरह के भाव पैदा करता है। अतीत की स्मृतियां, रांग संबधों से वितृष्णा तथा अन किये गये अपराधों का तीव्र-बोध वस्तुत: यह नाटक मृत्यु बोध के त्रासद, पीडक भयानक क्षणों में अकला भय, निर्णय और बेबसी जैसे मनोभावों को यथार्थ शैली में नाटकीयता के साथ व्यक्त करता है। 'पैर तल जमीन' मोहन राकेश का अंतिम किंतु अधूरा नाटक है जिसे उनके आत्म मित्र कमलेश्वर ने राकेश के मृत्यु बाद परित किया। अनिता राकेश के शब्दों में श्पैर तले जमीन' को अपनी आँखे मंद जाने से वर्षों पहल राकेश ने लिखा था। जिस दिन धोखा देकर वे सदा के लिए चले गये थे तब भी टाइपरैटर पर इसी नाटक । एक पष्ठ, आधा टाइप किया, आधा खाली रह गया था। इस नाटक में राकेश ने शब्दों और नेपथ्य की श्वान मिले-जुले प्रभाव को रंगमंच पर एक नये प्रयोग के रूप में प्रस्तुत कर वर्तमान युग में व्यक्ति के सामाजिक ल्य-विघटन तथा मानवीय संबन्धों के खोखलापन को मूर्त किया है।

3.21 उपसंहार

मोहन राकेश जी की सृजनात्मक प्रवृत्तियों एवं कृतियों ने स्वतंत्र रूप से जीने को बाध्य किया। इन्होने मारक उपन्यास, कहानी, आलोचना, एकांकी जैसी सभी विधाओं पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ी। मोहन राकेश को प्रसादोत्तर युगीन प्रयोगशील नाटक साहित्य का प्रमुख स्तंभ माना जाता हैं इन्होंने हिन्दी साहित्य को एकांकी, नाटक, निबंध समीक्षा, यात्रा संस्मरण आदि पर विभिन्न कृतियां प्रदान की हैं जिनमें आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, अंडे के छिलके, आधे-अधूरे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मोहन राकेश के नाटक जब प्रकाशित हो रहे थे तब हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का वैसा रूप स्पष्ट नहीं था जैसा कि आज है। संविधान ने स्त्री-पुरूष समानता का अधिकार तो दे दिया था किन्तु 1956 में हिन्दू कोड बिल पारित होने के बाद ही स्त्रियों को वयस्क मताधिकार प्राप्त हुआ। कानूनी स्तर पर समानता मिलने पर भी सामाजिक स्तर पर नारी की स्थिति पिछड़ी हुई थी। जिसका प्रतिबिंब साठ के दशक की चर्चित कथाकार उषादेवी मित्रा के उपन्यासों में देखा जा सकता है। 1960 के बाद कृष्णा सोबती, शिवानी, उषा, प्रियंवदा जैसी कई नयी महिला कथाकार सामने आई जिन्होने शिक्षित, नौकरी पेशा और प्रणय संबंध में बंधी स्त्रियों की समस्याओं को अपने कथा-साहित्य में में प्रस्तुत किया। किन्तु सत्तर के दशक तक नारी का वह स्वतंत्र रूप साहित्य में नहीं दिखाई देता, जो नारी-विमर्श के जोर पकड़ने के पश्चात के साहित्य में दिखाई देता है। इस परिप्रेरक्ष्य में मोहन राकेश के नाटकों को देखा जा सकता हैं इसके नाटकों में मुख्य रूप से स्त्री-पुरुष संबंध और पुरूष अंह की समस्या का निरूपण किया गया है। अतरू मोहन राकेश के नाटकों में पुरुष अहं और यह अहं स्त्रियों की स्वतंत्रता, उनके अधिकारों में किस प्रकार की भूमिका निभाता है उसे स्त्रीवादी विमर्श के आइने में देखना रोचके विषय बन सकता है। मोहन राकेश द्वारा हिन्दी साहित्य की अनन्त सेवा की गई जिसके लिए वे हमेशा स्मरणीय रहेंगे तथा याद किए जाते रहेंगे। इनकी कृतियां हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि है।

टिप्पणी

3.22 प्रश्नबोध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'रंगमंच के बारे में मोहन राकेश की परिकल्पना की एक पृथक दृष्टि है।' इस विषय की समीक्षा कीजिए।
2. नाटक और रंगमंच का पारस्परिक क्या संबंध है?
3. विविध प्रस्तुतीकरण के आधार पर नाटककार मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' का मूल्यांकन कीजिए।
4. मोहन राकेश के नाटकों में दृश्यविधान किस प्रकार सफल हुआ है?
5. 'नाटक एक संवादात्मक, दृश्यात्मक सामूहिक कला है।' मोहन राकेश के नाटक लहरों के राजहंस के आधार पर इस विषय की समीक्षा कीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. मोहन राकेश ने कितने नाटकों की रचना की है?
2. नाटक को त्रि आयात्मक विधा क्यों कहा गया है?
3. राष्ट्रीय नाटय विद्यालय के निर्देशक इब्राहीम अल्काजी ने मोहन राकेश के किस नाटक को सर्वप्रथम मंच के लिए चुना?
4. मोहन राकेश ने अपने किस नाटक की भूमिका में लिखा है कि हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्युत नहीं है?
5. संगीत संयोजन और ध्वनि संयोजन में मोहन राकेश के नाटक कितने सफल रहे हैं?

♦♦♦♦♦

इकाई 4

मोहन राकेश के नाटक और शिल्पगत दृष्टिकोण

संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 इतिहास और मिथक
4.3 रंग निर्देश: रंगमंचीय नवीनता
4.4 नाट्य वस्तु और विन्यास शिल्प
4.5 चरित्र परिकल्पना और संरचना
4.6 रसानुभूति का स्वरूप
4.7 वस्तु संप्रेक्षण और रंगतंत्र पहचान
4.8 नाट्य भाषा के विविध पक्षों की पहचान
4.9 हरकत की भाषा
4.10 प्रेक्षक संदर्भ और नाट्य संरचना
4.11 नाटकीय संरचना
4.12 प्रश्नबोध

टिप्पणी

4.1 प्रस्तावना

इतिहास और मिथक-इतिहास और मिथक को लेकर यहाँ तरह-तरह के तर्क दिये जाते हैं। यूं तो आचायों ने मिथक की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार इतिहास और मिथक में काई मूल अंतर नहीं होता, क्योंकि इतिहास भी सत्य पर आधारित होता है और मिथक भी। अंग्रेजी के समीक्षक मिर्सिया इलियाडे ने अपनी पुस्तक मिथ अण्ड रियेलिटि में जो कहा है उसका आशय इस प्रकार है-"Myth means a true story and beyond that a story that is most precious possession because it is sacred, exemplary significant."

आशय यह है कि-श्मिथ एक ऐसी सत्यकथा है जो अत्यन्त मूल्यवान है, क्योंकि सत्य होने के साथ पवित्रता की भावना उसेक साथ जुड़ी है। आगे चलकर वे कहते हैं - "इतिहास और मिथक में मुख्य अंतर यही है कि इतिहास घटनाओं के यथातथ्य वर्णन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, तो मिथक प्रमाणिकता के बंधनों से छूटकर अपने व्यापक अर्थ में जाना जाता है। अर्थात अतीत के साथ वर्तमान जोड़ने की गुंजाइश उसमें होती है।

4.2 इतिहास और मिथक

निराला के बाद हिन्दी साहित्य में जिस आदमी के चारों ओर सबसे ज्यादा मिथ बुनी वह था मोहन राकेश। मोहन राकेश का युग ही कुछ ऐसा था कि वे उनके समकालीन नाटककार मिथक से अधिक जुड़े इतिहास से कम। स्वंय मोहन राकेश ने 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में कहा है कि 'साहित्य इतिहास के समय से बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार कराता है। युग से युग को अलग नहीं करता कई कई युगों को एक साथ जोड़ देता है।.....साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं में जोदने वाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही नये रूप से अलग इतिहास का निर्माण करती है। उस या के नाटककारों को भी मिथक की तरह विस्तार देकर उसका नवीन और समकालीन संदर्भो में प्रयोग किया समकालीन जीवन से उन्होने वस्तु का चयन कर वर्तमान जीवन को वाणी, दी, और युगीन संघर्ष का चित्रण किया। अमरीकी समीक्षक एलन एस डाउनर कहते हैं - 'हर महान नाट्यकृति के पीछे मिथक आवश्यक रूप में वर्तमान रहता है। मिथक का जितना महत्व सामाजिक जीवन में है उतना ही साहित्यिक संदर्भो में भी। यहाँ तक कि वे आगे कहते हैं - 'जिस राष्ट्र के इतिहास में मिथक नहीं होता वहाँ उसे गढना होता है ।" विदेशों के लिए यह बात सही हो सकती है पर भारतीय परंपरा में ढेर सारे मिथकों का भंडार उपलब्ध है। "विदेशे के लिए बात सही हो सकती है पर भारतीय परंपरा में ढेर सारे मिथकों का भंडार उपलब्ध है। 'आषाढ का एक दिन' के कालिदास का ऐतिहासिक होना आवश्यक नहीं यह लेखक ने पहले ही स्वीकार किया। स्पष्ट है कि कालिदास मिथक से जन्मा कालिदास है, यही कारण है कि ऐतिहासिक चौखट में वह बँधा नही, उसके व्यक्तितत्व में विस्तार अधिक है, क्योंकि वह 'आज' के आदमी से जुडा कालिदास है। राकश ने उसमें आज के व्यक्ति का अंतर्द्वद्व देखा है। उन्ही के शब्दों मेंदृ 'व्यक्ति कालिदरास को उस अंतर्द्वद्व से गुजरना पड़ा या नही, यह बात गौण है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उसमें में गुजरना पड़ा है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे है।' यही कारण है कि यह मिथकिय पात्र अधिक है, हम भी आज उसमें से गुजर रहे हैं। यही कारण है कि यह मिथकिय पात्र अधिक है, ऐतिहासिक कम। उसके व्यक्तित्व में आज के जीवन का संघर्ष समाहित हो गया है। मोहन राकेश के आगे है कि-श्आषाढ का एक दिन' का कालिदास दुर्बल नहीं, कोमल, अस्थिर और अंतर्द्वद्व से पीडित है। इसमें पराजित व्यक्ति... टूटा हुवा कालिदास नहीं, अपने में संयोजित विलोम है।....क्योंकि विजय और पराजय के संकेत वे दोनों स्वंय नहीं है, संकेत है मल्लिका जो कालिदास की आस्था का विस्तारित रूप है।

टिप्पणी

तिलकराज शर्मा ने 'आषाढ़' की रचना का मूलाधार 'मेघदूत' को बताया और इसे आधुनिक मेघदूत की संज्ञा दी है। कालिदास ने अपने ही हृदय की वाणी को 'मेघदूत' के माध्यम से व्यक्त किया होगा। आषाढ का कालिदास अपनी मल्लिका से कहता है- 'मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरहविमर्दिता यक्षिणी तुम हो। लहरों के राजहंस की भूमिका में तो उन्होने यहाँ तक कहा कि-मेघदूत पढ़ते हुए मुझे लगा करता था कि वह कहानी निर्वासित यक्ष की उतनी नहीं जितनी स्वंय अपनी आत्मा से निर्वासित उस कवि की, जिसने अपनी ही एक अपराध अनुभूति को इस परिकल्पना में ढाल दिया है।' उस अपराध अनुभूति के संबंध में सोचते हुए जो तीन चरित्र मुझे मिले वे थेकृमल्लिका, अंबिका विलोम, कालिदास का चरित्र तो केन्द्र में था ही। इनके अतिरिक्त शेष सब पूरक चरित्र हैं, जिनकी सृष्टि नाटक लिखते समय हुई है। मोहन राकेश ने भले ही 'आषाढ का एक दिन' में अन्य रचनाओं के प्रभाव का उल्लेख न किया हो। पर डॉ. सुन्दरलाल कथुरिया जैसे विद्वानों ने इसका संकेत यथास्थान दिया है। हरिणशावक के प्रसंग को भी विद्वान 'रघुवंश' के द्वितीय सर्ग में आये नंदिनी की रक्षाप्रसंग से जोड़ते हैं। इस प्रकार और भी कई संदर्भ खींच-तानकर जोडे जा सकते हैं। निष्कर्ष यह कि 'आषाढ़ का एक दिन' के मिथक का आधार एक ओर इतिहास हो सकता है तो दूसरी ओर किंवदंतियाँ, पर कालिदास की कृतियों का आधार निश्चित ही इसमें रहा है।

4.3 रंग निर्देश: रंगमंचीय नवीनता

हिन्दी नाटक और रंगमंच की बात स्वतंत्रता के बाद से बराबर चर्चित रही है। पहले से साहित्यिक नाटक और रंगमंचीय नाटक को भी अलग-अलग दृष्टियों से देखा जाता रहा। धीरे धीरे यह स्थूल अंतर मिटता हुवा दिखायी दिया। प्रसाद के नाटक कभी विशुद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा आदि को लेकर लिखे गये थे, प्रसाद ने स्वंय नाटक और रंगमंच के संबंध में कुछ भिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किये। उन्होने लिखा - रंगमंच के संबंध में यह भारी अम रहा कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाया प्रयल तो यही होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो जो व्यावहारिक है।।

वास्तव में प्रसाद का यह दृष्टिकोण साहित्यिकता की अधिक वकालत करता है। पर नाटक रंगमंच की अपेक्षाओं को ही पूरा नहीं करेगा तो सही माने में वह सिक्के का एक पहलू प्रस्तुत करेगा, क्योंकि नाटक की भाया और लेखक का दृष्टिकोण रंगमंच पर ही साकार रूप ले सकता है। यह ठीक है कि नाटक एक साहित्यिक विधा है पर इस विधा का सीधा संबंध दर्शक, रंगशाला और रंगमंच से है। इतिहास साक्षी है कि हमारे यहाँ प्रारंभ से ही नाटक के साथ रंगमंच की परंपरा जीवित रही है। संस्कृत के आचार्यों ने भी रंगसज्जा, दश्य, वेशभूषा आदि का विस्तार से विवेचन किया है। कालिदास हो या भवभूति इनके नाटक रंगमंच से जुड़े रहे और यथा समय इनका मंचन और अभिनय होता रहा है। पाश्चात्य समीक्षक हडसन ने भी नाटक को 'सामूहिक कला' का नाम दिया है, केवल साहित्य नहीं। उन्ही के शब्दों में- 'नाटक का शुद्ध साहित्य नहीं है, वह एक सामूहिक कला है जिनमें एक साहित्यिक तत्त्व, तथा दृश्यसज्जा आदि संबंधी घुली मिली रहती है।' पर स्वतंत्रता के बाद संस्कृति और कलाओं के विकास पर जितना ध्यान देना चाहिए था उतना नहीं दिया गया। हमारी लोकनाट्य परंपरा को पूरी तरह से नहीं जाना-समझा गया और रंगमंच एवं रंगचेतना की बाते होने लगी। बहुत दिनों तक हिन्दी जगत में यही भ्रम बना रहा कि हिन्दी में रंगमंच के लायक नाटक नहीं लिखे गए। धीरे-धीरे अहिन्दीभाषी नाटकों के अनुवाद रंगमंच पर खेले जाने लगे और हिन्दी रंगमंच का नाम नये रूप में चर्चित होने लगा। नाटकों में निहित संघर्ष, चारित्रिक परिकल्पना, समसामयिक जीवन का चित्रण, आधुनिक संवेदना या जीवन की जटिलता आदि कई प्रश्न नाटक के साथ-साथ रंगमंच से जोडे जाने लगे। पर रंगमंच का सही स्वरूप निश्चित नहीं हो सका। विरासत में इसे जो रंग परंपराएँ मिली वह

टिप्पणी

मूलतरू संस्कृत नाट्य परंपरा थी। संस्कृत और लोकनाट्क परंपरा की बहुतसी समान बातें कुछ बदले रूप में ही क्यों न हों आज के रंगमंच से जुड़ गयी है। पाश्चात्य रोक्सपीरियन रंगमंच, यथार्थवादी रंगमंच यहाँ तक कि विसंगत या असंगत परंपरा का प्रभाव भी हिन्दी रंगमंच के साथ जुड़ गया है और इस प्रकार आज के रंगमंच के साथ रंगभवन का मंच और रंगशाला का विस्तार भी देखा जाने लगा है, और इन्हीं के साथ दो मूल तत्त्वों की कल्पना की जाने लगी है। जिनमें पहला है अभिनेता और दूसरा है-दर्शक सच तो यह है कि अभिनेता के कारण ही रंगमंच का जन्म होता है। जैसे रंगमंच की सीमाएँ लचीली होती गई वैसे अभिनेता और दर्शक के सबंध की धारणा भी बदलती जा रही है। इस प्रकार परिवर्तित रंगमंच की कुछ नाट्य रचनाएँ हिन्दी में आयी जिनमें उपेंद्रनाथ अश्क कीष्भंवर', जगदीशचंद्र माथुर का 'कोणार्क', 'शारदिया', 'पहला राजा' जैसी नाट्य रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। परन्तु हिन्दी नाटक और रंगमंच के सृजनात्मक संबंधों का प्रारंभ मोहन राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' और धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' नाटक से माना जा सकता है। 'कोण्सार्क' 1951 की कृति है तो 'अंधा युग' 1954 की दूसरी ओर 'आषाढ़ का एक दिन' 1958 की कृति है तो लक्ष्मीनारायण लाल की 'मादा कैक्टस' 1959 की कृति है। इस प्रकार छटे दशक में विकसित होनेवाले ये प्रमुख नाटक हैं। जगदीशचंद्र माथुर और लक्ष्मीनारायण लाल इन दोनों को हिन्दी नाटक और रंगमंच की एक नवीन परंपरा को जन्म देने का श्रेय दिया जाय, तो इस परंपरा की अगली सीढ़ी और उसमें नवीन आयाम जोडने का श्रेय मोहन राकेश को दिया जा सकता है।

मोहन राकेश के प्रसाद जी के संबंध में कहा है कि "प्रसाद जी का रंगमंच के साथ सम्पर्क नहीं रहा, शायद इसलिए वे रंगमंच की सीमाओं से परिचित नहीं हो सके। वे आगे कहते है" प्रसाद जी के नाटकों की प्रांजल भाषा, भाव गंभीरता और साहित्यिक उपलिब्धि का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा की रंगमंच के साथ नाटक की चेतना ही लुप्त हो गयी।' इस रात से पूरी तरह सम्मत होना संभव नहीं है। भले ही प्रसाद के नाटकों का सीधा संबंध रंगमंच के साथ नही था, परन्तु अनके नाटक भारतीय साहित्य एक संस्कृति की एक महत्वपूर्ण कडी है। उनकी नाटकों की भाषा की तुलना शेक्सपीरीयन भाषा से की जाती है, उनकी भाव गंभीरता पाठक और दर्शक पर एक अमिट प्रभाव डालती है। और उसकी साहित्यिक उपलब्धि (जो स्वंय मोहन को स्वीकार्य है) युगों तक भुलायी नहीं जा सकती। राकेश ने इसी लेख में आगे चलकर सांस्कृतिक दृष्टि के प्रश्न को उठाया है। यदि बारिकी से देखा जाय तो प्रसाद के नाटको का मूल्यांकन करते समय भी सांस्कृतिक दृष्टि को भुलाया नहीं जा सकता। फिर भी रंगमंच के संबंध में कहते हुए मोहन राकेश ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये हैं। वे कहते हैं - 'यदि नाटक जीवन के द्वंद्वों का चित्रण करेगा तो रंगमंच को भी जीवन की परिस्थितियों के अनुकूल ढलना होगा। हिन्दी रंगमंच की हिन्दी भाषी प्रदेश की सास्कृतिक पर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतीक बनना होगा। हमारा रंगों और राशियों का विवेक नये रंगमंच की सज्जा को बल देगा। इस प्रकार पाश्चात्य रंगमंच से भिन्न हिन्दी रंगमंच की बात उठाकर राकेश ने रंगमंच को एक नयी दृष्टि प्रदान की है।

'आषाढ़ का एक दिन' के 'दो शब्द' (भूमिका) में राकेश ने हिन्दी रंगमंच के स्वरूप के संबंध में उन्होंने यही बात उठायी है। हिन्दी भाषी प्रदेश की सांस्कृतियों एवं आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त करना होगा। आगे वे कहते हैं-श्हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए हमारे संवेदों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूपविध ान नाटकीय प्रयोगों के अभ्यंतर से जन्म लेना और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों उसका विकास हो।" (बसंत-1958) पाश्चात्य रंगमंच की जिस भिन्नता की बात राकेश ने की है उसका आधार शब्द और दृश्य संबंधी है। राकेश को पाश्चात्य रंगमंच का अनुकरण इसीलिए नहीं करना था,

टिप्पणी

क्योंकि वहाँ चौधिया जानेवाली आँखों के योग्य वातावरण होता था। जब कि उन्होने माना कि रंगमंच को सादगी और प्रतीकात्मकता से पूर्ण होना चाहिए। भारतीय रंगमंच शब्द की शक्ति पर निर्भर है। यही कारण है कि नाटककार की लेखनी से जन्में शब्दों का महत्त्व अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। सच तो यह है कि रंगदृष्टि के बिना कोई नाटककार किसी कृति की रचना कैसे कर सकता है? राकेश ने रंगमंच के संबंध में मौलिख रूप से सोचने के लिए हमे विवश किया है, और इस प्रकार रंग तत्वों का समावेश उनमें निश्चित ही देखा जा सकता है।

राकेश के नाटकों को रंगमंच संबंधी प्राचीन रूढियों के आधार पर देखना उचित नहीं, क्योंकि रंगमंच वहाँ नाटककार की नाटकीय कल्पना द्वारा निर्मित हुआ है। 'आषाढ का एक दिन' हो या 'लहरों का राजहंस उन्होने दृश्यबंध प्रकाश और ध्वनि के उतार-चढ़ाव के साथ मंचसज्जा तथा लम्बे-लम्बे रंगनिर्देशों को भी महत्त्व दिया है। यू तो कोई नाटक प्रकाश तथा ध्वनि प्रभावों से किसी न किसी रूप से प्रभावित होता ही है। पर राकेश ने इसके माध्यम से दर्शक दीर्घा की मानसिकता को बदलने का प्रयत्न किया है। यह सच है कि, यह बदलाव केवल प्रकाश और ध्वनि से ही संभव नहीं होता प्रयुक्त शब्दों में जो अर्थशक्ति छिपी होती है और अभिनेता जिस विशिष्ट अभिनय शक्तिद्वारा अपने संवादों को प्रस्तुत करता है, यह अधिक प्रभावशाली होता है। फिर भी मंच की दृष्टि से प्रकाश और ध्वनि प्रभाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। राकेश के रंगनिर्देश कहीं कुछ लंब हो गये हैं, पर हर कोई जानता है कि जब कोई नई वस्तु की प्रतिष्ठा की जाती है तो कुछ संकेत, निर्देश (कम-अधिक प्रमाण में) दिये जाते हैं। यह बात और है कि निर्देशकीय लंबी टिप्पणियों की सराहना नहीं की जा सकती क्योंकि नाट्यवस्तु को, उसके समग्रप्रभाव को, रंगमंच पर कैसे प्रभावित, जाय, यह एक निर्देशक मोहन राकेश के नाटक और शिल्पगत दृष्टिकोणनिभाँति जानता है। यही कारण है कि निर्देशक की स्वतंत्रता पर अधिक बंधन नहीं लगाये जा सकते। साथ ही यह भी हमे स्वीकार करना होगा कि उनके रंगनिर्देश, निर्देशक की सुविधा भी बन जाते है, सुविधा सहायक भी होते है, तथा नाटक का सजीव बिम्ब भी प्रस्तुत करते है। 'आषाढ़ का एक दिन' के प्रत्येक अंक के प्रारंभ में दिये गए वस्तुओं और पात्रों संबंधी रंग संकेत इसके प्रमाण है। 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' के गनिर्देश भी उसे मंचित करने में सहायता प्रदान करते है। उल्लेखनीय है, कि राकेश ने दृश्यविधान और संचसज्जा के जो संकेत दिये है, वे नाटक की संवेदना से जुड़े है। इतना ही नहीं, उनके साधारण पात्र भी नाटकीय संवेदना के अंग लगते है। यहाँ तक कि मंच की कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं लगती, बल्कि उसे मंच की एक आवश्यकता कहा जा सकता है।

राकेश का कथ्य प्रेक्षक की पीड़ा का अनुभव तो कराता ही है मानव द्वंद्व और मानव नियति का चित्र बडी सक्ष्मता से अंकित कर देता है। साथ ही लेखक की अनुभूति या अनुभूति की प्रमाणिकता उनके नाटकों में बराबर देखी जा सकती हैं। यह रंगमंच को दी हुई उनकी एक अतिरिक्त देन हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' में मेघों के बदलते रंग मल्लिका के मन में एक काव्यधारा को जन्म दे देते है। उन मेघों द्वारा जो वातावरण की निर्मित होती है, वह नाटक के केन्द्र में बस जाती है और मल्लिका हो या कालिदास अथवा अंबिका हो या विलोम सबको अपने ढंग से प्रभावित करती है। तभी लगता है कि राकेश वास्तव में 'रंगमंच के कलाकार' हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' हो या 'लहरों के राजहंस' इन दोनों नाटकों में उनकी अनुभूति उभरकर आयी है। जबकि आधे-अधूरे में यह त्रासद वातावरण को लिए हुए है। 'लहरों के राजहंस' में प्रारंभ से ही कामोत्सव के आयोजन का चित्रण हुआ है। दूसरी ओर श्यामांग का प्रलाप, नेपथ्य में बौद्ध भिक्षुओं के स्वर का सुनाई देना एक ओर सुंदरी का प्रसाधन तो दूसरी ओर नंद का सिर मुंडाकर घर लौटना यह सब विशिष्ट भावों को जन्म देते हैं और दर्शक इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अनुभूति की यह प्रधानता और संवेदना का स्पर्श यह राकेश की लेखनी की अपनी विशेषता है। जहाँ तक 'आधे अधूरे' का प्रश्न है- एक त्रासद वातावरण के साथ नाटककार

टिप्पणी

की अनुभूति अपनी जीवंतता का परिचय देती है। नाटक में चाय के झूठे बर्तन, टूटे-फटे फर्नीचर, धूलभरी फाईलें आदि का चित्रण कर एक वातावरण की सृष्टि की है, जो रंगशिल्प के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दूसरी ओर 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका और विलोम तथा अंबिका ये पात्र कुछ ऐसी विचित्रताओं के साथ उभरकर आते है, कि उनके रंग यथार्थ पर उतर आते हैं। इस प्रकार अनुभूति के साथ-साथ एक प्रतीकात्मक वातावरण की सृष्टि भी होती है।

'आषाढ का एक दिन' में काल का विस्तार अवश्य है पर मेघों का माध्यम सारे दृश्यों को एक सूत्र में बाँध देता है। 'लहरों के राजहंस' में नंद के अंतर्द्वद्वं का अनुभव दर्शक करता ही है जब कि 'उसका द्वंद्व मंच के बाहर घटित हुआ है, और मंच पर केवल उसकी रिपोर्टिगं 'आषाढ़ का एक दिन' की वस्तु में उन्मुक्त वातावरण आवश्यक था। अत; नाटककार ने उसे वैसा संस्पर्श प्रदान किया। 'लहरों के राजहंस' के विशिष्ट आयामों को देखकर लगता है कि ये 'मुक्त रंगपंच पर कही बिखर तो नहीं जायेगा। परन्तु इसके सफल मंचन ने हमारा यह भ्रम भी दूर कर दिया। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि 'आधे अधूरे' का एक कमरा भी मुक्त रंगमंच पर सारी विविधताओं को ग्रहण करता है। उनमें शब्दतत्त्व की प्रधानता के कारण ही यह संभव हो सका है यह कहने में हमें संकोच नहीं।

यह कहा जाता है कि 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक भले ही कई नवीनताओं को लेकर आया परन्तु रूप के स्तर पर कोई क्रांतिकारी परिवर्तन वह नहीं ला सका। हमने यथास्थान कहा है कि राकेश जिस युग में जी रहे थे, वही उनके दिल और दिमाग में छा चुका था। युग की पीड़ा, संत्रास, मानसिक तनाव यह सब 'पाश्चात्य यथार्थवादी रंगमंच की देन' भी कही जाती है। पर उन्हें भारतीय रंगमंच की सीमाओं का ज्ञान था। वे रंगमंच की दृष्टि से नवीन प्रयोग करना चाहते थे और इस दिशा में उन्हें आशातीत सफलता मिली। स्वय किया है कि- 'हिन्दी रंगमंच के लिए प्रयोग की दिशा रंगमंच के शब्द और मानवपक्ष को सा है.... अर्थात न्यूनतम उपकरणों के साथ संश्लिष्ट प्रयोग कर सकने की है। संभवतरू यही कारण मुख्य कथा के साथ उपकथाओं की आवश्यकता महसूस नहीं की और पात्रों का जमघट भी दिया। प्रसादयग में एक एक अंक के पाँच,छः, सात-सात दृश्य हुवा करते थे। 'आषाढ का एक दिन को एक ही दश्य प्रस्तुत किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि कार्य-व्यापार में बाधा उत्पन्न हुई हो। हमें लगता है कि न्यूनतम उपकरणों की बात उन्होंने कही ही नहीं, कृति के द्वारा निभायी भी। 'आषाढ का निज के पहले अंक में दीवारों पर शंख और कमल के जो चित्र हैं वे ही अगले अंको में हैं पर समय के सा उसके रंग फीके पड़ने लगे हैं गेरू के रंग की स्वाभाविकता और उसके रंग उड़ने की अनिवार्यता को राकेश मानों मनुष्य के रंग उड़ जाने की नियति से जोड़ दिया है। कालिदास और मल्लिका के जीवन की टटना इससे अधिक प्रतीकात्मक चित्र और क्या हो सकता है? यही नहीं पश्चिमी नाट्य समीक्षकों ने जिस संघर्ष की नाटक का 'प्राणतत्त्व' कहा वह संघर्ष तीनों अंको में क्रमशरू उभरता ही गया है।

परिणामतरू जिसे हम नाटकं तनाव की संज्ञा देते हैं कहीं भी कमजोर तो नहीं बल्कि हर अंक के साथ और अधिक बलिष्ठ होती है। बावजूद इसक यह नाटक पश्चिम के किसी 'ड्राईंग रूम में खेला जानेवाला नाटक नहीं है। इसका परिवेश भारतीय संस्कृति से जुड़ा एक छोटा सा ग्राम- प्रांत है। बीच में कुछ समय के लिए वह अवश्य दरबारी परिवेश से जुड़ गया है, पर वहाँ भी जीवन के यथार्थ को नहीं भुलाया गया। यही कारण है कि नेमिचंद्र जैन ने नाटयरूप की दृष्टि से 'आषाढ़ का एक दिन' को सुगठित यथार्थवादी नाटक कहा है। यही नहीं उन्होने 'शायद' कहकर इसे हिन्दी का पहला 'यथार्थवादी नाटक' भी माना है। मोहन राकेश ने नाट्यसृजन में एक विशिष्ट ढंग अपनाया। उन्होंने इतिहास से कुछ महत्त्वपूर्ण पात्र चुने और कल्पना की कूची से उसे नवीन आकाश प्रदान किया। ऐतिहासिक घटनाओं

टिप्पणी

को भी उन्होने अपने कलेवर से बदल दिया। इससे हुआ यह कि पात्र तो अतीत से जुड़ गए पर वे पात्र आधुनिक जीवन के संत्रास और संघर्ष की जिंदगी जी रहे थे। अतरू युगीन समस्याओं और द्वंद्व पूर्ण मानसिकताओं के वे शिकार बने। यही कारण है की उनके ऐतिहासिक पात्रों ने जो अपने पूर्वकाल में जिया था वह वर्तमान काल में राकेश की कलम के कारण पूरी तरह से बदलकर सामने आया। यूं तो उनके तीनों नाटक 'आषाढ का एक दिन' 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे' अत्यंत महत्वपूर्ण हैं और कमोबेश समकालीन संदर्भो से जुड़े हैं। यह हिन्दी नाटक के क्षेत्र की अपने आप में एक उपलब्धि है।

संवाद सौष्ठव - शब्द की शक्ति के संबध में काव्यशास्त्रियोंने बहुत कुछ रखा है। इसीलिए इस पर अधिक कहने की आवश्यकता नही। पर इतना अवश्य होगा कि सार्थक शब्द ही विशिष्ट भाषा को जन्म दत और उसी भाषा से संवादों का सृजन हैं। वे संवाद नाट्यस्थिति के अनुरूप यदि नहीं लिखे गए तो निष्प्राण पड़ते हैं। इसीलिए संवादों की नाट्यस्थिति, नाटयदृश्य और उसे विशिष्ट अर्थ का ध्यान रखकर प्रस्तुत कर होता है। ये संवाद विशिष्ट साँचे में ढलकर एक नवीन अर्थ प्रदान करते हैं। अधूरे वाक्य या अधूरे सवार नाटकीय वातावरण के संबध में कुछ कह जाते हैं। (श्आषाढ का एक दिन' मे मल्लिका के संवाद लम्ब अब हैं पर वे भावनाओं से पूर्ण हैं। उसमें एक विशिष्ट व्यक्तित्व की छाप दिखायी देती है। जबकि आबका वाक्यों में शुष्कता है, संवाद भी सपाट हैं, पर सब परिस्थितिजन्य है।

नाट्यशिल्प - कोई भी संवेदनशील कलाकार अपने युग और युगीन परम्परा से हटकर लिखना सकता। समकालीन गतिविधियों का प्रभाव इसपर पड़ता ही है। समकालीन घटनाओं, गतिविधियों की सफलत को रचना में वाणी देने का अर्थ यह नहीं कि अपने समकालीन साहित्य का अनुकरण करें, अपितु इसका अर्थ यह हैं कि समकालीन साहित्यिकों की उपलब्धियों से प्रेरित होकर जीवन के यथार्थ को अपनी रचना का विषय मोहन राकेश स्वंय बहुत अध्ययनशील थे। पिता की साहित्यिक रूचि एवं तत्कालीन साहित्यिकों से वे ही प्रभावित थे, अतरू उनका साहित्य 'कोरी कल्पना' नहीं अपितु उनका 'भोगा हुवा यथार्थ' है। उन्होंने स्वय लिखा भी है कि- "एक कलाकार के लिए केवल दूसरे की लगन और निष्ठा अनुकरणीय हो सकती है, दूसरों की उपलब्धियाँ प्रेरणा दे सकती है, परन्तु किसी दूसरे की उपलब्धियाँ लिए अनुकरणीय हो इससे बड़ी हीनता की बात उसके लिए क्या हो सकती है।' यो कोई भी रचना अपने आप नहीं बनती उसके लिए कोई न कोई पेरणा अवश्य होती है। मानसशास्त्र की दृष्टि से प्रयत्न प्रमाद के सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति प्रेरित होकर कुछ अध्ययन करता है और फिर सृजन होता है। किसी से प्रेरणा पाकर हम अपने समय की हर गतिविधी को वाणी दे सकते हैं। अनुकरण से वह अपनी प्रभावशाली नहीं हो सकती। इसीलिए हर कलाकार को सजग रह, अपने परिवेश को उजागर करने की क्षमता रखनी चाहिए।

साहित्य का सृजन बीते के कल और आनेवाले कल बीच 'आज' के चित्रण का आधार होता है। लेखक ने लिखा भी है कि - 'आज से संबद्ध होने का केवल एक ही अर्थ है और वह है आनेवाले कल की दिशा में देखते हुए आज की दहलीज छोड़ने का प्रयत्न। इसी से आज के जीवन की सर्जनात्मक संभावनाओं को पहचाना और समझा जा सकता है। अन्यथा जितने बड़े अंतराल का अनुभव आज होता है, आने वाले कल का अंतराल उससे और बड़ा होगा और यह बढ़ती हुई खाई धीरे-धीरे आज की पीढ़ी को सर्जनात्मक के डार्क से ही बिलकुल अलग देगी। आज से संबद्ध होने का अर्थ परंपरा से हटकर लिखना नहीं, या परंपरा को त्याग देना भी नहीं होता। परंपरा से तो सर्जनशील कलाकार प्रेरित होकर लिखता है, भले ही वह विरोध करे-पर यही उसकी शक्ति होती है। मोहन राकेश ने स्वीकार किया कि- श्हर नया आंदोलन परंपरा से विद्रोह करके भी वास्तव में उसका विकास करता है। कोई

टिप्पणी

साहित्यकार अपने युग की परम्परा परिवेश के प्रति तटस्थ नहीं रह सकताश्इस तरह अलग होने के साथ-साथ सहभागी होना भी उसके लिए अनिवार्य हो जाता है, वास्तव में अपने अलगाव की रक्षा भी वह सहभागी होकर कर सकता है।

मोहन राकेश की प्रथम उपलब्धि एक लेखक और चिंतन के रूप में वहाँ उभर कर आती है जहाँ वे नाटक के कथ्य को सर्वथा नवीन दृष्टि से देखते हैं। उनके दो प्रमुख नाटक ऐतिहासिक विषयों से सम्बद्ध हैं।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की ऐतिहासिकता को लेकर काफी विवाद रहा। आलोचकों ने प्राय: उनसे प्रश्न पूछा कि उन्होंने युगीन कथ्य को लेकर नाटय क्यों नहीं लिखे किंतु इस सन्दर्भ में उनका कहना था कि मुझे इस बात का विचार नहीं मैंने समसामयिक विषयों के अतिरिक्त भी कुछ लिखा है। वास्तव में वस्तुएं और घटनाएं समसामयिक नहीं होती। समसामयिक तो वह दृष्टि होती है जिससे हम उन्हें देखते हैं। राकेश ने इस विचार को काफी स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि कोई चीज अपने विषय के कारण आधुनिक नहीं होती वरन् जिस ढंग स उस विषय को व्यवस्त किया जाता है उससे होती है। इस प्रकार नाटक का अर्थ ही आधुनिकता का आधार बनता है।

नाटक के ऐतिहासिक परिवेश और चिंतन को लेकर राकेश का चिंतन बिल्कुल मौलिक ऐतिहासिक नाटकों में कथानक की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता का रचनात्मक दृष्टि से कोई अर्थ नहीं है। हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों के कथानकों की प्रामाणिकता पर आग्रह रहता है और तभी हिन्दी के अधि कांशनाटक इतिहास की पाठ्य पुस्तकों का नाटकी कृत रूप लगते हैं। विभिन्न युगों मे जब भी श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई हैं तब नाटककारों ने प्राचीन कथानकों को नई दृष्टि से देखा है और उनकी नई अर्थ व्यंजनाएं दी है।

मोहन राकेश की लगभग सभी कहानियां ,उपन्यास और नाटक भी इसके प्रमाण हैं कि मनुष्य और जीवन यथार्थ को उसकी सामाजिक परिस्थितियों के परिपार्श्व में परखने का आग्रह मोहन राकेश में बराबर रहा. भले ही उनका रचना क्षेत्र व्यापक न हो। एक प्रकार की आयडियालॉजी राकेश की प्रारम्भिक कहानियों में जरूर है जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। जीवन के बदलते मान-मूल्यों ने राकेश को व्यापक यथार्थ दृष्टि दी है। राकेश के लिए साहित्य में यथार्थ कोई नया प्रकरण नहीं है वह जड़ भी नहीं है, गतिशील यथार्थ है जो बदलता रहता है समय के साथ-साथ इसलिए यथार्थ को पकड़ने के लिए अनुभव की परिधि को फैलाना भी जरूरी है। कृति के लिए अनुभव की सर्वोपरि महत्ता को अज्ञेय की तरह राकेश भी मानते हैं। यथार्थ की प्रतिक्रिया से ही अनभूति पैदा होती है। राकेश में यथार्थ की परख जितनी गहरी होती गयी है उसकी रचना दृष्टि में उतनी ही अधिक प्रामाणिकता भी आती गयी है। यथार्थ की इस पकड़ और प्रामाणिकता के कारण क्रमश: उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में भी एक परिवर्तन आता गया है। 'आषाढ़ का एक दिन' से लेकर छतरिया तक यह रचना दृष्टि स्पष्ट लक्षित होती है।

उन्होंने धीरे-धीरे यथार्थ के चित्रण या परिस्थितियों के चित्रण के आधार पर केवल बाह्य परिवेश और वातावरण को ही मूर्त नहीं करना चाहा बल्कि उस समाज या व्यवस्था में रहने वाले व्यक्ति के संघर्ष को, घुटन को उसके निरन्तर बदलते जाते दृष्टिकोण को अधिक चित्रित किया। उनके सभी नाटक बल्कि पूरा साहित्य इसी अन्तर्निहित यथार्थ का सांकेतिक चित्र प्रस्तुत करता है। राकेश के सारे कथा साहित्य और नाटकों में प्रथम चीज है अनुभव जिसका विस्तार होता गया है। राकेश को भी सूक्ष्म अनुभूतियों, संवेदानाओं का साहित्यकार कहना उचित होगा। समकालीन जीवन के स्वर उनके साहित्य में सुने जा सकते हैं राकेश के साहित्य को गहराई से पहचानने के लिए संभव है कि हम उसकी रचनादृष्टि को

टिप्पणी

समझे। अनुभव और अन्तर्निहित यथार्थ उनके लिए जितना मुख्य है। रचनात्मक दृष्टि से कलात्मक या रूपाकात्मक प्रयोग उतने ही गौण हैं। दूसरी बात यह है कि कला, शिल्प, अभिव्यक्ति को वह अनुभूति से नहीं मानते। प्रसाद ने माना है कि अनुभूति अगर सुन्दर होगी तो अभिव्यक्ति सुन्दर होगी।

राकेश के नाटकों में परिवेश इस दृष्टि से सक्रिय हैं कि आज के युग में व्यक्ति के ऊपर सामूहिक परिवेश का बहुत बड़ा दबाव है। समूह, संगठन, व्यवस्था सब व्यक्ति पर हावी हैं जिससे उसकी वैयक्तिकत के लिए खतरा उठ खड़ा हुआ है। राकेश के नाटक समूह की इसी भूमिका के विरूद्ध व्यक्ति को स्थापित करते हैं पर व्यक्ति परिवेश के नीचे दबा लगता है लहरों के राजहंस में नंद और सुंदरी समूह की शक्ति को महसूस करते हैं जब कोई भी अतिथि कामोत्सव में उपस्थित नहीं होता। 'आषाढ़ का एक दिन' ग्रामीण समाज का सारा सत्व कालिदास के विरुद्ध है और उज्जयिनी में जाकर तो परिवेश ही उसकी विनाशकारी स्थिति का कारण बनता है। व्यक्ति और समाज का ही नहीं, व्यक्ति का निजी सम्बन्ध भी एक परिवेशका निर्माण करता है। आधे-अधूरे में यही परिवेश अधिक मुखर है जो व्यक्ति के कार्य-कलाप को नियंत्रित करता है।

4.4 नाट्य वस्तु और विन्यास शिल्प

स्वातन्त्रयोत्तर नाट्य सृजन के संदर्भ में राकेश मोहन के नाटकों का इस दृष्टि दिशा के परिपेक्ष्य में मूल्य विशेष है। वस्तु संघटन, चरित्र चित्रण, कथोपकथन और समग्रत: शिल्प विघटन तथा रचना कौशल के प्रतिमान सर्वथा पुराने नहीं हैं। इनके तंत्र में विज्ञान-मनोविज्ञान की एक संतुलित दृष्टि है। अत: ये नाटक दर्शक के दिल को मनोरंजन की जितनी मिठास देते हैं। उसके दिमागों को रिफ्रेश करने का उतना टानिक भी देते हैं।

राकेश के नाटकों की कथावस्तु क्रमश: कवि कालिदास और अश्वघोष की ऐतिहासिक काल्पनिक कथावस्तु की ध्वनि के साथ अभिजात्य अभिव्यक्ति के एक रेशमी धागे से जुड़ी है। किन्तु वस्तुत: तो यह कल्पना पर आधारित है। आधिकारिक कथावस्तु के केन्द्र कोण पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन में तो कवि कालिदास-मल्लिका है। दूसरे नाटक 'लहरों के राजहंस' बुद्ध का सौतेला भाई नंद है। यहाँ अगर बुद्ध को कथावस्तु का बीज मान लिया जाए तो नंद उसका पूरा वृक्ष कहा जायेगा। अस्तु कथावस्तु के विकास की अवस्थाएँ कम अधिक यहाँ उन आयामों का अतिक्रमण तो नहीं करती जिनकी पूर्वी पश्चिमी दृष्टि से शास्त्रीय चर्चा पहले की जा चुकी है पर वास्तविकता यह है कि यहाँ नाटककार किसी परिपाटी को पकड़कर नहीं चला है। कोई परिपाटी उसे जबरन घेर ही ले तो क्या कहा जा सकता है। पर इन दोनों नाटकों का अन्त इस परिपाटी के 'फलागम' का भी साफ अतिक्रमण कर गया है। इसमें भी एक नवीनता है।

इन नाटकों के घटनास्थाल का एक मुख्य केन्द्र होता है। यहाँ काल की असंगति नहीं, वातावरण में विशृंखल तत्त्व भी नहीं। परिणामस्वरूप मूल कथा के प्रभाव में कहीं कमजोरी नहीं अनुभव होती। मूल कथा से इतर अन्य अवांतर अथवा प्रासंगिक अथवा अप्रत्याशित घटनावस्तु जो परिमाण में ज्यादा नहीं है उसकी गति में सहायक बनती है। सूत्र रूप में इन नाटकों के कथानक का समूचा घटनाचक्र दृश्यांकन का एक जीवंत प्रभाव लिए है। इन नाटकों की कथावस्तु यद्यपि रुमानी और भावुकतापूर्ण है मगर इस कमजोरी पर अभिनय का साफल्य हावी बना रहा है। अत: यहाँ नाटकीय दुर्बलता का दोष प्राय: नहीं लगाया जा सकता।

मोहन राकेश के नाटकों में कार्य-व्यापार के स्थान पर नाट्य स्थितियाँ और उनसे जाग्रत संवेदनाएं मुख्य हो जाती हैं। यही जीवन का सत्य भी है। जीवन स्वयं स्थितियों और संवेदनाओं का आकलन है।

टिप्पणी

मोहन राकेश के नाटकों में ये स्थितियां ही अपनी शृंखलाबद्धता में कथानक बन जाती है और इन्हीं से चरित्र उभरते हैं। वस्तुत: उनका कथानक चरित्रों से, उनके क्रिया-कलाप के बीच से जन्म लेता है और चरित्र कथानक को एक विशिष्ट ढ़ांचा प्रदान करते हैं फलत: कथावस्तु और चरित्र का रूप ध ारण कर लेता है। स्थितियां कथावस्तु और चरित्र दोनों को परस्पर जोड़ती हैं। वस्तु-विन्यास, नाट्य व्यापार तथा नाटकीय तनाव का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। नाट्य व्यापार ही वस्त का उद्घाटन करता है तथा नाटकीय तनाव उसे गति देता है यदि बारीकी से देखा जाए तो नाट्य व्यापार और तनाव ही वस्तु को विन्यस्त करता है इस दृष्टि से यदि लहरों के राजहंस नाटक की परीक्षा की जाए तो पहले अंक में वस्तु का विन्यास बड़ी तीव्र गति से होता है। 'लहरों के राजहंस' के पहले और नये संस्करण में अनेक स्थलों पर मोहन राकेश ने महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। शब्दों को जहाँ अधिक बोधगम्य बनाने की ओर झुकाव है तो वाक्य संरचना में परिवर्तन लाकर इसे अधिक नाटकीय रूप देने की प्रवृत्ति भी स्पष्ट परिलक्षित होती है।

गौतम बुद्ध का नन्द के द्वार पर भिक्षा मांगना एक आह्वान है; एक पुकार है। गौतम बुद्ध की पुकार सुनने के पश्चात् नन्द जो कि सुन्दरी का दर्पण है; धुंधला जाता है और विभाजित हो जाता है। नंद के हाथ से दर्पण टूट जाने और गिर जाने का नाट्य व्यापार बहुत सार्थक और गहरा अर्थ देने वाला है।

'लहरों के राजहंस' के समस्त नाटय-व्यापार सुंदरी के निरूपण में घटित होने के कारण संदरी के मानसिक विखण्डन का निरूपण बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से हुआ है। किन्तु नंद की मानसिकता की पूरी अभिव्यक्ति अनेक नाट्य युक्तियों के बावजूद भी नहीं हो सकी। देखा जाए तो श्यामांग की सृष्टि ही नंद के अन्तर्मन की संकुलता को व्यक्त करने के लिए हुई है। यह प्रतीक पात्र सुरेख अवस्थी को जीवंत नहीं लगता आवश्यकता है। पूरी नाट्य संरचना में श्यामांग के प्रति सुंदरी का व्यवहार नंद के अन्तर्मन के एक पक्ष विशेष के प्रति उसके दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

नंद, संदरी और श्यामांग के बाद अलका की सृष्टि भी नाटकीय व्यापार को एक सुनिश्चित धरातल देने के लिए हुई है। मोहन राकेश वैषम्य द्वारा अपने पात्रों के व्यक्तित्व की रेखाओं को अधिक स्पष्ट और गहरा करने में विश्वास करते हैं। श्वेतांग, मैत्रेय तथा आनंद भिक्षु नाट्य व्यापार के अनुरूप वस्तु विकास की दिशा में एक निश्चित प्रयोजन के लिए निर्मित पात्र हैं तो अपनी भूमिका पर नाटक को गति देता है। मदिरा प्रकोष्ठ एवं शृंगार प्रकोष्ठ से सम्बन्धित नाट्य व्यापार भोगवादी प्रवृत्ति और आसक्ति के भाव को व्यक्त करने लगते हैं।

'आधे-अधूरे' नाटक शिल्प के धरातल पर भी इसे सही मायने में आधुनिक नाटक कहा जा सकता है। कथावस्तु एवं चरित्र चित्रण की शास्त्रीय मान्यताओं पर इसने प्रश्न चिन्ह लगाया है कहा गया है कि सीधे-सीधे कथ्य का यह नाटक जिस गति से खुलता है उसी गति से बढ़ता हुआ उसी पर समाप्त हो जाता है। नाटक में कहीं कसाव, तनाव या उठान नहीं आता। न ही एक ताल, एक लय पर चलते हुए नाटक के कार्य-व्यापार का अंदाज ही बदलता है वस्तुत: कथानक की प्रचलित धारणा की समीक्षा की जाए तो यह कहना उपयुक्त ही है इसमें कसाव, विकास और उठान नहीं है किन्तु इस नाटक का रचना-विधान ही दूसरी तरह का है। इस तरह बिना नाटकीय स्थितियों के विकास और उठान के यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन वास्तव का साक्षात्कार कराता है और प्रेक्षक को उलझाए रखता है वस्तुत: बिना कसाव और उठान के नाटक की रचना के मूल में जहाँ प्राचीन शास्त्रीय धारणाओं पर प्रश्न चिन्ह लगाने की क्षमता है वहाँ आज की विकट जीवन स्थितियों को अभिव्यक्ति देने के लिए नये नाट्य शिल्प की तलाश का भी प्रयास है।

टिप्पणी

एक अभिनेता द्वारा अनेक भूमिकाएं करने की युक्ति नाटक को मूल कथ्य का संश्लिष्ट अंग है। महेन्द्रनाथ द्वारा फाइलें झाड़ना, बिन्नी द्वारा डिब्बा न खुल पाना किन्नी का भीतर से कुण्डी बंद कर लेना इत्यादि ऐसी रंग चर्चाएं हैं जो भाव सम्प्रेषण में समर्थ है। पात्रों के कार्य-व्यापार भाव सम्प्रेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। सावित्री जब जगमोहन के साथ जाने का निश्चय कर लेती है उस समय के कार्य-व्यापार सावित्री के तनाव 'आषाढ़ का एक दिन' शिल्प के स्तर पर भारतीय और पाश्चात्य दोनों नाट्य तत्वों का उपयोग करता है उसमें द्वन्द्व भी है और सम की स्थिति भी। जिसका एक आयाम कालिदास प्रस्तुत करता है और दूसरा मल्लिका। रंगिणी-संगिणी, अनुस्वार और अनुन्दासिक का प्रसंग एक ओर नई पद्धति के अनुरूप विसंगति को उभारते हैं। इसी प्रकार विलोम खलनायकत्व और नायकत्व के बीच स्थित है। कालिदास नायक है पर मंच के पीछे रहता है कभी विलोम उसके समकक्ष आ जाता है मल्लिका की चारित्रिक अवधारणा एक ओर छायावादी आग्रह से परिपूर्ण है दसरी ओर उसकी जीवन दृष्टि पर अस्तित्ववादी विचारधारा का आरोप भी है। भाषा के स्तर पर भी इसमें प्रसाद की परम्परा और नवीनता का अद्‌भुत समावेश है।

लहरों के राजहंस 1963 में प्रकाशित हुआ किन्तु 'आषाढ़ का एक दिन' के पहले ही इसकी रचना शुरू हई थी अपने रूपबन्ध में यह इब्सन के तीन अंकी नाटकों के समीप है और शिल्प की दृष्टि से प्रतीकवादी नाटकों की कोटि का है। अपने वर्तमान की संगति में ऐतिहासिक संदर्भ का उपयोग करने की सूझ उनमें थी। आधार ऐतिहासिक होते हुए भी इनके नाटक ऐतिहासिक हो नहीं पाये हैं।

मोहन राकेश के नाट्य शिल्प में संघर्ष विद्यमान है। नाटक में बिम्बों और प्रतीकों द्वारा पात्रों की छटपटाहट, आक्रोश, विषाक्त भावों और अव्यवस्थित जीवन का स्पष्टीकरण होता है। नाटककार ने पात्रों के न टटन और बिखराव को व्यक्त करने के लिए ध्वनि प्रकाश और संगीत का सफल प्रयोग किया है। प्रकाश और संगीत द्वारा कई स्थलों पर वातावरण में तनाव एवं घुटन मुखरित हुई है। सारांश में कहा जा सकता है कि आधे-अधूरे' नाटक कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर संघर्षपूर्ण नाट्य कति है। वस्तुजन्य नाट्य कृतियों का बाना संघर्ष से गुंथित है। सावित्रि के तोतले शब्द और मदेन्द्रनाथ की बड़बड़ाहट तनाव की चरम स्थिति को व्यंजित करते हैं।

4.5 चरित्र परिकल्पना और संरचना

मोहन राकेश के नाटकों के पात्रों में भी एक सूक्ष्म कलात्मक संयमन है। इनके नाटक जितने वस्तुपरक हैं उससे कहीं ज्यादा पात्र प्रधान हैं। अत: यहाँ अप्रत्याशित और अवांतर घटनाओं की बड़ी बारीक चिप्पियां भी भी पात्रों का स्वयं सम्भाषण कथा प्रसंगों को प्राय: विकसित करता है। मोहन राकेश के नाट्य तंत्र में दृश्य सप्रेषण तथा संवाद विधान का परस्पर दृढ़ सम्बन्ध है और कथानक को कुछ इसी तरह कहा जा सकता है से रिंग रोड हो, पर चरित्र-चित्रण प्राय: भावनासंकुल तथा प्रेरित ही है।

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में कथानकों तथा चरित्रों की अवधारणा आधुनिक जीवन दृष्टि से ली है इसलिए उनके चरित्र व्यक्ति मात्र नहीं उनकी जीवन-दृष्टि के परिचायक हैं। उदाहरण के लिए लेखक ने स्वयं बद्ध और सुन्दरी के चरित्रों की व्याख्या करते हुए लिखा है "कि सुन्दरी और बुद्ध दो व्यक्ति या व्यक्तित्व नहीं, दो जीवन दृष्टियों या दो 'वाइटिल फोरसिस' हैं जिनके प्रभाव से उनका मन निरन्तर आनन्दोलित रहता है।

राकेश ने अपने नाटकों के लिए द्वन्द्व प्रधान कथानकों का चुनाव किया है और यह द्वन्द्व उनके सभी नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व के रूप में मिलता है। अपने सभी पात्रों के माध्यम से राकेश ने आज का संघर्षरत

टिप्पणी

और छटपटाहट में जीता-जागता आदमी ही प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश का पात्र सृष्टि का मुख्य आधार मानवीयता है और आधुनिक साहित्य का मुख्य स्वर है।

'लहरों के राजहंस' और 'आषाढ़ का एक दिन' के चरित्रिक अन्तर्द्वन्द्व और रंगमंचीय विधान को लेकर बहसें होती रही हैं। लेकिन भावना और संवेदना से अनुस्यूत चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व पर जितनी गहरी पकड़ राकेश की अपने पहले नाटक में है उसका अतिक्रमण वह न तो 'लहरों के राजहंस' में कर सके हैं और न ही 'आधे-अधूरे' में बल्कि बार-बार लगता है कि वह कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व को ही विभिन्न सन्दर्भो में उठा रहे 'आषाढ़ का एक दिन' की चरित्र सृष्टि से सम और विषम तत्वों का समावेश है, पात्र परस्पर संघर्ष में ही आते हों ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः चरित्र इकट्ठे नहीं हैं इसलिए अंशतः विरोध मूलक होने पर भी विरोधमूलक नहीं हैं वे कहीं न कहीं एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे में बंटे हुए दिखाई देते हैं। इसलिए उनमें आधुनिक मानव का पर्याप्त अन्तर्विरोध है। इस अन्तर्विरोध में भी आपस में जुड़े हैं। उदाहरण के लिए अम्बिका और मल्लिका, विलोम और कालिदास, कालिदास और मातुल ऊपर से एक दूसरे के विरोधी चरित्र लगते हैं किन्तु इसके बावजूद भी कहीं न कहीं उनमें समीकरण हैं। कालिदास एक सकारात्मक चरित्र है, विलोम उसी का नकारात्मक रूप है। एक करुण और भावुक है, दूसरा यथार्थ वादी, आक्रामक और अन्तर्द्वन्द्वी का पचाए हुए। एक भोक्ता है दसरा द्रष्टा। दोनों में संघर्ष है पर अंडरस्टेडिंग भी। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

लाम की तुलना में दुर्बल, थका-हारा लगता है। पर इस सबके बावजूद भी कालिदास उसकी अपेक्षा सभावनाओं से परिपूर्ण है। राकेश ने ठीक ही कहा है - 'आषाढ़ का एक दिन' में पराजित, टूटा हुआ व्यक्ति लिदास नहीं अपने में संयोजित विलोम है। वस्तुतः त्रासद और कामद तत्वों के समन्वय ने उन्होंने इन चरित्रों को अधिभौतिक आयाम प्रदान किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' में कालिदास का जैसा भी चरित्र है वह उसकी रचनाओं में समाहित उस व्यक्तित्व से बहुत हट कर नहीं है इससे यह ध्वनि निकलती है कि थोड़ा हट कर तो है ही लेकिन इस नाटक के कालिदास के सम्बन्ध में इस दृष्टि से विचार किया ही नही जाना चाहिए क्योंकि प्रसिद्ध कवि कालिदास ने संदर्भित होने पर एक कल्पना सृष्टि है। 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में उसे सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक कहकर मोहन राकेश ने उसकी चरित्र सृष्टि के इसी पक्ष पर बल दिया है। मोहन राकेश ने कालिदास के साहित्य के आधार पर उनके व्यक्तित्व की पुनर्रचना की है उनके अपने शब्दों में 'आषाढ़ का एक दिन में कालिदास का जैसा भी चरित्र है वह उसकी रचनाओं से समाहित करके उसके व्यक्तित्व से बहुत हटर कर नही है। इस नाटक में कालिदास अपनी ऐतिहासिकता के बावजूद मूल कथ्य का निमित्त मात्र है वह नाटक का केन्द्रीय चरित्र नहीं है।

प्रसाद की तरह राकेश ने न तो अतीत के इतिहास को ज्यों का त्यों विवरण प्रस्तुत किया है न तत्कालीन घटनाएं दोहरायी गयी हैं। न अतीत के गौरव का गान ही। राकेश ने आधुनिक मानव के द्वन्द्व और जटिलता को पकड़ना चाहा है। यह नाटक आज के यथार्थ की आधुनिकता को व्यक्त करता चलता है। जो 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक और उसके नायक कालिदास को ऐतिहासिक नाटक और ऐतिहासिक व्यक्तित्व समझकर ही देखेंगे वह उनकी एक नितांत भ्रामक दृष्टि होगी और उनके नाटक की आत्मा तक, मौलिकता तक पहुंचना भी मुश्किल होगा 'आषाढ़ का एक दिन' आधुनिक मानव की विवशता, उसके अन्तर्द्वन्द्व का उसकी जटिलता का नाटक है। कालिदास के माध्यम से वर्तमान स्थिति पर बल देते हुए राकेश ने यह दिखाना चाहा है कि एक सृजनशील कलाकार किस तरह व्यवस्था द्वारा कुचल और तोड़ दिया जाता है। कालिदास का अन्तर्द्वन्द्व और टूटन आज के साहित्यकार का द्वन्द्व और पीड़ा है। राकेश ने कालिदास के माध्यम से एक साहित्यकार के इस मानसिक द्वन्द्व को सर्जनशील व्यक्तित्व और

टिप्पणी

परिवेश कलाकार और राज्य की आपसी टकराहट को व्यक्त करना चाहा है। सत्य यह है कि कालिदास के चरित्र चित्रण में स्वयं राकेश की उनके अपने व्यक्तित्व की, द्वन्द्वों की, 'ंकाओं और प्रश्नों की ही अभिव्यक्ति हुई है उस पर राकेश के निजी व्यक्तित्व की बड़ी गहरी छाप है।

राकेश के शब्दों में विलोम दुराग्रह की आक्रामक शक्तियों को संकेतित करता है। विलोम मल्लिका के उसे न चाहने पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह काम का लोभी है। मल्लिका कालिदास से प्रेम करती है तो विलोम उन दोनों के रास्ते में रोड़ा बन कर आता है। तृतीय अंक में विलोम जाते हुए कहता है, कि मल्लिका कभी मधु की आवश्यकता पड़ जाये तो संकोच नहीं करना। अर्थात् इस जीवन की कटुता से ऊब जाओ तो मेरी सहायता ले सकती हो। इस तरह विलोम दुराग्रही के प्रतीक के रूप में सामने आता है।

इसी प्रकार 'आषाढ़ का एक दिन' में अनुस्वार और अनुनासिक भी किंचित प्रतीक तत्व लिए हुए है। अनुस्वार और अनुनासिक जो कालिदास के उज्जयिनी से ग्राम-प्रान्तर में आने से पहले मल्लिका के घर का ठीक-ठाक करते हैं, नौकरशाही में निहित अकर्मण्यता के प्रतीक हैं।

राकेश ने अपने नाटकों में जहाँ पुरुष पात्रों को प्रतीकात्मकता के रूप में अभिव्यक्त किया है वहाँ नारा पात्रों को भी अभिव्यक्ति दी है। नाटक की नायिका मल्लिका आज की नारी की विवशता का रूप है। उमिला मिश्र के अनुसार-"मल्लिका का चरित्र युगों से पीड़ित नारी का प्रतीक है।" जिसे जीवन के कड़वे अनुभव न तोड़कर रख दिया है। वास्तव में मल्लिका रुमानियत की जीती-जागती प्रतिमा है। लोक-व्यवहार से असम्पृक्त रहकर वह वर्षों से भीगने के आनन्द में डूबी रहती है और भावना से भावना का वरण करती है वह समझती है कि मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है वह उसे नष्ट करना चाहती है तो उस पर किसी को आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं। अम्बिका यथार्थ की भूमि पर जीने वाली नारी है जिसे जीवन के कटु अनुभवों, दैन्य स्थितियों तथा आवश्यकताओं ने कठोर और हृदयहीन बना दिया है। उसे भावना और भावुक व्यक्ति से गहरी वितृष्णा है। प्रथम दृश्य में जब मल्लिका आषाढ़ की प्रथम वर्षा में भीगकर कालिदास के प्रेम का संस्पर्श पाकर भावुक हो उठती है तथा लगातार बोलती जाती है अम्बिका अत्यन्त सधे हुए, अल्प शब्द ही बोलती है। उसकी गति बिल्कुल यांत्रिक हैं वह कभी-कभी उदास हो जाती है तथा रोने लगती है।

मल्लिका ने भावना का वरण किया है पर अम्बिका को ऐसे भावना से वितृष्णा है। वह कहती है -ष्तुम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलना और आत्म प्रवचना है। यह कालिदास को बहुत गहराई से जानती है और कहती है कि मैं उससे घृणा करती हूँ। वह जानती है माँ का जीवन भावना नहीं कर्म है। अन्ततः कहा जा सकता है कि लेखक ने अम्बिका के रूप में एक ऐसे पात्र की सर्जना की है जो अपने कटु जीवनानुभूतियों के प्रकाश में यथार्थ में जीती-जागती प्रतिमा है।

प्रियंगुमंजरी कालिदास की परिणीता राजकुमारी है परन्तु कवि पर एकाधिकार चाहती है - उसके प्रेम में अधिकार भावना है जो उसके अभिजात्य वर्गीय गरिमा के अनुकूल हैं। जहाँ मल्लिका के प्रेम में उदारता तथा बलिदान की भावना है वहीं प्रियंगुमजरी का प्रेम एकाधिकार तथा कठोर यथार्थवादी भूमि पर पला है। वस्तुतः मल्लिका और प्रियंगुमजरी दो शक्तियां हैं - मल्लिका जो दूर रहकर भी कालिदास का निर्माण करती है उसके उत्थान के लिए अपने जीवन की सुख सुविधाओं को स्वाहा कर देती है दूसरी ओर प्रियंगु जो उसे काव्य से खीचकर राजनीति में स्थापित करना चाहती है इन दोनों के बीच कालिदास का व्यक्तित्व टूटने लगता है। रंगिनी-संगिनी नामक उज्जयिनी की दो शोध- कहानियों के माध्यम से नाटक ने तथाकथित अनुसंधान और उनकी प्रक्रिया का तीखा मजाक उड़ाया है।

टिप्पणी

'आषाढ़ का एक दिन' की भांति 'लहरों के राजहंस' के चरित्र भी अपने ऐतिहासिक बाह्य स्वरूप के बावजूद अपने जटिल मानस और संशयग्रस्त मनोविज्ञान के कारण आधुनिक हैं। नाटककार ने अतीत के इन पात्रों को आज के जीवन संदर्भो और नये सम्बन्धों में प्रस्तुत किया है।

लहरों के राजहंस' चरित्रांकन की दृष्टि से नन्द और सुंदरी के चरित्र विशेष उल्लेखनीय हैं क्योंकि नाटककार ने इन्हें गतिशील जटिल पात्रों के रूप में चित्रित किया है। परिस्थितियों से प्रतिक्रियाकरके अपने आंतरिक चरित्र का उदघाटन करते हुए ये पात्र नरन्तर विकसित होते रहते हैं। अपनी परिणति में इनका चरित्रांकन कलात्मक और यथार्थवादी है। इस नाटक के चरित्रांकन की अन्तिम महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके लगभग सभी चरित्र किसी बनावटी भंगिमा का सहारा लिए बिना ही केवल अपनी अपनी भाषा की अलग आन्तरिक सूक्ष्म लय के सहारे अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को स्थापित करते हैं।

'लहरों के राजहंस' में कपिलवस्तु के राजकुमार नन्द के बौद्ध भिक्षु बनने तथा उसकी पत्नी के रूप-गर्व और यौन आकर्षण की कथा है। कथानक के धरातल पर यह द्वन्द्व दो स्तरों पर चलता है - नन्द और सुन्दरी उसके केन्द्र हैं। 'लहरों के राजहंस' में नाटककार ने अन्तर्द्वन्द्व प्रधान चरित्रों की योजना द्वारा युग संदर्भ तथा सार्वकालिक द्वन्द्वग्रस्त मानवीय चेतना को परिक्षेपित करके पात्रों का प्रभावशाली चरित्रांकन किया है।

नन्द 'लहरों के राजहंस' में केन्द्रीय पुरुष पात्र हैं। वह संशयग्रस्त व्यक्ति हैं और यही संशयग्रस्तता ही वह प्रश्न चिन्ह हैं जो नाटक को सक्रिय बनाता है। नाटक में 'मृत मृग' का प्रतीक नायक की मन:स्थिति से काफी साम्य रखता है। मृग का संकेत उस व्यक्ति की ओर है जो जीवित रहने के लिए लड़ते-लड़ते थक जाता है और अपनी थकावट से मर जाता है। नन्द भी थककर मृतप्राय: हो रहा है। नाटककार के शब्दों में 'मृग का प्रकरण एक पंकेत के लिए लाया गया है। जीवित रहने के लिए संघर्ष करता हुआ भी वह अपनी ही कलान्ति से मर जाता है। यह परिणति मग की ही नहीं किसी की भी हो सकती है। लहरों के राजहंस में नंद का द्वन्द शायद कभी राकेश ने भोगा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। नन्द भी अच्छा बाप, पति बनने और जिन्दगी में कुछ कर लेने के लिए त्रिशंकु की तरह लटकता रहा। जब राकेश 'लहरों के राजहंस' लिख रहे थे तब दिनों एक नए प्रणय की लहरों पर तैर रहे थे। राकेश ने यह नाटक अपनी प्रेम-पात्रा जो बाद में पत्नी बनी सी को समर्पित भी किया पर सुन्दरी को अन्तत: यह मूल मंत्र थमा दिया 'मन की बात कहकर आदमी छोटा जाता है।"

नन्द का मन संशयग्रस्त है और उसके मन में अनेक प्रश्न हैं। यह संशय और द्वन्द्व राकेश के अपने है। नन्द का द्वन्द्व राकेश का द्वन्द्व है। अपने अन्तर्मन के अनुरूप न जी पाने और न हो पाने की थकान को नन्द और राकेश दोनों ही जी रहे हैं। अपनी डायरी के पन्नों में एक स्थान पर राकेश ने लिखा है-ष्जीना चाहते हो तो तुम्हें जीना चाहिए। सिर्फ जीने की बात सोचत्ते रहने का कोई अर्थ नहीं। स्पष्ट है यहाँ राकेश का जीने का अर्थ समग्रता के साथ, सम्पूर्णता के साथ जीना है। इस प्रकार जीना जिसमें व्यक्ति का सम्पूर्ण अस्तित्व सिमट जाए।" राकेश अपने को अच्छी तरह जानता था इसलिए उसका यह कथन ही अपने बारे में ज्यादा सही हैकृ "मैं न यह हूँ, न वह हूँ।' शायद यही बात 'लहरों के राजहंस' में नंद के मुख से निकलती है। इस रूप में हो या उस रूप में मैं अपने को झुठला कर नहीं जी सकता क्योंकि मैं यह भी हूँ और वह भी इनमें से कोई एक नहीं जैसा कि तुम सब अलग-अलग विश्वास करना चाहते हो कि मैं हूँ .....। स्वयं राकेश कहते हैं - नन्द और सुन्दरी की कथा आश्रय मात्र है क्योंकि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है।

लहरों के राजहंस' में प्रतीकात्मक पात्रों की सृष्टि की दृष्टि से श्यामांग एक उत्कृष्टरचना है। इस नाटक में श्यामांग नन्द के अन्तर्मन द्वन्द्व का प्रतीक बनकर हमारे समक्ष प्रकट हुआ है दृ "वह परिस्थितियों के

टिप्पणी

दबाव के कारण नन्द की टूटन तथा अंतर्मन की बेचौनी को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। नाटककार के शब्दों में - श्यामांग एक प्रतीक चरित्र है एक तरह से वह नन्द के मन की संकुलता को ही रेखांकित करता है। श्यामांग का सार्थक चरित्र ही नाटक की तनावग्रस्त नाटकीय संवेदना को तीव्रता से आगे बढ़ाता है।

श्यामांग का बड़बड़ाना नन्द का ऊहापोह है जो मन में उठने वाले अनेक विचारों, प्रतिक्रियाओं भावनाओं को व्यक्त करता है। नाटक में अनेक प्रतीक जैसे दृ "अंधकूप और चील द्वारा नाटककार ने नन्द के अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति की है। इस तरह श्यामांग की सृष्टि प्रतीक योजना प्रभाव की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। नन्द के अन्तर्द्वन्द्व को सजीव रूप देने के लिए श्यामांग की चरित्र सृष्टि की गई है। वह एक कुण्ठित मानसिक अवस्था का प्रतीक बन गया है।

श्वेतांग आज्ञाकारी, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार कर्मचारी है। वह बर्हिमुखी प्रकृति का है और कर्मठ है। यह चरित्र श्यामांग के एकदम विपरीत व्यक्तित्व रखता है। श्यामांग द्वन्द्वग्रस्त है, अन्तर्मुखीय है और श्वेता इसके विपरीत है। स्वाभाविक चरित्र की भांति आदि से अंत तक वह अपनी भूमिका निभाता है। एक सच्च सेवक के सभी गुण उसमें विद्यमान हैं अन्य पात्रों की तरह उसका चरित्र अस्पष्ट या अन्तर्द्वन्द्व प्रधान नाटक - श्वेतांग एक स्पष्ट और अन्तर्द्वन्द्व मुक्त पात्र है।

आनन्द भिक्षु बहुत ही कम समय के लिए मंच पर आता है। परन्तु छोटी सी भूमिका में यह पात्र अपना सहजता, स्पष्टता, आत्मविश्वास तथा दृढ़ता के द्वारा दर्शकों को आकर्षित कर लेता है। प्रतीकात्मक रूप से आनन्द गौतम बुद्ध का प्रभाव है जो नन्द के पास भेजा जाता है। आनन्द भिक्षु नन्द का घर देखने आता है। नन्द उसे अपना घर, कक्ष और उद्यान दिखाता है -ष्मैं घर देखना चाहता था नन्द ..... घर ..... कक्ष का उद्यान नहीं। तुम्हारे पास कक्ष और उद्यान सब कुछ है, घर नहीं है ... घर जिसमें तुम्हारी आत्मा को विश्राम मिल सके।" भिक्षु आनन्द की सृष्टि नाटक में इसलिए भी हुई कि वह बतला सके कि आत्मा की शान्ति जिस घर या स्थान की प्राप्ति के लिए होती है उसके लिए बहुत स्थिरता की आवश्यकता है। जिस प्रकार राकेश अनीता को कहते रहे कि अन्ना मुझे घर चाहिए उसी तरह आनन्द भिक्ष भी जब नन्द का उद्यान, कक्ष इत्यादि सब कुछ देख लेता है तो वह कहता है कि तुम्हारे पास घर नहीं है इस प्रकार राकेश की तरह इनके नाटकों के पात्र भी घर की तलाश में दिखाई देते हैं।

आर्य मैत्रेय को कुछ लोगों ने युग चेतना का प्रतीक माना है जो उपयुक्त नहीं लगता केवल यह कहने से कि कामोत्सव में कोई व्यक्ति नहीं आ रहा युग चेतना का प्रतीक नहीं होता। आर्य मैत्रेय एक स्पष्ट वक्ता सामन्त ' जिसमें अपनी धारणा को व्यक्त करने की क्षमता है।

गौतम बुद्ध सूच्य पात्र है, फिर भी वह नाटक मे छाये रहते हैं। अन्य पुरुष पात्रों मे शशांक, मदारक, बीजगुप्त और नागदास है। वस्तु व कार्य की दृष्टि से इन गौण पात्रों का सृजन आवश्यक था।

'लहरों के राजहंस' में सुन्दरी का व्यक्तिव अद्वितीय हैं। वह नाटक की नायिका है। सुन्दरी रूपगर्विता अनन्त सौन्दर्य की स्वामिनी, आत्माभिमानी, अन्य विश्वास से युक्त, आत्मनिर्भर और आत्मविश्वास से भरपूर नारी है। सुन्दरी व्यक्ति विशेष न होकर जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है। उसे अपने रूपाकर्षण पर इतना गर्व है कि वह पुरुष को प्रवृत्ति मार्ग पर लाने के लिए इसे नारी का अमोघ अस्त्र मानती है। वह चाहती है कि नन्द को अपने सौन्दर्य आकर्षण से, प्रणय बन्धन में बांधे रखे। अपने रूप पर सुन्दरी को इतना गर्व है कि इसके आगे यशोधरा को हीन समझती है 'नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।' सुन्दरी के व्यक्तित्व में अभिजात्य वर्गीय गरिमा, औदात्य और औदार्य है। बार-बार उत्तेजित होने पर भी वह

टिप्पणी

आक्रामक नहीं होती। वह स्वयं को संयत करने का प्रयास करती है। कामोत्सव के विफल होने पर उसका उद्वेग चरमसीमा पर पहुँच जाता है किन्दु रातभर में उसके समस्त मन की मैल धुल जाती है और वह नन्द से अपने कृत्य के लिए क्षमा मांगती है: "मुझे खेद है ..... रात के अपने व्यवहार के लिए सचमुच खेद है।"

सुन्दरी की निजी परिचारिका एवं सखी के रूप में अलका मंच पर आती है। अलका के व्यक्तित्व के दो रूप हैं अलका का चरित्र सुन्दरी के व्यक्तित्व और अस्तित्व को स्पष्ट करता है। दूसरे रूप में वह निरूस्वार्थ प्रेमिका है। ज्वर ग्रसित श्यामांग की सेवा अलका रात भर करती है। इस प्रकार से अलका में सहनशीलता, संवेदनशीलता, सेवाभाव, कर्त्तव्यपरायणता, अनुराग आदि भावनाओं का समावेश है। अन्य स्त्री पात्रों में निहारिका है एक राज-सेविका जो कुछ ही पलों के लिए मंच पर आती है।

'लहरों के राजहंस' में राकेश ने प्रमुख और पूरक पात्रों के अतिरिक्त गौण पात्रों की सर्जना भी की है। नाटकीय व्यापार में इन सभी पात्रों की अपेक्षा की जा सकती है। 'लहरों के राजहंस' नाटक में अन्तर्द्वन्द्व प्रधान चरित्रों की नियोजना द्वारा युग संदर्भ और सार्वकालिक द्वन्द्व ग्रस्त मानवीय चेतना को परिक्षेपित करके प्रभावशाली चरित्रांकन किया है। राकेश ने इसमें नन्द और सुन्दी की कथा को भी आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए आश्रय के रूप में स्वीकार किया है। राकेश ने पात्रों की ऐतिहासिकता पर बल देने की बजाए आंतरिकता का प्रतिफलन युगीन संदर्भ में किया है।

'आधे-अधूरे' राकेश का मध्यमवर्गीय परिवार के साक्षात्कार का नाटक है। इसमें सामाजिक परिवेश और आज के कटु यथार्थ को नाटक का आधार बनाया गया है। इसमें आज के जीवन की आकांक्षाओं, प्रयत्नों आज क मनुष्य की विवशताओं को संप्रेषित किया गया है। नाटक के पात्रों के नाम होते हुए भी उन्हें पुरुष एक, दो तीन, चार स्त्री, बड़ी लड़की, छोटी लड़की के रूप में प्रस्तुत करना उसकी स्वत्वहीनता देकर जातिगत रूप में प्रस्तुत किया है और उनके माध्यम से मध्यमवर्गीय परिवारों की संवेदना से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करवाया है।

'आधे अधूरे' नाटक में पात्रों के नाम होते हुए भी उन्हें पुरुष एक, दो, तीन, चार के रूप में प्रस्तत हुन किया है क्योकि ये राकेश का स्वयं का व्यक्तित्व है, या इसलिए उन्होंने नाटक में पात्रों के नाम नहीं दिये।

नाटक का नायक महेन्द्रनाथ बेरोजगार निराश और असफल पति है। सम्पूर्ण नाटक में महेन्द्रनाथ पुरुष एक के नाम से जाना जाता है। वह जिन्दगी में अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये है। महेन्द्र अपने घर में एक बेहद विसंगत जिन्दगी जी रहा है। अकसर वह अपना ही सामना करने से कतराता है 'यह एक रोग सवाल है जिसका सामना करना इधर आकर मैंने छोड़ दिया है।

महेन्द्रनाथ धनोपार्जन में असमर्थ होने के कारण परिवार में महत्वहीन है। आज जीवन में असफल हो स्त्री की कमाई की रोटियाँ तोड़ने वाला, कुढ़ने वाला गृहपति की मर्यादा से वंचित, पत्नी के परिचितों या प्रेमिका के आने पर चुपचाप घर से वले जाने वाला, मन की कटुता को सह पाने में असमर्थ होकर पत्नी को व्यंग्यबाणी से छेदते रहने वाला महेन्द्रनाथ सदैव से ऐसा नहीं था। परन्तु अब उसे परिवार का प्रत्येक सदस्य कुछ नहीं समझता और यदि वह समझता है तो एक रबड़ स्टैम्प भी नहीं, रबड़ का टुकड़ा। परिवार में उपेक्षा और खिंचाव के कारण सावित्री की स्थिति भी सुखद नहीं है। वह भी एक मशीन है जो सबके लिए आटा पीस-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।

महेन्द्रनाथ के चरित्र का सम्यक अनुशीलन करने के उपरांत यही कहा जा सकता है कि महेन्द्रनाथ के रूप में राकेश ने आधुनिक समाज के मध्यमवर्गीय परिवार के मुखिया के रूप में एक टूटे हुए व्यक्ति

टिप्पणी

को 'आधे-अधूरे' में प्रस्तुत किया है। वह सबकी भर्त्सना सहता है किंतु कुछ कह या कर नहीं पाता। अपमानित होकर घर छोड़कर भी चला जाता है किंतु अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण पुनः लौट भी आता है 'आधे-अधूरे' में महेन्द्रनाथ का चरित्र राकेश के समान ही दिखाई देता है। महेन्द्र भी एक आदमी है जिसका अपना घर बार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहने वालों को शुरू में ही रास नहीं आई ..... अब पहले वाला महेन्द्रनाथ नहीं रहा। वह जी-जान से कोशिश करता है कि वह बना रहे किसी तरह ... इसके लिए महेन्द्रनाथ घर के अन्दर दिन-रात छटपटाता है, दीवारों पर सिर पटकता है ..... वही महेन्द्र दोस्तों के बीच दब्बू सा बना हल्के हल्के मुसकराता है, घर आकर दरिन्दा बन जाता है। राकेश ने महेन्द्रनाथ के माध्यम से अपने ही जीवन के पारिवारिक विघटन, बिखराव जो उनकी वास्तविक स्थिति थी, उसे ही व्यक्त किया है।

अशोक इस नाटक में आधुनिक असंतुष्ट युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वर्तमान पीढ़ी के युवा किस तरह झांसे देकर वह अपनी कामुकता पूरी करना चाहता है। आत्मप्रशंसा भी सिंघानिया के चरित्र में मिलती है। सिंघानिया के चरित्र एवं व्यक्तित्व द्वारा पुरुष के व्यंग्य विदूप भरे, कामुक एवं हास्यास्पद स्वरूप को रूपायित किया गया है।

जगमोहन एक ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है। जो अपनी सुविधाओं को देखकर जीना चाहता है। जगमोहन सावित्री का पूर्व-प्रेमी है जिसके पास सावित्री अपने अधूरे जीवन को पूरा करने के लिए फिर से चला जाना चाहती है लेकिन जगमोहन अपनी सुविधा के अनुसार जीने को दर्शन मानकर चलने वाला व्यक्ति । इसलिए सावित्री को निराशा ही हाथ लगती है। सावित्री अपने विगत सम्बन्धों से प्राप्त अधकार का उपयोग उस झिडकने के लिए करती है तो वह उसकी काट उसी आत्मीयता के अभिनय से करता है। स्त्री की उक्तिया - जितनी लपेट है पुरुष तीन की उिक्तियों में उतना ही बच निकलने का कौशन है। तुम नहीं बदली बिल्कुल, उस तरह डांटती हो आज भी, पर बात इतनी सी है इसलिए सोचा कि .....। इस संवाद से स्पष्ट है कि जगमोहन घर, दफ्तर और बाहर की प्रत्येक वस्तु में कपड़ों की तरह ही अन्तर करना और रखना जानता है। जबकि जगमोहन सावित्री कहीं अधिक व्यावहारिक व्यक्ति है। वह शिष्ट भाषी होने के साथ ही टिपटाप रहने का स्वभावी है, बड़े बड़े लोगों तक उसकी पहुँच है, लेकिन सावित्री को जगमोहन भी आधा-अधूरा लगता है।

मोहन राकेश के अन्य नारी पात्रों के समान ही सावित्री भी दीन हीन अथवा आत्मसमर्पण करने वाली न होकर अपने अहं एवं स्वाभिमान को सुरक्षित रखने वाली एवं स्वावलम्बी स्त्री है। सावित्री ऐसी नारी ही है जो सब कुछ नियति समझकर स्वीकृत करती जाए। वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व की तथा सब भोगों की मांग करती है अपनी इच्छापूर्ति के लिए प्रयत्न करती है। अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कई ऐसे लोगों से पर्क करती है जिनमें कुछ विशेष हो जिसके पास बड़ी डिग्री हो धन हो तथा इंटेलेक्चुअल हो। वह बड़े बड़े लोगों से सम्पर्क करती है ताकि घर में कुछ अच्छा हो सके-ष्इसलिए कि किसी तरह इस वर्ग में बढ़ता हुआ असंतोष और विद्रोह भड़क रहा है उसका सारा कारण अशोक में छिपा हुआ है। अशोक पिता की भांति बेकार है। उसका किसी भी नौकरी करने में यमन नहीं लगता। कोई मन पसंद काम कहीं मिलता ही नहीं, पूरा दिन घर से गायब रहता है। वह जानता है कि उसकी माँ अपने बॉस सिंघानियां के माध्यम से सिंघानिया की 'इमेज' उसके मानस पटल पर बनी है। वह उसे झुठला नहीं सकता 'पांच हजार तनख्वाह पाने वाला बास हुआ तो क्या? आदमी तो नहीं लगता। न बैठने का शरूर न बात करने का।

अशोक का चरित्र परस्पर विरोधी स्थितियों विसंगतियों का शिकार, मध्य एवं निम्न मध्यवर्गीय अधूरे युवक का यथार्थ प्रतिनिधि बनकर उभरा है। आज का युवक दिशाहीन होकर क्यों विद्रोह के निराधार,

टिप्पणी

आधार पर विद्रोही होता जा रहा है। इसी तथ्य को नाटककार ने अशोक के चरित्र द्वारा सशक्त ढंग से उभारा है। प्रकारान्तर से लड़का बाप की जिन्दगी को दोहरा रहा है। फर्क तो यह है कि बाप जिन्दगी के साथ चिपका हुआ है जबकि लड़का जड़ से ही उखड़ा हुआ है। परन्तु अब उसे परिवार का प्रत्येक सदस्य कुछ नहीं समझता और यदि यह समझता है तो एक रबड़ स्टैंप, रबड़ भी नही रबड़ का टुकड़ा। परिवार में उपेक्षा और खिंचाव के कारण सावित्री की स्थिति भी सुखद नहीं है वह भी एक मशीन है जो सबके लिए आटा पीस पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।

'आधे-अधूरे' में सिंघानिया आज के उच्च अधिकारियों या सत्ताधिकारियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसके माध्यम से नाटककार ने पदाधिकारी अवसरवादी एवं अपने पद का दुरुपयोग करने वाले लोगों का चित्रण किया है। वह सावित्री का बॉस है और सावित्री के घर में उसका आना-जाना भी है। महेन्द्रनाथ को सिंघानिया का आना पसन्द नहीं है। इसीलिए सावित्री द्वारा उसके घर आने के कारण बताने पर महेन्द्रनाथ कह उठता है - "हाँ सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर इसीलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर महेन्द्रनाथ के इस ढंग से कहने का अर्थ वास्तव में सिंघानिया के आन्तरिक रूप को उद्‌घाटित करना है कि घर का कुछ बन सके कि मेरी अकेली के ऊपर बहुत बोझ है, इस घर का जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हा सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ सम्बन्ध बनाकर रखना चाहती हूँ तो अपने लिए नहीं तुम लोगों के लिए।" इस प्रकार सावित्री आधुनिक नारी की महत्वाकांक्षाओं तथा तज्जनित विसंगतियों की प्रतिमूर्ति है।

बित्री भी अपनी मां की तरह अस्थिर चित्तवृत्तियों तथा असुरक्षा की शिकार है। वह भी अपनीही माता की तरह पूर्णता की खोज में अर्थात् अपनी इच्छाओं की पूर्ति के उपायों में लगी रहती है। वह अपनी प्रौढ़ मां के प्रेमी मनोज के साथ घर से भाग जाती है किन्तु कुछ समय के बाद यह अनुभव करती है कि किसी अज्ञात कारण वश दोनों के बीच एक दीवार खड़ी हो गयी है दोनों एक दूसरे को अजनबी महसूस करते हैं। माँ के यह पूछने पर कि उसे किस बात की शिकायत है वह स्पष्ट कह नहीं पाती कि "शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ पर अब आकर .... अब आकर मुझे लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।" बिन्नी का व्यक्तित्व बिखराव से पूर्ण है। भावुकता उसे और तोड़ देती है-विषम परिस्थितियां उसके हृदय में कटुता के स्थान पर अवसाद की सृष्टि करती है। उसके मन में अब भी माता-पिता के प्रति आदर और स्नेह है। वह घर के प्रति लगाव महसूस करती है। बिन्त्री बारह वर्ष की है। घर के वातावरण ने उसे कटु तथा ढीठ बना दिया है। उसकी किसी को नहीं अत: वह भी प्रतिक्रिया स्वरूप किसी की परवाह नहीं करती। स्कल से आकर कहती है कि ''स्कुल में लगे तो कोई पैसा नहीं होता पास में और घर आने पर घण्टा घण्टा दूध ही नहीं होता गरम' अभाव के स्कल में उसे अपमानित किया जाता है, घर के लोगों को लेकर आस-पड़ोस के लोगों से उसे तरह खाते सननी पड़ती है। वह अपनी पड़ोसी सहेली से पुरुष-स्त्री के सम्बन्धे की चर्चा करती है तथा अशोक छिपायी गयी अवांछित पुस्तके पढ़ती है।

इस प्रकार 'आधे-अधूरे' का पारिवारिक यथार्थ राकेश से कहीं अधिक उनकी पत्ना अनीता का भोगा हुआ यथार्थ है। 'चन्द संतरें और के प्रारम्भिक पृष्ठ इसके प्रमाण हैं। ब्रजमोहन शाह का यह संकेत भी बेहतर होता यदि इस नाटक में मोहन राकेश के साथ अनीता का नाम भी आता क्योंकि यह नाटक उन्हीं की कहानी पर आधारित है। अनीता राकेश ने राकेश की घरवाली और मित्रों की महफिल लगाने के जो विवरण दिये वे 'आधे-अधूरे' में महेन्द्रनाथ के सम्बन्ध में मिलते-जुलते हैं और सावित्री की बातों से मेल खाते हैं। दोस्तों के लिए अपने को ढालने की आत्मघाती प्रवृत्ति महेन्द्रनाथ और मोहन राकेश में समान दिखती है। महेन्द्र भी एक आदमी है जिसका घर-बार है महेन्द्र ने विवाह क्या किया। अब

टिप्पणी

वह पहले की तरह हंसता नहीं ... महेन्द्रनाथ घर के अन्दर दिन रात छटपटाता है। बच्चों को पीटता है बीवी के घुटने तोड़ता है .... वहीं महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बु सा बना हल्के-हल्के मुस्कुराता रहता है, घर आकर दरिन्दा बन जाता है। जैसे कि राकेश का घर में व्यवहार कुछ और होता था और घर से बाहर एकदम बदल जाता था। इसी को ही महेन्द्रनाथ के माध्यम से व्याख्यायित किया है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि राकेश के तीनों नाटकों में युग सत्य के साथ आधुनिक जीवन और परिवार की भयंकर समस्याओं का उद्घाटन किया है। उन्होंने आधुनिक जिन्दगी की, समस्याओं को करीब से और बहुत कुछ झेल कर पहचाना है उसके बाद उसे विभिन्न आयामों में रूपायित किया है। परिवार और समाज की टूटन उनके नाटकों का मुख्य विषय है अत: कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटक आधुनिक परिवेश के अनुकूल हैं।

निष्कर्षत: आषाढ का एक दिन मोहन राकेश की निजी अनुभूति है। आषाढ़ का एक दिन में कालिदास का राजाश्रय लेना और उसको छोड़ देना उसी प्रकार मोहन राकेश को अनेक नौकरियां मिली और छोड़ दी। अनुभव से भी वो ही मानसिकता है। उस समय का नाटक एक तरफ आजीविका के लिए संघर्ष कर रहे युवावस्था में यौन आकर्षण की भावना है। कालिदास के द्वारा अपना लेखन और मोहन राकेश का बम्बई में अभिजात वर्ग की महिला और उसका आकर्षण था लेकिन लेखन का धर्म सबसे ऊपर था। आषाढ़ का एक दिन में अम्बिका का व्यक्तित्व मोहन राकेश की मां का ही व्यक्तित्व है। मोहन राकेश की डायरी इस तथ्य को प्रकट करती है कि इनके सम्पर्क में अनेक लड़कियां आईं। उनके संसर्ग में जी हुई रोमांटिक अनुभूतियों का निरुपण ही इस नाटक में हुआ है।

लहरों के राजहंस में सौदारानन्द को आधार बनाकर नाटक लिखना में नाटक की दुविधा और संशय की ओर संकेत है। नाटक के प्रारम्भ में ही लेखक ने बहुत अच्छा प्रतीक दिया है। पुरुष मूर्ति चाहे फैलाये हुए नारी मूर्ति आंखें झुकी हुई और बाहें सिमटी हुई इस ओर संकेत करती हैं कि पुरुष इस भौतिक संसार से ऊपर उठना चाहता है लेकिन सुन्दरी जो कि दिल्ली में उनके सम्पर्क में आई लड़की थी वो उसे अपनी बाहों में समेटे हुए है उसे ऊपर उठने नहीं देना चाहती। यह कहानी अनीता औलक के मां-बाप की कहानी है।

मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय विसंगतियों को बहुत नजदीक से देखा है। कुछ विद्वानों का कहना है उस सारे अनुभव घटनाओं को आधार बनाकर ही आधे-अधूरे नाटक लिखा है।

4.6 रसानुभूति का स्वरूप

रस नाट्य का अनिवार्य तत्व है विभाव अनुभाव तथा व्याभिचारी भावों के संयोग में रस की उत्पत्ति होती इस सम्बन्धी भरत का विवेचन व्यावहारिक ही है, 'शास्त्रीय कम। अभिनय का दृष्टिकोण सामने रखकर ही का विधान किया गया है। साधारणीकरण इत्यादि की समस्याएं बाद में उठायी गयी है जिसका अभिनय के व्यावहारिक पक्ष से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं।

भारत ने नाट्य के लिए आठ रस आवश्यक समझे है। जिनमें मुख्य चार हैं शेष रसों की उत्पत्ति इन्हीं जारों से होती है। शृंगार से हास्य की, रौद्र से करुणा की वीर से अदभुत की तथा वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

श्रृंगार रस

अंगार का वर्ण श्याम तथा देवता विष्णु माने गये हैं। रति उसका स्थायी भाव होता है। अवस्था आदि के कारण भंगार दो प्रकार का होता है। सम्भोग और विप्रलम्भ। संभोग शृंगार, सुगन्धित अंग-राग, अलंकार

टिप्पणी

जिन विषय सुन्दर भवन इत्यादि का उपभोग उपवनगमन का अनुभव श्रवण, दर्शन, क्रीड़ा और लीला इत्यादि के द्वारा उत्पन्न होता है। विप्रलम्भ श्रृंगार का अभिनय निर्वेद, ग्लानि, 'शंका, श्रम, चिन्ता, निद्रा, स्वप्न, व्याधि, उन्माद् इत्यादि अनुभावों के द्वारा होता है। शृंगार के सम्बन्ध में भरत ने पूर्ववर्ती श्लोक भी उद्धृत किया है -आंखें और चेहरे की प्रसन्नता, मुस्कराहट, प्रमोद और सुन्दरता के साथ अंगों के संचालन द्वारा शृंगार का अभिनय किया जाता है।

करुण रस

करुण रस का वर्ण कपोल्वत होता है और इसके देवता यम होते हैं इसका स्थायी भाव शोक होता है। यह शाप क्लेश में पतित, प्रियजन के वियोग, विभव नाश, देश निर्वासन, अग्नि इत्यादि में जलकर मर जाना अथवा व्यसनों में फंस जाने इत्यादि विभावों से होता है। आंसू गिराने, विलय करने, मुख सूख जाने, विवर्णता के द्वारा इसका अभिनय करना चाहिए। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, ओत्सुक्य, मोह, श्रम, भय, विषाद, ग्लानि, जड़ता, कम्पन, अश्रु और स्वर भेद इसके व्याभिचारी होते हैं।

रौद्र रस

रौद्र रस का वर्ण लाल होता है देवता रुद्र राक्षस दानव और उद्धत मनुष्यों के आश्रित, युद्धजन्य, क्रोध रूप, स्थायी भावात्मक रौद्र रस होता है। यह रस क्रोध, अन्नतभाषण, उपगात आदि विभावों से उत्पन्न होता है। मारना, फाड़ना, मसलना, काटना, 'शस्त्र उठाना, 'शस्त्र प्रहार, खून देना, रौद्र रस के अनुभाव है। लाल-लाल नत्रा से भृकुटी चढ़ाना, दांतों का किटकिटाना, होंठों का चबाना, गालों का फड़कना, हाथों को रगड़ना इत्यादि अनुभावों द्वारा इसका अभिनय किया जाता है।

राकेश कथावस्तु और चरित्र का ताना-बाना द्वन्द्व की विरोधी रेखाओं और रंगों से बुनते हैं। वे कथावस्त तथा चरित्र के परस्पर विरोधी सूत्रों से अपने नाटकों का ऐसा ढांचा खड़ा करते हैं जो तनाव और द्वंद की स्थितियों से आगे बढ़ता है। 'आषाढ़ का एक दिन' में एक ओर पहले-पहले मेघों से मल्लिका का भीगा भीगा महसूस करना दसरी ओर मल्लिका की चुप्पी और आंसू, एक ओर ग्रामीण जीवन का निरीह अस्तित्व और सरा और राजसैनिक द्वारा आहत मृगशावक एक ओर मल्लिका का भावना से भावना का वरण दूसरी ओर कालिदास का उपेक्षा भाव जैसी विरोधी स्थितियां कथापट को बुनती हैं। विरोधी रेखाओं और रंगों में कही-कहीं एसा निरीहता और करुणा व्यथित होती है और उनके बीच विडम्बना के इतने तीखे 'शेड' अर्थ ध्वनियां उभरती 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के अंक विभाजन के मूल में तनाव का उत्तरोत्तर उत्कर्ष है। तनाव नाटक आरम्भ से अन्त तक है लेकिन आरम्भ में तनाव में वह उग्रता नहीं है। जो दूसरे और तीसरे अंक में है। अंक में जो तनाव है उसके मूल में सदिच्छा है। मल्लिका की रुमानी प्रकृति के विरुद्ध अनुभवी अम्बिका की यथार्थ चेतना में मल्लिका के भले की ही कामना निहित है। इस प्रकार नाटक के पहले अंत का क्षीण सा तना दूसरे अंक में भीषण प्रहार और तीसरे अंक में प्राण में परिणत हो जाता है।

इस प्रकार से नाटक में संघर्ष की मूल धाराओं के भीतर टकराहट भरी अनेक कथा-स्थितियां समायी का हैं। एक कथास्थिति के साथ दूसरी कथास्थिति का सहज रूप से योग होता गया है और इस प्रकार टकराहट के पक्ष बदलते रहे हैं। फिर कथा की एकसूत्रता बनी रही है। एक दो को छोड़कर सभी कथा स्थितियां मल कम के भीतर निष्पन्न हुई हैं परिणाम यह हुआ कि कथा की अखण्डता का बोध अक्षुण्ण रहा है और साथ ही वैविध्य और गति का मान बना रहा है।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की सफलता का मूल कारण यही नहीं कि इसमें कालिदास के माध्यम से आज के सृजनशील व्यक्ति की प्रतिभा से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया गया है या इसमें

टिप्पणी

सजन प्रेरणा तथा सृजन प्रक्रिया के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुत: इसकी लोकप्रियता का मूल कारण यह है कि 'आषाढ़ का एक दिन' में विविध प्रकार के पारस्परिक सम्बन्धों के माध्यम से प्रेम के अनेक रूपों को सम्प्रेषित किया गया है। प्रणयानुभूति के उल्लास, उमंग और करुणा को रंगमंच पर जितनी सघनता के साथ इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है अन्यत्र संभव नहीं हुआ इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि इस नाटक में करुण रस की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

'लहारों के राजहंस' में पार्थिव-अपार्थिव के द्वन्द्व को जहाँ मंच पर रखे दीपाधारों तथा सुन्दरी व बुद्ध जैसे प्रतीक पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। वहाँ सभी दृश्यबन्ध के मंचीय उपकरण भी इस उद्देश्य से रखे गए हैं। सुंदरी के प्रकोष्ठ में मदिरा कोष्ठ और श्रृंगार कोष्ठ के साथ झूले की योजना पार्थिव जीवन-मूल्यों को व्यक्त करती है।

राकेश ने दाम्पत्य प्रणय एवं शृंगार का जैसा निरुपण इस नाटक में किया है, हिन्दी रंगमंच पर अन्यत्र नहीं मिलता। सुन्दरी के शृंगार में नंद की तल्लीनता एक पूरी सच्चाई है किन्तु नन्द के व्यक्तित्व को अपने रूपासक्ति के घेरे में बांधकर रखने वाली सुंदरी यह स्वीकार नहीं करना चाहती कि नन्द की रचनाओं का घेरा व्यापक है, उसके और भी क्षितिज हैं। गौतम बुद्ध का आह्वान उसे भौतिक तल्लीनता से छिटकाता है। सुन्दरी के शृंगार में हृदय से सटाए दर्पण में जहां सुन्दरी की छाया थी। बुद्ध के आह्वान के पश्चात् वह धुंधला गई। सुंदरी स्पष्टताया के साथ उसमें अपनी छाया नहीं देख पाती और भाई गौतम बुद्ध की दूसरी प्रकार पर मोहासक्त नन्द की तल्लीनता टूट जाती है तथा हाथ से गिरकर दर्पण भी टूट जाता है। नाटककार राकेश ने मोहासक्त नन्द का मानसिकता का मंच पर परिवर्तन बहुत कुशलता से दिखाया है।

वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता के अनुसार इसमें कोई सन्देह नहीं कि बदले परिवेश में मध्य वर्ग के सामान्य और रोजमर्रा के अभावपूर्ण जीवन और आपसी तनावपूर्ण स्थितियों के बीच में से ही 'आधे-अधूरे' नाटक न लिया है।

प्रस्तुत नाटक के आरम्भ होने से पहले और समाप्त होने के बाद मानसिक तनाव और संघात दीख पड़ता है। इस आलोक में वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता के विचार मान्य हैं कि तनावपूर्ण विस्फोटक स्थिति के नाटक का आर होता है। बरसों से इस नाटक के पात्र इसी स्थिति को जी रहे हैं। बरसों से महेन्द्रनाथ से अपने आपको झटका की कोशिश में लगी सावित्री अन्तत: इस घर को छोड़ने का निश्चय कर ही लेती है किन्तु इस कोशिश उसकी असफलता और महेन्द्रनाथ का घर लौट आना तथा जीवन पर्यन्त इसी स्थिति को जीने के लिए विवश द्य दोना ही इस नाटक की त्रासदी है। इस विषाक्त वातावराण जीते हुए धीरे-धीरे झुरते जाना ही इस नाटक की नियति है। पति-पत्नी के तनाव के साथ-साथ स्वभाव में असन्तोष, विद्रोह और उच्छृखलता नाटकीय संघर्ष को तीव्र रूप देती है।

इस नाटक में समकालीन महानगरीय मध्यवीय जीवन में अनेक स्तरों पर चल रहे विविध तनावों को अभिव्यक्ति मिली है। इस नाटक में एक परिवार की कशमकश आपसी तनाव, टूटते सम्बन्धों का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। गिरीश रस्तौगी के अनुसार 'आधे अधूरे' में आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में बिखराव और संत्रास की कहानी है।

इस नाटक के सभी पात्र 'आधे-अधूरे हैं। पूरेपन की तलाश में वे तनावमय स्थिति में रहने को विवश हैं। गिरीश रस्तौगी का मत है कि यह नाटक आज के जीवन की मौजूदा विडम्बना की स्थिति को सामने लाता है। व्यापक दृष्टि से उसे टूटते-बिखरते, बिगड़ते, उलझते मानवीय सम्बन्धों की जटिलता का नाटक कह सकते हैं - "जहाँ हर व्यक्ति अपूर्ण और सम्पूर्णता की खोज में भटक रहा है लेकिन उस सम्पूर्णता के साथ ही उस आत्मीयता को पाना सभी के लिए मुश्किल है।

टिप्पणी

संवाद

'आषाढ़ का एक दिन' के संवाद भी परम्परा को ग्रहण कर उसे नया रूप देते हैं। 'प्रसाद' के नाटकों में सांस्कृतिक दीप्ति-सम्पन्न संवादों की जो परम्परा दिखलायी देती है। उसे मोहन राकेश ने इस नाटक से ग्रहण किया है किंतु उसकी भाववेगमयी गति छोड़ दी है। उसके स्थान पर घात-प्रतिघात शैली अपनाई है। इसलिए उनके संवाद दैनिक व्यवहार के अधिक निकट हैं और इसीलिए अपेक्षाकृत सहज भी है किंतु इस सहजता के साथ उसमें पैनापन और वेग बना रहा है।

गिरीश रस्तोगी के अनुसर इस नाटक के संवाद नाटकीय संवादों के सम्बन्ध में प्रचलित अवधारणा के आधार पर नहीं देखे जा सकते हैं, संवाद अभिनयात्मक हैं, संक्षिप्त हैं, चुस्त हैं या प्रवाहशील हैं बल्कि इन संवादों की सारी सुंदरता रचाव में है। इस नाटक के संवाद पात्रों के व्यक्तित्व के भिन्न स्तरों से अभिन्न रूप से जुड़े हैं, इसीलिए कहीं तेजी है, कहीं ठहराव, कहीं भावुकता है, कहीं कठोरता, कहीं द्वन्द्व तो कहीं यथार्थता का स्वर। मल्लिका के संवादों में निरन्तर समान गति, काव्यात्मकता का पुट और भावुकताभरी शब्दावली मिलेगी तो अम्बिका के संवादों में एक स्थिर सधा हुआ तीव्र स्वर और मातृ हृदय की पीड़ा से उत्पन्न कम्पन, कठोरता, वितृष्णा, व्यथा, चिंता, जड़ता का मिश्रित रूप, रंगिणी-संगिणी के संवाद उनका प्रियमुमंजरो के संवादों में अभिजात्य वर्ग के संस्कारों की शालीनता के साथ-साथ एक सी लय का उतार-चढ़ाव है। जैसा कि उसकी गतियों और एक्शन में भी। कालीदास की कोमलता, संवेदनशीलता, द्वंद उसके संवादों से पूरी तरह अभिव्यक्त होता है। दूसरी तरफ विलोम जब भी बोलता है तो उसके संवादों में एक खास तरह का लहजा है समयानुकूल रंग बदलने वाली व्यावहारिक दृष्टि के अनुकूल परिवर्तन और उतार-चढ़ाव है। रुकना, झटका, तेजी से बोल जाना, ये सब उसे स्पष्ट करते हैं। कालिदास और विलोम के संवादों में दो दृष्टियों का अन्तर साफ दिखायी देता है साथ ही दोनों का एक दूसरे से सम्बन्ध भी।

कहना न होगा कि 'आषाढ़ का एक दिन' में संवादों की यह स्वाभाविकता और वैशिष्ट्य न अनायास आयी है न सायास, यह पात्रों के अन्तर्मन तक उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की आन्तरिकता तक राकेश की पहुंच का स्वाभाविक परिणाम है। यह भाषा शक्ति की पहचान और शब्दों की आन्तरिकता की खोज है और वह नाटक की मौलिकता और आत्मा में प्रवेश और रंगमंच के यथार्थ की पकड़ का सफल परिणाम है। बिना 'अन्तर्दृष्टि' के ऐसे लगाव के साथ संरचना सम्भव नहीं हो सकती है। 'आषाढ़ का एक दिन' में चाहे कोई भी कमजोरी है लेकिन उसके संवाद अपनी नवीनता, विविधता और विशिष्टता में अप्रतिम हैं। इसके संवाद चारित्रिक विशेषताओं विशिष्टताओं या कमजोरियों को उजागर नहीं करते बल्कि नाटक की गति बनाए 'लहरों के राजहंस' में नन्द और सुन्दरी के संवादों में अभिन्य की पूरी छूट दी गयी है क्योंकि संत स्थिर या केवल भाषण शैली जैसे नहीं है वे तो सूक्ष्म मनरूस्थितियों को कहने वाले हैं। सुन्दरी अभिजात्य वर्ग दर्प को व्यक्त करने वाली टोन और लय में खास अन्ताज में फिर बहुत उतार-चढ़ाव में बोलती है। नन्द के संवादों में टोन और लय का उतना उतार-चढ़ाव नहीं वे अधिकतर धीमी लय और एक से स्वर के हैं क्योंकि वह रूप आकर्षण में बंधा और संशयग्रस्त हैं केवल तीसरे अंक में जहाँ उसके द्वन्द्व को चरम-सीमा कर दिखाया है। वहाँ लय और स्वर में तीव्रता है। छोटे-छोटे असम्बद्ध रुके-रुके टूटते से संवाद इस नाटक में ज्यादा हैं जो जटिलता को, उलझन के संकेत से व्यक्त करते हैं। ऐसे संवादों की गठन में पात्रों के मुख पर बदल से भाव, प्रश्न, स्थितियां आती चलती हैं। उदाहरणार्थ अलका के सम्बन्ध में सोचती हुई और बोलती हुई संदरी के संवाद पृ० (41) कहीं कहीं बड़ी कन्टीन्यूटी है संवादों में और वो पात्रों के स्वर का परिवर्तन में भी जैसे ख्र

सुन्दरीः इन सबसे कहने जाने की आवश्यकता आपको क्यों हुई?

टिप्पणी

क्या आप पहले से जानते थे कि वे लोग नहीं आयेंगे?

मैत्रेयः इसका उत्तर कुमार दे सकते हैं।

सुन्दरीः तो इन सबने सन्देशा भेजा था कि ये नहीं आयेंगे?

नन्दः सबने तो नहीं ..... पर इनमें कई लोगों ने सन्देशा भेजा था।

राकेश के संवादों में द्वन्द्व की मन्द और तीव्र लय पकड़ी है। तो प्रणय के क्षणों में रोमांस की लय को भी बड़ी सफलता से छुआ है। नन्द और सुंदरी जब भी निजी क्षणों में बातचीत करते हैं तो उन संवादों में आत्मीय क्षणों की आपसी सम्बन्धों की कोमलता, भावमयता और निजीपन है। उनकी भाषा, संवाद, योजना, नाटकीय दृष्टि और रंग चेतना का ही परिणाम है। - लहरों के राजहंस' के दूसरे अंक की शुरूआत नेपथ्य से आ रहे श्यामांग के स्वर से होती है कहाँ हूँ मैं? क्या हूँ मैं? इस ज्वर प्रलाप के ये प्रश्न मूलतः श्यामांग के न होकर नन्द के ही हैं क्योंकि अगले ही संवाद में नन्द कहता है कि ये स्वर मेरी चेतना पर भी पहरा दे रहे हैं।

यद्यपि इस नाटक में तनाव शिथिल और द्वन्द्व सूक्ष्म होने पर भी नाटकीय प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए रखन में संवादों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है क्योंकि उनका प्रयोजन कहीं भी घटनाक्रम का उन्मेष मात्र नहीं रहा। अनेक स्थलों पर संवादों में चारित्रिक सूक्ष्मता की अभिव्यंजना अत्यन्त प्रभावशाली रूप में हुई है। नाटक में नन्द के प्रवेश के साथ ही उसके संवादों से उसका दुविधाग्रस्त व्यक्तित्त्व उजागर होने लगता है। जब सुन्दा उससे पूछती है 'आप कुछ कह रहे थे' ? तो उत्तर में नन्द कहता है 'हाँ' 'नहीं' और जब पुनः सुन्दरी उसस पूछती हैष्आप कुछ कह रहे थेष? इसी प्रकार सुन्दरी का अहंकार उसके एक-एक शब्द से व्यक्त होता है। किंतु एक स्थान पर उसका अहम् एकदम उभर आता है जब वह आवेश में आकर मैं ... कि मैं कहने लगता हैः श्आपने यह नहीं सोचा कि मैं ..... कि मैं .....।"

वीरेन्द्रराज मेंहदीरत्ता के मत में 'आधे-अधूरे' नाटक में संवादों का बढ़िया चयन और रवानगी ने कम की स्वामियों की तरह चरित्र की घटनाहीनता और विकास के अभाव को अपने में समेटकर उन्हें अभिनेय बना दिया है। इसके संवादों और भाषा की प्रायः प्रत्येक आलोचक ने प्रशंसा की है। कहने में भी संकोच नहीं कि भाषा और संवादों के कारण इसके कथ्य और इसके शिल्प की सारी दुर्बलताएं छिप जाती हैं।

अभिनय

मोहन राकेश ने रंगमंच के सम्बन्ध में अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं उन्होंने नाट्यं कृति और रंगमंच को सही परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है।

इससे पूर्व नाटक के साहित्यिक रूप पर विशेस बल दिया जाता रहा किन्तु राकेश ने नाटककार का पालन्या रंगमंच से जोड़कर दोनों के अन्तर्सम्बन्ध पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। वे ये मानते हैं कि अब तक कार अपनी रचना प्रक्रिया को मंचीकरण की प्रक्रिया से अलग रखता है तब तक कृति मंच के अनुरूप नही होगी। ऐसी स्थिति में पाण्डुलिपि की मनमानी शल्य क्रिया आवश्यक हो जाती है जो नाटककार के को ठेस पहुंचाती है। इसलिए दोनों का एक धरातल पर आना अनिवार्य है यही नहीं वो इस बात को भी मानते हैं कि नाटक के मंचीकरण में नाटककार का महत्वपूर्ण योग होना चाहिए।

रंगमंच को लेकर के पिछले कुछ दशकों में जो प्रश्न उठाए गए हैं राकेश उनके प्रति कम जाकरूक नहीं थे। उदाहरण के लिए रंगमंच को दर्शक तक ले जाने या दर्शक को रंगमंच तक लाने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए, प्रयोगशील रंगमंच को आर्थिक संकटों के बीच किस तरह जीवित रहना चाहिए। सर्वांग और विसंगत रंगमंच की भावी सम्भावनाएं क्या हैं। इन विषयों पर उन्होंने यत्र-तत्र स्फुट

टिप्पणी

रूप में विचार किया है। राकेश की दृष्टि में हमें 'रंगमंच का विकास' मौलिक रूप से करना होगा। 'आषाढ़ का एक दिन' की भूमिका में उन्होंने इसी तथ्य पर बल देते हुए लिखा है, "हमारे देनन्दिन के जीवन के रागरंग को प्रस्तुत करने के लिए हमारे संवादों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है वो पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूप विधान नाटकीय प्रयोगों के आम्यंतर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं और दिग्दर्शकों के हाथों उसका विकास होगा। हिन्दी रंगमंच की दिशा का निर्देश करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है कि, "हिन्दी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा।

हिन्दी रंगमंच को मोहन राकेश ने एक नयी दिशा प्रदान की है। अपने नाट्य प्रयोगों में राकेश बहुत सफल रहे हैं। रंगमंच की दृष्टि से होने वाली भूलों से मोहन राकेश ने बचने का पूर्ण प्रयास किया है। आषाढ़ के 'दो शब्द' के माध्यम से नाटककार ने यह स्वीकार किया है, हिन्दी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परम्परा के साथ अनुस्यूत नहीं हैं। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धि ही हमारे सामने है। जीवनप्रकाश जोशी मानते हैं कि मोहन राकेश मौलिक महान नाटककार न होकर अपने समय का हिन्दी में सबसे तगड़ा प्रयोगधर्मी नाटककार है। नाटक और रंगमंच की सम्भावनाओं का प्रयोग मोहन राकेश ने किया है। उनके तीनों नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों के राजहंस', 'आधे-अधूरे' में यह स्पष्ट देखा जा सकता है। हिन्दी रंगमंच के आन्दोलन को विकसित करने में राकेश नाटकों का महत्वपूर्ण स्थान है। विशेष रूप से राकेश ने अपने नाटकों के द्वारा हिन्दी नाटक को रंगभाषा देने का महत्वपूर्ण स्थान है।

अंकों एवं दृश्यों के परिवर्तन के साथ अन्य नाटककारों की भांति मोहन राकेश के नाटकों के लिए रंगमंच पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं करना पड़ता। 'आषाढ़ का एक दिन के तीनों अंक सामान्य परिवर्तन के साथ एक ही रंगमंच पर खेले जा सकते हैं। रंगमंच पर किसी प्रकार का विशेष आयोजन नहीं करना पड़ता। अम्बिका का घर ही सम्पूर्ण नाटक की घटनाओं का केन्द्र है। वहीं पर सारी घटनाएं घटती हैं। अन्य दृश्यों और घटनाओं की सूचना मात्र रंगमंच पर प्रस्तुत की जाती है। इसलिए असम्भव दृश्यों से बड़ी बारीकी के साथ नाटककार बच निकलता है। इससे स्पष्ट है कि मोहन राकेश को रंगमंच का विशेष ध्यान था और नाटक की सच्ची परख रंगमंच पर ही संभव है। इस प्रकार राकेश ने अभिनव रंगमंच प्रयोगों के माध्यम से मोहन राकेश ने जिक एक रंगमंच प्रदान किया है जो उसका अपना है।

मोहन राकेश ने रंगमंच में शब्द की महत्ता स्वीकार करते हैं। इस नई दिशा को संकेतित करते हुए उनके लिखा है-ष्मुझे लगता है हमारे प्रयोगशील रंगमंच की वही दिशा हो सकती है वो दिशा रंगमंच के पास मानव पक्ष को समृद्ध बनाने की है यही रंगमंच में शब्दाकार का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है।

नाटक साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा जनमानस को अधिक आकर्षित करने का मूल कारण - है कि नाटक की अभिनेयता सामाजिक को अपने करीब लाकर उनके हृदय पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाली की जो नाटक अभिनय की दृष्टि से जितना अधिक सफल होगा उतना ही अधिक प्रभाव सामाजिक पर पड़ेगा। इस दृष्टि से हम 'लहरों के राजहंस' को देखते हैं तो सफल सिद्ध होता है क्योंकि इसमें नन्द का जंगल में आखेल करना, 'यामांग का कमल-ताल में पत्थर फेंकना, गौतम बुद्ध के पास नदी के किनारे नन्द का मुण्डित होता इत्यादि घटनाएं परोक्षरूप से घटित होती हैं। केवल उनकी सूचना रंगमंच पर संवाद या ध्वनि के माध्यम से ही जाती है। इस तरह दर्शक उन घटनाओं से परिचित हो जाता है। 'लहरों के राजहंस' का कथानक इतना सुगठित है कि दर्शकों को बोझिल नहीं होना पड़ता। इसके संवाद छोटे-छोटे और चुटीले होने के कारण नाटक की अभिनेयता में चार-चांद लग गया है। इसी प्रकार सुन्दरी द्वारा अलका से उसके तथा श्यामांग के प्रेम के विषय में पूछने परकृश्अलका का होंठ काटकर सिर झुका लेना या श्यामांग अपराध प्रसंग में नंद के पूछताझ करने पर सुन्दरी के एकदम

टिप्पणी

उत्तेजित और नाराज हो उठने पर नन्द का "पलभर चुपचाप उसे देखते रहना और फिर पास आकर उसके कन्धे पर हाथ रख देना' अपने आप में एक सशक्त अभिनय है जो शब्दों की अपेक्षा अधिक नाटकीय और अभिव्यंजनापूर्ण है।

मोहन राकेश मानते हैं कि वास्तविक अभिनय शब्दों का नहीं, 'शब्दों के बीच में होता है। वाक्य के बीच का रिक्त स्थान अभिकला को विस्तार देता है।

4.7 वस्तु संप्रेक्षण और रंग तंत्र पहचान

इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि राकेश का हर नाटक अपने ऐतिहासिक आवरण में भी आधुनिक जीवन की जटिलता, आज के मनुष्य की पीड़ा और अन्तर्द्वन्द्व को ही अभिव्यक्त करता है और अनुभव और यथार्थ को ही मुख्य आधार मानता है। राकेश ने अनुभूति की न्यूनता और अभिव्यक्ति की असमर्थता को ही कलाकृति की असफलता का मुख्य कारण माना है। अनुभूति ही रचना का प्रवाह है। यहीं वह यह भी स्पष्ट करते हैं कि 'एक कलाकृति के आन्तरिक गुण की पहचारन यह है कि उसमें सम्प्रेषणीयता कितनी है - वह एक अनुभूति को कितनी तीव्रता और कितनी ईमानदारी के साथ सम्प्रेषित करने में समर्थ है ..... मात्र सम्प्रेषणीयता ही कसौटी नहीं है कसौटी है मर्यादागत सम्प्रेषणीयता। नाट्य विधा के सम्बन्ध में सम्प्रेषणीयता का प्रश्न और बड़ा हो जाता है क्योंकि यह साक्षात्कार का प्रत्यक्ष माध्यम है स्पष्ट है कि राकेश ने अनुभूति को प्रमुख मानते हुए भी उसी अभिव्यक्ति को सार्थक माना है जो अपने नियंत्रण में रहकर अनुभूति को अपनी तीव्रता में अनुभव कर सके, वास्तविक प्रभाव को पैदा कर सके और यही 'सम्प्रेषण अनुभूति के साथ-साथ सम्प्रेषण' का भी महत्व हो जाता है।

राकेश से पहले बहुत समय तक हिन्दी नाटक समकालीन जीवानुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बन पाया था। मोहा राकेश ने नाटक के माध्यम से आधुनिक जीवन की विकट स्थितियों तथा मानव-मन की जटिलताओं को अभिव्यक्ति दी। सही अर्थों में हिन्दी नाटकों को रंगचेतना से अनुप्राणित करने का श्रेय मोहन राकेश को ही जाता है। राकेश के प्रयत्न से नाटक लेखन और रंगतंत्र का एक ऐसा सम्बन्ध बना कि जिससे नाटक की संरचना में आमूल परिवर्तन आया तथा हिन्दी नाटक को एक नया धरातल मिला। इसलिए एक । लोचक ने मोहन राकेश को हिन्दी नाटक का मसीहा तक कह दिया है।

मोहन राकेश की विशिष्टता नाटक की रचना प्रकिया और रंग प्रस्तुतीकरण प्रक्रिया में घनिष्ठ सम्बन्ध साने में है। आज यह स्वीकार किया जाने लगा है कि नाटक का मूल्यांकन उसे रंगमंच से अलग करके नहीं किया जा सकता। रंगतंत्र नाटक संरचना को नियन्त्रित करता है। इसलिए किसी नाटक रचना को समझने के लिए नाटककार की संच परिकल्पना का विश्लेषण आवश्यक है। युग विशेष की रंगोली प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप् मारक रचना को प्रभावित करती है। नाटककार के सामने जैसा रंगमंच होगा उसी की रंग-रूढ़ियाँ अनजाने ही नाटक संरचना का अंग बन जाएगी। भले ही नाटककार उनका विरोध ही क्यों न करे।

लेखक की रंग चेतना ने ही इस नाट्य रूप को नियोजित किया है। कथ्य सम्प्रेषण के लिए मोहन राकेश के रंग उपकरणों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। दृश्य बन्ध में प्रयुक्त सज्जा के उपकरण मध्यवर्गीय प्रवति को स्पष्ट करते हैं। शेरू में लिखा है रू-ष्एक चीज का दूसरी चीज से रिश्ता तात्कालिक सुविधा की मांग के कारण लगभग टूट चुका है फिर भी लगता है कि यह सुविधा कई तरह की असुविधाओं के समझौता करके की गयी है, बल्कि कुछ असुविधाओं में ही सुविधा खोजने की कोशिश की गयी है। यह रंग-संकेत नाटककार की रंगचेतना का परिचय देता है।

टिप्पणी

'आषाढ़ का एक दिन' की रंगसृष्टि भी नाटकीय अवधारणा के समान ही काव्यतत्व पर आधारित है। यही राकेश 'रंगमंच का कवि' लगता है। आषाढ़ के झरते मेघ, सुखाने के लिए फैलाये हुए गीले कपड़े, अम्बिका की ठोस और मल्लिका की तरल भाव-मुद्राएं, अनुस्वार और अनुनासिक की बनावटी भंगमाएं, ग्रामवासियों का भेला देहातीपन और राजपुरुषों के दर्पपूण चेहरे और अन्ततः दीपक की लौ में डूबा सब चेहरो में मल्लिका का एक चेहरा ऐसे दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करता है जो रंगमंच की कविता रचते हैं। राकेश ने रंगमच की यह कविता सामान्य क्रिया-व्यापारों और भावों के द्वारा भी रचकर दिखाई है। उदाहरण के लिए अम्बिका का सूप से अनाज फटकना एक ऐसा ही सहज व्यापार है जो उसकी मनोदशा को व्यक्त करता है। इसी प्रकार मल्लिका कालिदास की पाण्डुलिपियां इकटठी करती है और इस आकांक्षा से कि वह उस पर महाकाव्य लिखे और कोरे पन्नों को संजोकर रखती है किंतु कालिदास देखता है कि उन कोरे पन्नों पर आंसू, स्वेद कणों, नखों, सीलन ने समय की कविता लिख डाली है। इस प्रकार इस नाटक की सबसे बड़ी शक्ति उसके प्रतीक और बिम्ब विधान में आंकी जा सकती है।

'आषाढ़ का एक दिन' की नाटक को सफलता का श्रेय नाटककार की रंगचेतना को देना होगा। रंगतत्र के सभी उपकरणों का ऐसा सटीक प्रयोग इस रचना में हुआ है कि उसकी प्रत्येक स्तर की प्रस्तुति एक निश्चित प्रभाव छोड़ जाती है। रंग चेतना नाटक रचना का अभिन्न अंग बनकर आई है। कथ्य और रंगशिल्प के अपूर्व समीकरण द्वारा नाटक समचित प्रभाव डालने में सफल होता है। निरूसन्देह 'आघाढ़ का एक दिन' हिन्दी नाटक साहित्य में दिशा संकेत देने वाली रचना है।

'लहरों के राजहंस' नाटक में जिस खूबसूरती से रंग उपकरणों की सहायता से मूल द्वन्द्व को सम्प्रेषित करने में रंगयक्ति का प्रयोग किया है वैसा पहले नहीं किया गया। ये दोनों दीपाधार नाटक के मूल द्वंद के साथ दी मूलभूत टकराती जीवन-दृष्टियों तथा पात्रों की प्रतीकात्मकता को भी स्पष्ट करते हैं।

मोहन राकेश रंगतंत्र और रंग संकेत की गहरी पहचान को भी व्यक्त करते हैं। नन्द के लौट आने पर अलका शृंगार कोष्ठ के पास से टूटा दर्पण हटाना चाहती है किंतु हटा नहीं पाती। जब भी सुन्दरी का मन डोलने लगता है वह झुले के पास होती है या झूले पर बैठती है अथवा उसमें सो रही होती है। इसी प्रकार निर्देशक सारे नाट्य व्यापार तथा गति संचार की योजना दृश्यबन्ध के इन उपकरणों के सन्दर्भ में करता हुआ नाटक के संवेद्य को अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से सम्प्रेषित कर सकता है।

निष्कर्षतः मोहन राकेशने भारतीयों की तत्कालीन रंगस्थिति को ध्यान में रखकर यथार्थवादी शिक्षा स्वीकार किया। इन्होंने अपने नाटकों में जिस तरह के प्रयास किए। इसी प्रक्रिया ने इनके रंगशिल्प को दिया। राकेश ने यथार्थवादी रंगशिल्प की सीमाओं से जूझते हुए ऐसी नाट्य भाषा की तलाश की जिससे पी शब्दों के द्वारा व्यापक जीवनानुभूति की अभिव्यक्ति मिल सके।

मोहन राकेश ब्रेवथ के रंगमंच संस्कृत रंगविधान से परिचित न थे ये उनका चुनाव था कि उनके नाटक भारतीय रंगभवनों की वस्तुस्थिति के अनुरूप होंगे तभी वे नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किए जायेंगे ओर ऐसा ही हुआ मोहन राकेश ने जिस तरह से अपने शिल्प को अर्जित किया। निजी अनुभवों को पात्रों के माध्यम से व्यास करना हिन्दी नाटकों में शुरू नहीं हुआ था। मोहन राकेश की रोमांटिक अनुभूतियाँ ही उनकी अभिव्यक्ति है। मूल प्रेरणा प्रणय सम्बन्धों में रही है। राकेश ने अपने समकालीनों के नाटक देखे। उनसे बहुत कुछ अर्जित किया और कुछ को अस्वीकार किया। लक्ष्मी नारायण लाल ने उस समय ढेर सारे प्रयोग किए। गिरीश कर्नाड ने भी लोकनाट्य के प्रयोग किये। मोहन राकेश की रंगभवनों की वस्तुस्थिति के प्रति जागरूकता ही इनके रंगमंच सम्बंधी चिंतन का परिणाम है।

मोहन राकेश का रंगमंच सम्बन्धी चिंतन बहुत सहज अनुभव है। आषाढ़ का एक दिन में अपेक्षाकृत अधिक कठिन शब्द हैं। लहरों के राजहंस की धारणा अलग हो गई है। सही मायनों में जो सोच विकसित

टिप्पणी

हुई वह 'आधे-अधूरे' में हुई है। (अपने शब्द) इसी प्रकार 'लहरों के राजहंस' में श्यामांग का प्रलाप रंगानुभूति को गहरा कर देता है। प्रतिभावान निदेशक और रंगकर्मियों तथा अभिनेताओं को अपने जीवन की सार्थकता का आभास देने का मौका राकेश के नाटक अवश्य देते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' की अपेक्षा 'लहरों के राजहंस' विशिष्ट रंगानुभूति प्रदान करते हैं अपने युग की मानसिकता के बदलते तेवर को नाटकीय संदर्भो में पकड़ने का प्रयत्न राकेश ने इसमें सार्थक ढंग से किया है।

4.8 नाट्यभाषा के विविध पक्षों की पहचान

मोहन राकेश के समस्त नाट्य लेखन को बदले और निरन्तर बदलते हुए मानवीय सम्बन्धों के संदर्भ में सही नाटकीय शब्द की तलाश कहा जा सकता है। नाटक में शब्द की उचित एवं सार्थक जगह खोजने की जैसी छटपटाहट, बेचौनी और प्रयोगधर्मिता राकेश में है वैसी अन्य किसी नाटककार में नहीं है। राकेश जानते हैं कि केवल शब्द अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं हैं। उनका आसपास के शब्दों से सम्बन्ध और सन्दर्भ ही उन्हें अर्थपूर्ण बनाता है।

लहरों के राजहंस की भाषा राकेश के अपने व्यक्ति नाटक की वस्तु, चरित्र, वातावरण तथा रंगमंचीय रुढ़ियों औरआज के दर्शक पाठक की मानसिकता के भीतर रूप ग्रहण करती है। राकेश के ही पहले दो नाटकों और तीसरे नाटक की भाषा का अन्तर इसी सत्य को रेखांकित करता है कि राकेश ने भाषा के संदर्भ में अपने व्यक्तित्व के मुकाबले नाटक की आंतरिक अपेक्षाओं को अधिक महत्व दिया। मोहन राकेश मानते हैं कि वास्तविक अभिनय शब्दों का नहीं शब्दों के बीच में होता है।

संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग

'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'लहरों के राजहंस' नाटक ऐतिहासिक कथ्य पर आधारित है। गुप्तकालीन और बौद्धकालीन वातावरण के निर्माण के लिए इन नाटकों में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है। ऐतिहासिक वातावरण को उभारने के लिए आषाढ़ का एक दिन में 'तल्य', 'आस्तरण', 'प्रकोष्ठ' इत्यादि और 'लहरों के राजहंस' में 'आसाब', 'चन्दनलेप' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस नाटक में पात्रों के नाम बौद्धकालीन हैं - मैत्रेय, अग्निवर्मा, लोहिताक्ष, 'लिमित्र इत्यादि इन नाटकों की भाषा साहित्यिक होते हुए भी सुबोध है।

पात्रानुरूप शब्द

पात्रानुरूप शब्दों या भाषा का आशय उस पात्र के प्रदेश, वर्ग के अनुसार भाषा का प्रयोग तथा संवादों उनके चरित्र को उभार देना मात्र नहीं है। पात्रानुसार भाषा का अभिप्राय: यह भी है कि पात्रों द्वारा प्रयुक्त पल उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अनुरूप हो। मोहन राकेश के पात्रों द्वारा प्रयुक्त शब्द और संवादों की लय उनके व्यक्तित्व एवं चरित्र को स्पष्ट करती है।

'आषाद का एक दिन' में आद्यान्त संवाद पात्रों के व्यक्तित्व के भिन्न स्तरों से भिन्न रूप से जुड़े हैं। जैसे मल्लिका के संवादों में उसकी भावुकता के अनुरूप काव्यात्मक शब्दावली है इसीलिए मल्लिका-"वंचित .... सहलाती मेघ रोम सीजना जैसे शब्दों का प्रयोग अधिक करती है। विलोम के संवाद उसका व्यक्तित्व उभारने के साथ-साथ कालिदास का चरित्र भी उदघाटित करते जाते हैं। प्रियंगुमंजरी की भाषा उसकी अहम्वादिता के अनुरूप है।

'लहरों के राजहंस' की भाषा पात्रों के चरित्रों की परिचायक है। एक विद्वान के अनुसार 'अनेक स्थलों पर संवादों में चारित्रिक सूक्ष्मता की अभिव्यंजना अत्यन्त प्रभावशाली रूप में हुई है। नाटक में नन्द के प्रवेश के साथ ही उसका दुविधाग्रस्त व्यक्तित्व उजागर होने लगता है .... इसी प्रकार सुंदरी का अहंकार

टिप्पणी

उसके एक-एक शब्द से व्यक्त होता है। सुंदरी का विश्वास है - 'नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है' उसे अपने सौन्दर्य पर इतना गर्व है, इसी सौन्दर्य से वह नन्द को बांधे रखना चाहती है।

मौन

संवादों के बीच मौन का नाटकीय उपयोग शब्दों से भी अधिक अर्थवान होता है। शब्दों के बीच की निरूशब्दता उत्सुकता बढ़ाती है। राकेश के विचार में मौन नाटकीय तनाव को वहन करने के साथ-साथ पहले तथा बाद के शब्द में सेतु का कार्य भी करता है तथा अर्थ की विभिन्न परतें खोलने वाला होता है। इन्होंने अपने नाटकों में मौन का रंगमंचीय प्रयोग किया है।

'आषाढ़ का एक दिन' में मौन पात्रों की मन: स्थितियों को समझने, उनकी वेदना को गहराने तथा तनाव को व्यक्त करने में सहायक है। प्रथम अंक में मल्लिका अम्बिका से उसकी उदासी का कारण पूछती है तब अम्बिका उसे स्थिर दृष्टि से देखती रहती है फिर आंखे नीचा करके कहती है "अग्निमित्र आज लौट आया है। चुप रहने के बाद अग्निमित्र को लौट आने की बात कहने से आशंका होती है कि वह कोई सन्तोषजनक उत्तर लेकर नहीं आया।

'लहरो के राजहंस' में मौन भी पात्र की मनरूस्थिति के परिचायक हैं। इस नाटक में नाटककार ने लम्बे मौन की योजना न करके समस्या नाटकों की तरह संवादों के मध्य 'डाट्स' द्वारा क्षणिक विराम की योजना की है। श्यामांग, नंद और संदरी के संवादों के मध्य 'डाट्स' की योजना द्वारा उनके द्वन्द्व, पीड़ा और उलझन को व्यक्त किया है।

'आधे-अधूरे' में भी मौन नाटकीय स्थिति के प्रभाव को गहराते हैं। तनाव की चरम परिणाम के समय निरूशब्दता की स्थिति गहरा प्रभाव छोड़ती है। सावित्री जगमोहन के साथ जाती है तत्पश्चात् कुछ क्षणों के लिए मंच खाली रह जाता है। छोटी लड़की रोती हुई आती है - थोड़ी देर ठहरती है और रोते-रोते अन्दर चली है मंच कुछ क्षण फिर खाली रह जाता है। यह सीन या जड़ता स्थिति के सूनेपन, उजड़ेपन को गहराना और उसका अनुभव प्रेक्षकों को करवा देती है। छोटी लड़की अपने पास बहुत सी चीजो के न होने की शिका करती है - तब खामोशी फैल जाती है जिससे निम्नमध्यवर्ग की आर्थिक स्थिति के यथार्थ का एहसास।

शब्देत्तर सम्प्रेषण के माध्यम

कोई भी नाटक केवल छपे हुए पृष्ठों पर समाप्त नहीं हो जाता बल्कि वह रंगमंच पर ही सम्पर्णता करता है। समस्त रंगमंचीय संयंत्र और उपकरण, दृश्यसज्जा, पात्रों की वेशभूषा, उनकी हरकतें तथा मिला सम्प्रेषण में सहायक होती है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में इन शब्देत्तर-सम्प्रेषण के माध्यमों का सनियोजित प्रयोग किया है। राकेश रंगमंच में गहरी दिलचस्पी रखते थे उनके अनुसार हिन्दी रंगमंच का विकास तभी दो जब वह भारतीय परिवेश और रंगधर्मिता के अन्दर के रूप लेगा।

4.9 हरकत की भाषा

संवादों के साथ-साथ उनके अनुरूप कार्य-व्यापार योजना ही नाटक को वास्तविक स्वरूप देती है। पात्रों की शारीरिक क्रियाएं, मुद्राएं, भंगिमाएं भाव-सम्प्रेषण में सहायक हो सकती है। राकेश की नाट्य भाषा की पहली पहचान शब्दों और शारीरिक क्रिया का गहरा सम्बन्ध है। संवाद और कार्य-व्यापार का जैसा सुन्दर समन्वय राकेश के नाटकों में मिलता है। वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

टिप्पणी

राकेश के पात्रों की हरकतें उनके व्यक्तित्व के अनुरूप हैं। यथार्थवादी अम्बिका सदैव कार्यरत रहती है। मल्लिका की भंगिमाओं से उसका चांचल्य प्रकट होता है तो सुंदरी का कार्य-व्यापार उसके रूप-गर्व एवं अहंकार को व्यक्त करते हैं। सावित्री की चाल-ढाल से उसकी खीझ, बेचौनी, घुटन व्यक्त होती है। राकेश ने पात्रों के कार्य व्यापार द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति करवायी है।

'लहरों के राजहंस' के पात्रों के कार्य-व्यापार उनके आन्तरिक भावों को सम्प्रेषित करने वाले हैं। नाटक के आरम्भ में अलका का एक बार श्यामांग को देखना फिर प्रयत्नपूर्वक सुंदरी की बात पर ध्यान केन्द्रित करना उसके श्यामांग के प्रति प्रेम-भाव को व्यक्त करता है। इसी प्रकर सुन्दरी का झूले को हिलाना उसके अनिश्चिय और मानसिक हल-चल का सूचक है।

हरकत की भाषा का सबसे अधिक प्रयोग 'आधे-अधूरे' में किया गया है। नाटक के आरम्भ में पात्रों के तनाव को व्यक्त करने के लिए शब्दों की अपेक्षा शारीरिक क्रियाओं का आश्रय ही अधिक लिया है आर लम्बे-लम्बे निर्देश आंगिक अभिनय के लिए दिए गए हैं। आग्रह और नाट्यान्विति से स्वतंत्र काव्यबिम्बास मुक्ति के लिए भीषण संघर्ष करती दीखती है।

'आषाढ़ का एक दिन' का सबसे सबल पक्ष ऐसी नाट्य भाषा की खोज है जो क्लासिक नाटकों का मार के करीब पड़ते हुए भी आम लगने लगती है। ऐसी भाषा जो मात्र पाठ्य नहीं है वरन् उच्चारण के स्तर पर न सहज लगती है। ऐसी भाषा जो पाठ्य और उच्चरित भाषा के व्यवधान को तोड़ती है। मोहन राकेश ने प्रसाद ही भाषा व्यवहार के सूत्र लेकर उन्हें मांजा, चमकाया और अपने नाटकों की संवादयोजना में एक रवाना । सकने में सक्षम हो सके।

संवादों की भाषा तो इस बात की साक्षी है कि नाटककार ने प्रसाद की भाषा के आदर्श को अपना प्रकृति के अनुरूप बनाकर ग्रहण किया है। जिस युग की कथावस्तु इस नाटक में है उसका प्रभाव उत्पन्न लिए मोहन राकेश ने उस युग के कुछ भाषा संस्पर्श इसमें रखे हैं फिर भी भाषा की संरचना समग्रत: संस्कृत दावली से आक्रांत नहीं है। तत्सम और तद्भव शब्द हिन्दी की अपनी प्रकृति के अनुसार घुले मिले हैं। कहीं-कहीं तो वाक्य रचना पर अंग्रेजी का प्रभाव भी दिखलायी दे जाता है। इस नाटक की भाषा को लक्षण व्यंजना से बहुत बल मिला है। लाक्षणिक प्रयोगों के कई रूप यहाँ देखने को मिलते हैं। प्रथम अंक में 'भूमि' और 'सूत्र' शब्दों का जो प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है। उसके मूल में लक्षणा शक्ति है, क्रिया प्रयोगों में भी अनेक भानों पर लाक्षणिक वक्रता दिखलायी देती है। लक्षणामूलक व्यंजना का चित्रात्मक प्रयोग इस नाटक में एकाधिक स्थान पर मिलता है और व्यंजना की भूमि अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है।

इस प्रकार नाट्य भाषा को स्वरूप देने से मोहनराकेश का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। इन्होंने ही नाट्य भाषा सम्बन्धी चिंतन आरम्भ किया। आगे के नाट्य साहित्य पर इस चिंतन का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। हिन्दी नाटक और रंगमंच के विकास में इनके नाटकों का महत्वपूर्ण योगदान इनकी नाटय भाषा के कारा ही है। निष्कर्षत: हरकत की भाषा के प्रति सचेतता भी राकेश के नाट्य चिंतन का परिणाम है।

4.10 प्रेषक संदर्भ और नाट्य संरचना

किसी भी नाटककार को नाटक का सृजन करते समय प्रेक्षक सचेतना का ध्यान रखना पड़ता है। 'लहरों के राजहंस' नाटक में सुंदरी के सौंदर्य से सम्मोहित नंद का तत्काल बौद्ध भिक्षु के रूप में लौटना और सुंदरी से उसके 'रूप और गर्व' और व्यक्तिगत सुख-कामना को अपने भिक्षा-पात्र में डाल देने की निर्द्वन्द्व याचना करना तथा सुंदरी का भिक्षुओं के समवेत स्वर में अन्तत: अपना स्वर भी मिला देना

टिप्पणी

परिणति की दृष्टि से अतिनाटकीय ही नहीं अकलात्मक भी बना देता है। इस दृष्टि से राकेश यहाँ इतिहास की यथातथ्यता से आक्रान्त दिखाई देते हैं। नन्द और सुंदरी के चरित्रों की रूपरेखाएं यहाँ काफी स्थूल हैं और रंग अत्यन्त चरख, उनमें अपने पद-प्रतिष्ठा और व्यक्तित्व के अनुकूल मर्यादा, गरिमा और अभिजात्य का अभाव है। नंद और सुंदरी अपने व्यवहार में फिल्मी नायक और नायिका प्रतीत होने लगते हैं। इस प्रकार नाटककार को प्रेक्षकों की तरफ से सचेत रहना पड़ता है।

4.11 नाटकीय संरचना

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक की संरचना अधिक जटिल और कठिन होती है क्योंकि नाटककार को केवल पाठक का ही नहीं, अभिनेता, रंगशाला और दर्शक का भी ध्यान रखना पड़ता है। वाल्टेयर के अनुसार नाटक की सफलता बहुत कुछ उसके विषय पर निर्भर करती है। इस दृष्टि से सुंदरी नंद और गौतम बुद्ध से रची-बुनी 'लहरों के राजहंस' की कहानी न केवल रोचक और आकर्षक है बल्कि अत्यंत नाटकीय और उत्तेजक भी है। तीन अंकों और नन्द के भवन में सुन्दरी के कक्ष के एक ही दृश्य बन्ध वाले नाटक का संरचना और शिल्प के स्तर से हिन्दी नाटकों में अपना विशिष्ट और निश्चित स्थान है क्योंकि यह नाटक एक विशेष रचना-पद्धति और शिल्प-विधान के अनुसार सुसंगठित और तर्कसंगत, रूपबंध का निर्माण करता है।

परन्तु जयदेव तनेजा के अनुसार गौतम और नंद के बीच जो कुछ भी हुआ उसकी चार बार पुनरावृत्ति नाटक की संरचना को शिथिल ही नहीं करती उस घटना के तीव्र नाटकीय प्रभाव को भी नगण्य बना देती है। तनेजा जी के विचार से एक ही बात बार-बार ठीक उसी रूप में कहलवाकर नाटककार ने भयंकर भूल की है यदि उस पूरी घटना को चारों स्थानों पर तोड़ कर अंशों में व्यक्त किया होता तो जिज्ञासा और नाटकीयता बनी रह सकती थी। इस प्रकार प्रत्येक पात्र अपने सीमित सत्य को ही प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार से 'लहरों के राजहंस' के श्यामांग का प्रलाप रंगानुभूति को गहरा कर देता है। प्रतिभावान निर्देशक और रंगकर्मियों तथा अभिनेताओं को अपने जीवन की सार्थकता का आभास देने का मौका राकेश के नाटक अवश्य देते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' की अपेक्षा 'लहरों के राजहंस' विशिष्ट रंगानुभूति प्रदान करते है अपने युग की मानसिकता के बदलते तेवर को नाटकीय संदों में पकड़ने का प्रयत्न राकेश ने इसमें सार्थक ढंग से किया है।

निष्कर्षत: नाटक रचना के समय नाटककार जितना अपने प्रेक्षकों की उपस्थिति के सम्बन्ध में सचेत होगा उतनी ही नाट्य प्रस्तुति प्रभावपूर्ण होगी। प्रेक्षकों के प्रति सचेतता नाट्य संरचना को प्रभावित करती है। मोहन राकेश का नाट्य शिल्प के प्रति चिंतन ही इस सजगता का कारण था।

निष्कर्ष यह है कि नाटकों की रचना प्रक्रिया में रचनाकार को रचना में निस्संग होना पड़ता है। रचना कौशल के प्रविधान पर ही विशेष श्रम करना पड़ता है।

राकेश के नाटकों में परिवेश इस दृष्टि से सक्रिय है कि आज के युग में व्यक्ति के ऊपर सामूहिक परिवेश का बहुत बड़ा दबाव है। राकेश के नाटक समूह की इसी भूमिका के विरुद्ध व्यक्ति को स्थापित करते हैं। पर व्यक्ति परिवेश के नीचे दबा लगता है। 'लहरों के राजहंस' में नन्द और सुंदरी समूह की शक्ति को महसूस करते हैं जब कोई भी अतिथि कामोत्सव में उपस्थित नहीं होता। 'आषाढ़ का एक दिन में ग्रामीण समाज का सारा सत्त्व कालिदास के विरूद्ध है और उज्जयिनी में जाकर तो परिवेश ही उसकी विनाशकारी स्थिति का कारण बनता है। व्यक्ति और समाज का ही नहीं, व्यक्ति का, निजी सम्बन्ध भी एक परिवेश का निर्माण करता है। 'आधे-अधूरे' में यही परिवेश अधिक मुखर है जो व्यक्ति

टिप्पणी

के कार्य-कलाप को नियंत्रित करता है। इस तरह नाटक के ऐतिहासिक परिवेश और चिन्तन को लेकर राकेश का चिंतन बिल्कुल मौलिक होता है।

मोहन राकेश के सभी नाटक इसके प्रमाण हैं कि मनुष्य और जीवन यथार्थ को उसकी सामाजिक परिस्थितियों के परिपार्श्व में परखने आंकने का आग्रह मोहन राकेश में बराबर रहा। मोहन राकेश में यथार्थ की परख जितनी गहरी होती गयी है। उनकी रचना-दृष्टि में उतनी ही अधिक प्रामाणिकता भी आती गयी है। यथार्थ की एक पकड़ और प्रामाणिकता के कारण क्रमशः उनकी भाषा और अभिव्यक्ति में भी एक परिवर्तन आता गया है। 'आषाढ़ का एक दिन' से लेकर 'छतरिया' तक यह रचनादृष्टि स्पष्ट लक्षित होती है।

मोहन राकेश उन साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने जिन्दगी को बहुत गहराई से महसूस किया है। उन्होंने एक प्रामाणिक जिन्दगी भोगी थी साथ ही उन्हें एक संवेदनशील और भावप्रवण हृदय भी मिला था। वैसे तो किसी भी रचनाकार के लिए रचना ही मूल लक्ष्य होती है। राकेश की दृष्टि भी रचनाकार की है। पर रचना के अन्दर ही सत्य की तलाश उनमें सर्वत्र दिखाई देती है। मोहन राकेश कहीं-कहीं अपने नाटकों में दार्शनिक मुद्रा धारण कर लेते हैं पर यह दार्शनिक मुद्रा उनकी रचना-दृष्टि की देन है।नाटकों में विचार भी हैं और अनुभूति भी पर अलग-अलग तत्वों के रूप में नहीं। दोनों का समन्वय उनकी रचना-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है।

वस्तुतः मोहन राकेश ने नाट्य लेखन और चिंतन के नए आयाम खोजे हैं। यद्यपि इनसे पूर्व उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीश चन्द्र माथुर आदि नाटककारों ने भी नाटक और रंगानुभूति का समन्वय किया तथा नाटक के लिए रंगजागरूकता पर विशेष बल दिया है किन्तु मोहन राकेश के नाटक रंग परम्परा से पूर्णतः अनुस्यूत है और उनका नाट्य चिंतन भी रंगमंच की चेतना से पूर्णतः अनुप्राणित है।

मोहन राकेश ने यथार्थवादी शिल्प स्वीकार किया।

4.12 प्रश्नबोध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' और कालिदास मेघदूत में समानता तथा भिन्नता को स्पष्ट कीजिए।**
2. **'साहित्य इतिहास के समय से बँधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है।' कथन से मोहन राकेश का क्या तात्पर्य है?**
3. **इतिहास एवं मिथक का समालोचनात्मक विवेचना कीजिए।**
4. **चारित्रक परिकल्पना और संरचना की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' की विवेचना कीजिए।**
5. **मोहन राकेश ने अपने नाटकों में घात-प्रतिघात की शैली को अपनाया है। सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **'मिथ अण्ड रियेलिटि' के लेखक कौन हैं?**
2. **तिलकराज शर्मा ने 'आषाढ़ का एक दिन-रात' रचना का मूलाधार किस रचना को बताया है? वह रचना किस कवि की है?**

टिप्पणी

3. नाटय वस्तु और विन्यास शिल्प क्या है? मोहन राकेश ने अपने नाटकों में नाटय वस्तु और विन्यास शिल्प को किस प्रकार मान्यता दी है?

4. चारित्रिक परिकल्पना और संरचना की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटकों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

5. मोहन राकेश की नाटयभाषा के विविध पक्षों को प्रकट कीजिए।

♦♦♦♦♦

इकाई 5

मोहन राकेश का नाट्य चिंतन और कला

संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 कहानी साहित्य
5.3 उपन्यास साहित्य
5.4 निबंध साहित्य
5.5 यात्रा विवरण, संस्मरण, डायरी और अनुवाद साहित्य
5.6. नाटक एवं एकांकी साहित्य
5.7. मोहन राकेश के नाटकों में जीवन सत्य
5.8 मोहन राकेश के नाटकों में अस्तित्ववादी चिंतन
5.9 मोहन राकेश के नाटकों में साहित्यिक चिंतन
5.10 नाटककार और रंगमंच
5.11 नाटक रचना प्रक्रिया
5.12 नाटक भाषा योजना
5.13 मोहन राकेश के नाटक
5.14 आषाढ़ का एक दिन
5.15 लहरों के राजहंस कथा वस्तु का क्रमिक विकास
5.16 आधे अधूरे
5.17 पैर तले जमीन
5.18 प्रश्नबोध

5.1 प्रस्तावना

कुछ लोगों की जिन्दगी में बिखराव होता है। मैं अपने को ऐसे ही लोगों में पाता हूँ। बिखरना और बिखेरना मेरे लिए जितना स्वाभाविक है, सम्भलना और समेटना उतना ही अस्वाभाविक।" - मोहन राकेश

मोहन राकेश के इस आत्मकथन से लगता है कि उनका जीवन बेतरतीब रहा होगा लेकिन उनके साहित्य से ऐसा आभास नहीं मिलता। इसलिए समीक्षक कहानी सार कमलेश्वर का कहना है -

"बड़ी बेतरतीब जिन्दगी है मेरे दोस्त की, पर सतह से नीचे उतरते ही एक जबरदस्त अनुशासन दिखाई पड़ता है, वह अनुशासन है दिमाग और से जन का ऊपरी जिन्दगी में वह जितना असंगठित और बिखरा हुआ दिखाई देता है, उतना ही संगठित और व्यवस्थित है-उसके लेखन की प्रक्रिया जितनी बेतरतीबी है मसल मसलकर वह सिगरेट के टुकड़े जगह-जगह फेंकता है, उतने ही करीने से वह अपने विचार और अनुभवों को सजाता है।"

अत: राकेश जी के भीतर का कलाकार सदा सजीव एवं सजग रहता है, इसी कारण उनका साहित्य की सजीव एवं सप्राण है। एक नाटककार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति मिली। आधुनिक नाट्य जगत में उन्हें नाटक का मसीहा कहा जाता है। राकेश जी ने यद्यपि कोई नाट्य दिशा-निर्देश नहीं दिए, फिर भी यह सत्य है कि काव्य तत्वों और साहित्यिक गुणों से सम्पन्न हिन्दी नाटक को सरलतम रंगमंच तक लाने का श्रेय मोहन राकेश को ही दिया जाएगा। आज जो रंगमंच उपलब्ध है उस दृष्टि से मोहन राकेश का व्यक्तित्व निश्चय ही प्रसाद जी से बहुत आगे है, क्योंकि इनके नाटकों में कोरा बौद्धिक-विलास, कामजन्य कुष्टाएँ और समस्याओं का चित्रण नहीं है, बल्कि एक सफल रंगमंच नाटक में जो अपेक्षित सामग्री है, वह इनमें है।

लेखक के रूप में मोहन राकेश की प्रतिभा का प्रथम स्फुटन कहानी के रूप में ही संभव हो सका। कहानीकारों के रूप में मोहन राकेश एक ओर प्रेमचन्द और पुराने कहानीकारों के छोर पर का सस्पर्श करते हैं तो दूसरी ओर उन्हें नई कहानी के प्रस्तोता का महत्व भी प्राप्त है। कहानी के बाद वे उपन्यास रचना के क्षेत्र में आए। उसके बाद ही उन्होंने नाटक, एकांकी नाटक और निबन्ध रचना जैसे अन्य विध ात्मक साहित्यिक रूपों को अपनाकर एक कुशल कलाकार की चहुँमुखी प्रतिभा का परिचय दिया, यों तो उनकी लेखन (कहानी लेखन) प्रतिभा का प्रस्फुटन उनके विद्यार्थी काल में ही हो चुका था, किंतु प्रकाश में वे प्राध्यापक बनने और इसे छोड़ने आदि के बाद ही आ सके। जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है, कहानी के अतिरिक्त राकेश के उपन्यास, नाटक, एकांकी निबंध आदि रचे हैं, जबकि उनकी प्रतिभा का मान-नाटककार के रूप में ही प्रतिष्ठित हो सका।

राकेश के साहित्य पर यहाँ हम संक्षेप में विचार करेंगे।

5.2 कहानी साहित्य

मोहन राकेश 'नई कहानी' के दौर में आए। उन्होंने अपने अध्ययन काल में ही कहानी लिखना आरम्भ कर दिया था। कमलेश्वर का मानना है कि राकेश जी की सर्वप्रथम लिखित कहानी नन्हीं और पहली प्रकाशित कहानी शिभक्षु' है। इन दोनों कहानियों में राकेश जी की ज्वलन्त साहित्यिक माया के अग्नि बीज मौजूद हैं। वास्तव में उनका कहानीकार के रूप में व्यक्तित्व सर्वाधिक प्रखर एवं मौलिक हैं। उन्होंने निम्नलिखित कहानी-संग्रह हिन्दी कथा-साहित्य को प्रदान किएं हैं

टिप्पणी

कहानी संग्रह	प्रकाशन वर्ष
1. इन्सान के खण्डहर	1950 ई०
2. नए बादल	1957 ई०
3. जानवर और जानवर	1958 ई०
4. एक और जिन्दगी	1961 ई०
5. फौलाद का आकाश	1966 ई०
6. आज के साए	1967 ई०
7. मेरी प्रिय कहानियाँ	1971 ई०
8. चेहरे तथा अन्य कहानियाँ	1972 ई०
9. क्वार्टर और अन्य कहानियाँ	1972 ई०
10. वारिस तथा अन्य कहानियाँ	1972 ई०
11. पहचान तथा अन्य कहानियाँ	1972 ई०

राकेश जी के प्रथम कहानी संग्रह श्इन्सान के खण्डहर' में लेखक का ध्यान अभिजात वर्ग और मध्यम वर्ग की घटी हुई चेतना पर गया है। प्रस्तुत संग्रह की कहानियों में जहाँ शोषित और श्रमिक वर्ग के प्रति सहानभति है तो वहीं धनिष्ठ वर्ग के प्रति आक्रोश का उगलता हुआ लावा है। अन्य कहानी-संग्रहों में भी लेखक की इसी भावना का विकास होता गया। उपर्युक्त कहानी संग्रहों में संकलित श्मिस पाल', 'मलबे का मालिक', भखे', 'क्लेम', 'जानवर और जानवर', 'परमात्मा का कुत्ता', 'सुहागिन', 'एक और जिन्दगी', 'मवाली', 'फौलाद का आकाश', 'आद्रा' आदि कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में चर्चा का विषय रही हैं।

5.3 उपन्यास साहित्य

मोहन राकेश कहानीकार की भाँति ही उपन्यासकार के रूप में भी सजग और यथार्थवादी रहे हैं। सर्वप्रथम उन्होंने श्स्याह और सफेद' नामक उपन्यास था, किन्तु उसे प्रकाशित नहीं करवाया। उन्होंने निम्न उपन्यास हिन्दी जगत को दिए हैं

1. अंधेरे बंद कमरे	1961 ई०
2. न आने वाला कल	1962 ई०
3. अन्तराल	1972 ई०
4. कांपता हुआ दरिया	
5. स्याह और सफेद	
6. नई एक अकेले	

'अंधेरे बंद कमरे' राकेश का प्रसिद्ध एवं प्रथम उपन्यास है इसे कई दृष्टियों से उनकी प्रतिनिधि रचना भी कहा जाता है। समीक्षाओं का विचार है कि प्रस्तुत उपन्यास में उनका व्यक्तित्व अपनी अधिकांश इकाई के साथ आया है। श्न आने वाला कल' में राकेश जी ने निजी अनुभवों का काफी उपयोग किया है। 'अन्तराल' उपन्यास की कहानी भी मानवीय संबंधों की कहानी है।

5.4 निबंध साहित्य

राकेश जी ने निबंध क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का प्रमाण दिया है। अपने निबंधों में उन्होंने अनवरत गतिशील एवं परिवर्तनशील जीवन और उसके भाव-बोध को बड़ी ही पैनी दृष्टि से पकड़ने का सफल प्रयास किया है। अपनी सर्जनाओं की भूमिका के रूप में उन्होंने कुछ आलोचनात्मक निबंध तो रचे ही हैं, इसके अतिरिक्त भी उनका निबंध साहित्य उपलब्ध है। राकेश जी के निबंध साहित्य में निम्न रचनाएं विशेष उल्लेखनीय है

1. परिवेश
2. रंगमंच और शब्द
3. साहित्कार की समस्याएं
4. कुछ और अस्वीकार
6. नई निगाहों के सवाल: हाशिए पर अप्रकाशित

5.5 यात्रा - विवरण, संस्मरण, डायरी और अनुवाद साहित्य

अपने शैशव काल से राकेश रंगीन मिजाज के रहे हैं, वे घुमक्कड़ी प्रवृति के थे। उन्होंने अनेक यात्राआ भी की थी। यात्राओं में उन्होंने प्रकृति एवं जीवन का जिस प्रकार का अनुभव किया, उन सबका वर्णन उनके यात्रा-विवरणों, संस्मरणों, डायरी और आत्मकथा के रूप में उपलब्ध है।

यात्रा-वत्त 1. आखिरी चट्टान तक
2. पडझड़ का रंगमंच
3. ऊँची झील

डायरी 1. व्यक्तिगत
2. आत्मकथा

अनुवाद 1. शाकुन्तल
2. एक औरत का चेहरा

5.6 नाटक और एकांकी साहित्य

राकेश जी आधुनिक नाटक के मसीहा हैं। उन्हें देश-दिश में सर्वाधिक प्रतिष्ठा नाटककार के रूप में ही प्राप्त हो सकी है। उनके व्यक्तित्व का सारा द्वन्द्व और उनका जागरूक चेतन नाटकों में ही सर्वाधिक प्रखरता के साथ रूपाचित हो सका।

राकेश के नाटक अधिकांशत: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचे गये हैं। उपर उनका अन्तराल,उनका भाव बोध जितना ऐतिहासिक है, उससे भी कहीं अधिक आधुनिक है। 'आधे-अधूरे' तो समग्रत: आधुनिक भाव-बोध से संयत नाटक ही है, यद्यपि उसकी मूल चेतना और समस्या को हम चिरन्तन भी कह सकते हैं। ऐतिहासिकता के संदर्भ में राकेश का अपना विचार एवं कथन विशेष उल्लेखनीय है। उनका कहना है

"इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्ति का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं बना देता। इतिहास तथ्यों का संकलन करता है, उन्हें एक समय तालिका में प्रस्तुत करता है। साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं रहा। इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलबध क्षेत्र नहीं है। साहित्य इतिहास

टिप्पणी

के समय में बाधा नहीं, समय में इतिहासकार विस्तार करता है, युग से युग को अलग नहीं करता, कई-कई युगों से एक साथ जोड़ देता है। इस तरह इतिहास के श्आज' और श्कल' उसके लिए श्आज' और श्कल' नहीं रह जाते समय की असीमितता में कुछ ऐसे जुड़े हुए क्षण बन जाते हैं जो जीवन को दिशा संकेत देने की दृष्टि से अविभाज्य हैं।"

वास्तव में ये सारी बातें राकेश के अपने नाटकों में पूर्णतया चरितार्थ होती हैं। राकेश जी ने केवल तीन ही नाटक लिखे हैं।

1. आषाढ़ का एक दिन
2. लहरों के राजहंस
3. आधे-अधूरे

हमारी प्रस्तुत रचना एवं आलोचना का मुख्य विषय राकेश के 'लहरों के राजहंस' नाटक का समग्र कन करना ही है, पर लेखक समग व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सम्पूर्ण झांकी पाने की दृष्टि में यहाँ अन्य नाटकों का संक्षिप्त आंकलन भी दिया जा रहा है।

आषाढ़ का एक दिन

केश जी का यह पहला और प्रसिद्ध, चर्चित नाटक है, चर्चा का मुख्य विषय इसमें प्रयुक्त कालिदास रित चित्रण है। कालिदास जैसे चरित्र पर लिखना स्वयं में एक कठिन कार्य है। यहाँ नाटककार का उदेश्य कालिदास के माध्यम से एक ऐसे सर्जव का चित्र प्रस्तुत करता है जिसके अपने द्वन्द्व होते हैं। महाकवि का कहना नाटक का उद्देश्य नहीं है। एक क्रांति को प्रतीक रूप में व्याख्याचित करना राकेश का प्रमुख प्रतीत होता है, इसीलिए ऐतिहासिक पात्रों के साथ यहाँ कल्पित पात्र भी हैं, जो पुराने पात्र हैं, जैसे स्वयं लिदास, उन्हें भी आज की पृष्ठभूमि में रखकर देखा गया है। मल्लिका के कथन से नाटक का आरम्भ होता -- आषाढ़ का एक दिन और ऐसी वर्षा माँ-ऐसी धारासार वर्षा-दूर-दूर तक की उपत्यकाएं भीग गयीं और मैं भी तो, देखो न माँ कैसी भीग गयी हूँ।" 'आषाढ़ का एक दिन' आधुनिक संदर्भ को व्यक्त करता है। कालिदास की प्रिया मल्लिका कालिदास के चले जाने पर यातना में डूब जाती है। नाटकांत में करूण यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।

लहरों के राजहंस

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का दूसरा नाटक है। यहाँ नाटककार ने नंद और सुन्दरी और गौतम बुद्ध नामक ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से प्रवृति और निवृति मार्गों के बीच युगों-युगों से मानव की दन्द्वग्रस्त चेतना को उजागर किया है। दूसरे शब्दों में श्आषाढ़ का एक दिन' का कालिदास ही यहाँ नंद बनकर आया है। विरक्ति एवं पलायन का भाव-रूप यहाँ भी 'आषाढ़ का एक दिन' के समान विद्यमान है। 'लहरों के राजहंस' का अत्यन्त संक्षेप में कथानक केवल इतना ही है कि तथागत (गौतम बुद्ध) अपने नाई नंद के द्वार से बिना भिक्षा पाए ही लौट जाने से बाध्य हुए, क्योंकि उनकी पुकार से वहाँ कोई सुन न पाया। पता चलने पर क्षमा याचना के विचार से नन्द तथागत के पास गया। उसकी सुन्दर पत्नी सुन्दरी उसकी अनवरत प्रतीक्षा करती रही। नन्द कुछ देर के लिए लौट कर आया, पर वह नंद नहीं जो कि गया था, बल्कि एक दूसरा प्रव्रज्याग हीत नंद घर आया और चला भी गया। सुन्दरी के लिए सारा सुखद अतीत एक सपना या कपोल-कल्पित तथ्य मात्र बनकर रह गया। स्पष्ट है कि एक क्षण की चूक ने तथागत नंद के द्वार से भिक्षा पाए बिना ही लौट लौट गए-विलासी नंद और उसकी गर्विणी पत्नी सुन्दरी के समस्त जीवन की धारा ही बदल डाली। इस एक क्षण को ही नाटककार मोहन

टिप्पणी

राकेश ने श्लहरों के राजहंस' नाटक के बड़े ही सजीले, नाटकीय एवं जैसे भोगे हुए क्षण के रूप में चित्रित करके उभारा है।

'लहरों के राजहंस' नाटक में अन्तर्द्वन्द्व चिरन्तन मानवीय द्वन्द्व के रूप में चित्रित हुआ है। नाटककार यह मानकर चला है कि द्वन्द्व का एक क्षण ही जीवन की समूची आस्थाओं में आमूल-चूल परिवर्तन ला देने के लिए पर्याप्त हुआ करता है। बाकी सारी स्थितियाँ तो मात्र गुजरने के लिए हुआ करती हैं। इन्हीं सब कारणों से इन लहरों के राजहंस' नाटक को राकेश के पहले नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की अगली कड़ी माना है दाना के मूल संबंध में वास्तव में कोई भी मौलिक अन्तर नहीं। फिर दोनों के पात्र परिवेश, कथा एवं कथानक समान रूप से ऐतिहासिक भित्तियों पर भी अंकित किए गए हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' में यदि कालिदास के साथ विलोम भी है, तो लहरों के राजहंस में नंद के साथ श्यामांग भी है। विलोम और श्यामांग दोनों उलझे और खड़ हुए व्यक्तित्व होते हुए भी वास्तव में सुलझाव और अन्त: संयोजना करते हैं। दोनों ही वास्तव में विराधा-अवरोधों के सन्दर, सजग एवं सजीव प्रतीक हैं। उतने ऐतिहासिक सत्य नहीं, जितने प्रतीक। इस दृष्टि से श्लहरों के राजहंस' के समग्र रूप को हम एक ऐतिहासिक मिथक ही नहीं, बल्कि युग-युगों की दल चेतना के संदों में एक समग्र प्रतीक एक समूचा बिम्ब कह सकते हैं। यही इस दूसरे नाटक की वार सफलता एवं सार्थकता है।

आधे अधूरे

राकेश का यह तीसरा और अंतिम नाटक है। इस नाटक का कथ्य अपने आप में चिरन्तन प्रश्नों एवं सत्यो को संजोए रखते हुए भी पूर्ववर्ती दोनों नाटकों से सर्वथा भिन्न है। इसे आधार-भत्ति वर्तमान से भोगे जारू जीवन को बनाया गया है, न कि अतीत अथवा इतिहास को। आप का जीवन जिन अनेक प्रकाश की विसंगतियों के फलस्वरूप अधूरेपन की अनुभूतियों से भर चुका है। विशेषत: अर्थ और काम से लेकर, उन्हीं से यह जीवन्त पात्रों के माध्यम से रूपाकार प्रदान करने की सफल चेष्टा की गई है। यहाँ एक ऐसे परिवार का वर्णन किया गया है जो अपने आप में आश्वस्त नहीं है। उसके सामने जीवन का कोई प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट लक्ष्य नहीं है। अत: सम्पूर्ण परिवार ही एक प्रकार की हीन-ग्रंथियों से ग्रसित होकर एक विचित्र-सा अधूरा और अपरिपन्द-सा व्यवहार करता हुआ दिखाई देता है। अत: रूपाकार की दृष्टि से यह पूर्णत: यथार्थवादी है।

अण्डे के छिलके, अन्य एकांकी एवं बीज नाटक

राकेश के मरणोपरान्त इसका प्रकाशन हुआ है। इसमें संकलित 'शायद' और श्हाँ' दो एकांकी नाटकों स्वयं नाटककार ने बीज नाटक नाम से अभिहित किया है। इसी में संकलित श्छतरिया' नामक रचना से पार्श्व नाटक के नाम से अभिहित किया गया है। इसमें चार एकांकी थी संकलित हैं - 'अण्डे के छिलके', 'सिपाही की माँ', 'प्यालियाँ टूती हैं', 'बहुत बड़ा सवाल' आदि।

अत: राकेश जी ने व्यवहार-जगत के समान साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग किए। इसे एक विचित्र संयोग ही कहा जाएगा कि उनके प्रयोग व्यवहार-जगत में उतने सफल न हो सके जितने कि साहित्य जगत में। अत: वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

5.7 मोहन राकेश के नाटकों में जीवन सत्य

हिन्दी नाटक के क्षेत्र में मोहन राकेश का योगदान अविस्मरणीय है। राकेश जी ऐतिहासिक, पौराणिक, आधुनिक, सामाजिक नाटक लिखने वाले एक समर्थ कलाकार हैं। उनके प्रत्येक नाटक में द्वन्द्व व सत्य उद्घटित होता है। राकेश कृत आषाढ़ का एक दिन हिन्दी नाटक यात्रा में नाटयकृति का एक ऐसा पड़ाव है जहाँ से न केवल राकेश की रचना यात्रा आरंभ होती है बल्कि हिन्दी के मूल नाटक का श्रीगणेश

टिप्पणी

भी होता है। हिन्दी नाट्य जगत और रंग जगत की सारी जड़ता और प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ने वाला यह नाटक राकेश की भारतीयता और आधुनिकता हमारे अपने परिवेश में से ही समस्याओं से उत्पन्न द्वन्द्व की खोज निकालने की आकुलता को प्रत्यक्ष सामने लाती है।

आषाढ़ का एक दिन के कथानक का सम्बन्ध कवि कालिदास के जीवन से है। उसकी प्रेयसी गाँव का एक सीधी-सादी भावुक, प्रेममयी और सम्पूर्ण समर्पण की भावना से युक्त लड़की मल्लिका है। इसका प्रम निश्छल और अनश्वर है। यह प्रेम पवित्र भूमि पर अवस्थित है। इसका प्रमाण है कि मल्लिका कालिदास के व्यक्तित्व को अधिक पूर्ण देखने की आकांक्षा रखती है। अपना सर्वस्व समर्पित करके वह कालिदास को महान् कवि के रूप में देखती है और एक तरह से पूरे नाटक पर उसी का कोमल समर्पणशील व्यक्तित्व छा जाता है।

दूसरी तरफ कालिदास की रचनात्मक प्रतिमा का मूल प्रेरणा मे मल्लिका कहीं न कहीं बैठी हुई है। कालिदास के माध्यम से वर्तमान की स्थिति पर ध्यान देते हुए राकेश ने दिखाना चाहा है कि एक सृजनशाल कलाकार किस तरह व्यवस्था द्वारा कुचल और तोड़ दिया जाता है। आज के मूल्य बोध से युक्त असाधारण कवि या साहित्यकार न व्यवस्था को एकदम छोड़ पाता है और न उससे समझौता करते हुए चल पाता है। कालिदास का अर्न्तद्वन्द्व और टूटन आज के साहित्यकार का द्वन्द्व और पीड़ा है।कालिदास के टूटे हुए व्यक्तित्व में हम राकेश के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब देख सकते हैं, सत्य यह है कि कालिदास के चरित्र चित्रण में स्वयं राकेश की उनके अपने व्यक्तित्व की द्वन्द्वी शंकाओं और प्रश्नों की अभिव्यक्ति हुई है।

मोहन राकेश की नाट्य यात्रा का दूसरा पड़ाव है ऐतिहासिक आख्यान पर आधारित लहरों के राजहंस अश्वघोष के महाकाव्य सौदरानंद से कथानकीय उपजीत्य लेकर उसकी कथावस्तु का नाटकीय पुनराख्यान किया गया है। इसमें आधुनिक जीवन का पर्याप्त भावबोध है। नाटक में पारिवारिक सुख लिप्सा और आरोपित आध्यात्मिकता के आपसी विरोध के बीच खड़े एक व्यक्ति के निर्णय एवं चयन के द्वन्द्व को जीवन्तता प्रदान करना नाटक में एक प्रयास जान पड़ता है। एक स्त्री और पुरुष के आपसी सम्बंधों के संघर्ष और अन्तर्विरोध में इस द्वंद को देखा जा सकता है।

"नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है और उसका आकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"

'लहरों के राजहंस' की आधुनिकता बौद्धकालीन ऐतिहासिक परिवेश पर आधारित है। नंद और सुंदरी का नाटक में जिस रूप में प्रस्तुतिकरण हुआ है वह सर्वथा आधुनिक है।

"नंद का अन्तर्द्धद, तनाव, अस्थिरता, घुटन और जीवन जगत में उसकी आसक्ति, उसका उतार-चढ़ाव आधुनिक मनुष्य की स्थिति और उसकी नियति का प्रमाणिक दस्तावेज है।"

सिद्धार्थ का सौतेला भाई नंद गौतमबुद्ध के सिद्धान्तों से अधिक अपने बड़े भाई से प्रभावित है एक तरफ उसे सुंदरी का अनुपम सौंदर्य अतिशय अनुराग में बांधता है; दूसरी ओर अपने बड़े भाई के प्रति आदर और सम्मान उसे खींचता है सुंदरी और सिद्धार्थ के बीच आकर्षणों में खड़ा नंद का अन्तद उसे तोड़ देता है। उसका यही टूटना आज के मनुष्य के टूटने की संवेदना है।

आधुनिक हिंदी नाटक साहित्य की परिसम्पदा की श्रीवृद्धि में मोहन राकेश प्रणीत आधे-अधूरे नाटक उनकी तीसरी एवं एक जबरदस्त कड़ी है। यह नाटक एक मध्यवर्गीय परिवार के विघटन और स्त्री-पुरुष के संघर्ष के बारे में है। इस नाटक में सावित्री नामक स्त्रीअपने पति महेंद्र से असंतुष्ट है और अपने लिए एक पूर्ण आदमी की तलाश में है और उसका यह दर्द उसके इस कथन से प्रदर्शित होता है जब वह कहती है कि सब के सब एक जैसे हैं, अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा सब का एक है। आधे-अधूरे

टिप्पणी

का सर्वाधिक महत्व उसके भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है। नेमिचन्द्र जैन के विचार में आधे-अधूरे का महत्व यह है कि वह आज के यथार्थ को सीधे पेश करता है; अतीत की किसी कथा के माध्यम से नहीं। नाटक में व्यक्ति के अपने भावबोध उसके जीवन और उसके परिवेश को एक सार्थक सत्य से साक्षात्कार प्राप्त हो सका है।

अत्यन्त छोटे-छोटे संवादों बल्कि बिन्दुओं के माध्यम से बात की गंभीरता को व्यक्त करने की क्षमता के साथ यह नाटक पूर्ण नहीं बल्कि प्रारंभिक अधूरेपन के साथ उनकी कलम से जन्म लेकर पाठकों के बीच आया अपनी अंतरंगता का पूरा विश्वास रखकर कमलेश्वर जी ने इस अपूर्ण कार्य को पूरा करने का साहस जुटाया। मोहन राकेश की सहधर्मिणी अनीता राकेश ने स्वयं स्वीकार किया है -ष्अपने भीतर व पैर तले की जमीन के रिहर्सल ही नहीं, पूरा नाटक पूरी साज-सज्जा के साथ अंतिम रूप से खेल चुके थे-एक माने में अब केवल टाइपराइटर पर कागज चढ़ाकर उसे उतारना ही बाकी था और विश्वनाथ जी को उसे प्रकाशनार्थ दे देना/अन्य नाटकों की तरह इस मन की उलझनों और बिखराव का प्रतिफल है-"पैर तले की जमीन, नाटक में उन्होंने मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों को अपने पात्रों के माध्यम से उजागर किया है-अबदुल्ला अत्यंत द्वंदग्रस्त पात्र है आधे-अधूरे की भाँति पैर तले की जमीन भी अस्त-व्यस्त, हड़बड़ाहट, बेचौनी, खालीपन, तथा चारों ओर के बिखराव से आरम्भ होता है।

नाटककार अयूब के माध्यम से कहता है उधर ... मुझे एक और चाहिए। और .... जो मौत के खतरे के बावजूद मेरा ..... साथ दे सके। मुझे। नहीं समझे ..... कोई बात नहीं। इस प्रकार मोहन राकेश का प्रत्येक नाटक जीवन के कटु सत्य को उद्घाटित करता है जो आज के जीवन का यथार्थ है।

मोहन राकेश अपने नाटकों में जीवन के जिन सत्यों का उद्घाटन करते हैं; उनके वह मात्र द्रष्टा और श्रोता ही नहीं भोक्ता भी है। सामाजिक भौतिक, बौद्धिक, उपयोगितावादी और उपभोक्तावादी उपसांस्कृतिक मूल्यों की स्वीकृति के कारण मानव जीवन बिखराव, टूटन, घुटन, ताव और संत्रास झेलने को अभिशप्त के किन्तु इनकी मुक्ती प्राप्त करने में भी मनुष्य असमर्थ है। क्योंकि वह उपभोक्तावाद का शिकार तो है ही, संघर्ष शक्ति में भी रहित है। वह चाहकर भी उक्त मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर पाता है और उन्हें मानवीय अस्मिता की रक्षा करते हुए मानवीय मूल्यों से सम्पृष्ट नहीं कर पाता है।

5.8 मोहन राकेश के नाटकों में अस्तित्ववादी चिन्तन

मानव अस्तित्व क्या है? किस प्रकार का है? किस सीमा तक का है? ईश्वर है या नहीं? आस्ति-नास्ति के द्वन्द्व से ही अस्तित्ववादी विचारधारा का जन्म हुआ, किसी ने ईश्वर को नकारा, किसी ने स्वीकारा, यहीं से अस्तित्व का इतिहास आरम्भ हुआ। यूँ तो संसार में प्रत्येक जीव-जन्तु, वनस्पति का अपना अस्तित्व है, किन्तु विवेच्य अस्तित्ववाद का सम्बन्ध आम व्यक्ति के अस्तित्व से है। व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता तथा विचारधारा को सुरक्षित रखना चाहता है। इस चाहत के परिणामस्वरूप ही अस्तित्ववादी विचारधारा का जन्म हुआ।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में मोहन राकेश के नाटकों का मूयांकन करते हुए उन्हें अस्तित्ववादी चिन्तक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। चिन्तन का यह स्वरूप पाश्चात्य चिन्तन से आयातित नहीं है वरन् भारतीय पृष्ठभूमि पर अपने वर्तमान में भोगी गयी त्रासदी से उत्पन्न है जो मोहन राकेश को पाश्चात्य चिन्तकों से जोड़ने वाला और बहुत करीब है।

टिप्पणी

साहित्य अवलोकन

"मैं तुम्हारा किसी का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता।"- 'लहरों का राजहंस- मोहन राकेश 2005 (राजकमल प्रकाशन) विवेच्य नाटक में पात्र नंद का यह कथन अस्तित्ववादी सोच को परिभाषित करता है। मैंने अपना नाम खोकर एक विशेषण उपार्जित किया है और मैं नाम नहीं केवल विशेषण हूँ" आषाढ़ का एक दिनश्दृमोहन राकेश 2005 (राजपाल प्रकाशन) मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' प्रमुख पात्र कालिदास में उपरोक्त कथन अस्तित्ववादी चिन्तन को ही रेखांकित करती है।

मेरी कामना मेरे अन्तर की है मेरे अन्तर में ही उसकी पूर्ति हो सकती है बाहर का आयोजन मेरे लिये इतना महत्व नहीं रखता, जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।' 'आधे-अधूरे' मोहन राकेश 2009 (राधाकृष्ण प्रकाशन)। उपरोक्त पंक्तियाँ मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आधे-अधूरे' की हैं जो कि स्त्री-पुरुष संघर्षों का जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है।

मोहन राकेश के नाटकों में आधुनिक बोध-डॉ० सी० विश्वनाथन, 2017 (अमल प्रकाशन, कानपुर)। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने आधुनिक भावबोध के अन्दर अस्तित्ववादी चिन्तन को ही विशेष रूप से प्रकट किया है।

विषय विस्तार

अस्तित्ववाद एक मानव केन्द्रित विचारधारा है जिसका आरम्भ पश्चिम में हुआ। यूँ तो भारतीय दर्शन में भी आत्मा-परमात्मा पर चिन्तन कर शरीर की नश्वरता को स्वीकारा गया है। यह चिन्तन मानव अस्तित्व से ही सम्बन्ध है, किन्त पश्चिम में अस्तित्ववादी विचारधारा के जन्म का मुख्य कारण महायुद्धों की विभीषिका से सकता और निस्सारता थी। वैज्ञानिक शास्त्रों के सहारक अम्बार ने मनुष्य को बौना बना दिया। अपने से निर्मित पुर्जी के आगे मनुष्य असहाय हो गया। नीत्शे ने ईश्वर के मृत्यु की घोषणा की। वस्तुतः ईश्वर कीमत्य का आशय परम्परागत नैतिक मूल्य और सड़ी गली मान्यताओं से था जो समाज के लिये थे। और होचकी थी। सोरेन कीर्केगार्द से लेकर अल्वेयर कामू तक ने अपने चिन्तन को अस्तित्ववाद की वैचारिक भूमि पर प्रस्तुत किया।

सोरेन की गार्द को अस्तित्ववादी विचारधारा का जनक माना गया है, तत्पश्चात जर्मनी, फ्रांस और रूस अनेक चिन्तको ने इस विचारधारा की पुष्टि की, इन्होंने माना कि भय, कष्ट, पीड़ा, अपराध भावना, संघर्ष, असन्तोष और मृत आदि बिन्दुओं का चरम विस्तार सार्वभौमिक है और इसका प्रभाव घातक है। मानव इससे पलायन नहीं कर सकता। महायुद्धों की विभीषिकाओं से उत्पन्न पीड़ा और असहाय अवस्था ने इस विचारधारा को जन्म दिया। युद्धों में संलग्न रहने वाले देशों के साथ-साथ दूसरे देशों के भी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल्यों में बदलाव आया।

आस्था, अविश्वास और मूल्य संक्रान्ति ने व्यक्ति को एकाकीपन अजनबीपन और कुण्ठाओं की पीड़ा में अकेला छोड़ दिया। द्वितीय महायुद्ध ने एक बार फिर जीवन की निस्सारता और थोथेपन का अहसास कराया। वैज्ञानिक विकास के नाम पर संहारक शस्त्रों के अम्बार के आगे मनुष्य बौना हो गया, जिससे उसकी सुरक्षा को ही नहीं मानवीयता को भी खतरे मे डाल दिया, जिसके कारण उसकी रही सही मान्यतायें भी हिल गयीं। टूटन और अस्थिरता के मध्य जो शेष रहा वह अव्यवस्था का एहसास था, जिसके बीच व्यक्ति घिर गया। यहीं से मानव अस्तित्व के आगे एक प्रश्नचिन्ह लग गया। इसी निराशा में कीर्केगार्द एक शती के बाद मसीहा नजर आने लगा। साहित्य या दर्शन कोई उसके प्रभाव से नहीं बचा। इसी परिवेश का भोगते हुये नीत्शे और दास्तोवस्की ने उसे आधुनिक भाव-बोध से जोड़ा, जो आगे चलकर यास्पर्स, हेडेगर, मार्शल, अलवेयर, कामू, काफ्का, सार्च और वर्दिएफ के दर्शन का प्रस्थान बिन्दु बना यही चिन्तन अस्तित्ववाद कहलाया।

टिप्पणी

अस्तित्ववाद के प्रभाव से विसंगत वादी नाटकों का जन्म हुआ, यद्यपि विसंगत नाटकों की जड़े उन्नीसवीं सदी के नाटकों में ही पड़ गई थी, किन्तु 1950 के आस पास से यह विसंगत नाटयधारा अपनी तीव्रगति से प्रवाहमय हुयी।

पश्चिम से विसंगत नाट्य लेखन के वैचारिक संकट का द्योतक माना गया, क्योंकि उन्होंने यह अनुभूत किया कि मनुष्य की सहायता न तो विज्ञान कर सकता है और न ही परम्परा से चले आ रहे सड़े-गले जीवन मूल्य। उन्होंने शाश्वत सुनिश्चित नैतिकता को भी नकार दिया और माना कि कुछ भी पूर्व निर्धारित नहीं है. मनुष्य का स्वयं अपने होने को परिभाषित करना है, जिस जगत में वह है वह प्रयोजनहीन है, जिसमें वह असहाय और अकेला है। इसी पीड़ा से मनुष्य की निर्थकता और नास्तिभाव को सिद्ध करता है। विसंगति नाटक का यही दर्शन है। सन् 1945-1965 के काल खण्ड में लिखे गये नाटकों ने परम्परागत मूल्यों का विरोध करते हुये जीवन को विसंगति का पर्याय माना और अस्तित्व की विरूपता को स्वीकार किया।

भारत में फ्रांस-जर्मनी, रूस जैसी परिस्थितियाँ तो उत्पन्न नहीं हुयीं किन्तु इस काल खण्ड के साहित्य में इस चिन्तन का भी कुछ निर्णायक रहा। वहीं भारत में भी हिन्दी कविता कहानी ने इस विसंगतावादी भूमि पर अपने चिन्तन को रोपा, जबकि नाट्य विधा सामाजिक यथार्थ से जुझती रही। यह निश्चित है कि जब दो धाराये मिलती है या एक दूसरे से सम्पर्क में आती हैं तो नये रंग उभरते हैं। जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण लाल, जगदीश चन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती और मोहन राकेश ने हिन्दी नाट्य धारा के विश्व की विराट चेतना में समन्वित कर नवीन कलेवर प्रदान किया। साहित्य पूर्व का हो या पश्चिम का उसका जुड़ाव मुख्य रूप से मनुष्य से होता है। भारत में यह चिन्तन कतिपय बदलाव के साथ कभी विसंगतवाद कभी नवस्वच्छन्दवाद तो कभी व्यक्तिवाद के रूप में जाना गया। इसे कभी दादावाद तो कभी व्यक्तिवाद कहा गया, किन्तु ने एक ऊँची छला. के साथ नाट्य साहित्य को पाश्चात्य से जोड़ दिया।

मोहन राकेश के मूल चिन्तन का आधार पाश्चात्य जगत में व्याप्त निराशा नहीं वरन स्वतंत्रता के पश्चात देश में व्याप्त मुद्रास्फीति महंगाई, भ्रष्टाचार, कालाधन, लूटखसोट और बेरोजगारी के नारों ने एक ऐसी स्थिति खड़ी कर दी, जहाँ व्यक्ति के अस्तित्व के आगे प्रश्न चिन्ह लग गया। कई प्रश्न उभरकर सामने आये। भारतीय चिन्तकों ने स्वीकार किया निर्माण हुआ बड़े-बड़े भवनों का, सरकारी और अर्द्धसरकारी संस्थाओं समीतियों और आयोगों का कारखानों और मशीनों का, बाँध और विकास योजनाओं का और शासकीय शब्दकोशों का इस निर्माण की सतह से नीचे इंसान का जो रूप सामने आया वह बहुत ही विकृत था लगा कि आसपास के बड़े-बड़े परिवर्तनों के साये में लोग निरन्तर पहले से छोटे और कमीने होते जा रहे हैं।

जिन्दगी का सारा अन्दरूनी ढाँचा भुरभुरी मिट्टी की तरह झडता-ढहता जा रहा है। स्पष्ट है कि विश्वयुद्धों के परिणामस्वरूप जो नपुंसकता और निस्सारता पश्चिम की मिली वही मानसिकता टूटन भारत को स्वतंत्रता के बाद मिली। ऐसी स्थिति में अस्तित्ववादी विचारधारा उर्वर सिद्ध हुयी न केवल कविता और कथा साहित्य इससे प्रभावित हुआ वरन् नाटय साहित्य भी इससे अछूता न रहा।

मोहन राकेश के चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन', 'लहरों का राजहंस', 'आधु-अधूरे' व पैर तले की जमीन' अस्तित्ववादी चिंतन का दृष्टांकन करने वाले नाटक हैं। चाहे आषाढ़ का एक दिन का कालिदास हो या लहरों का राजहंस का नंद हो याआधे-अधूरे का महेन्द्रनाथ। ये सभी पात्र अपने-अपने अस्तित्व की तलाश में भटक रहे हैं। नंद का सिर मुंडवाकर बौद्ध धर्म स्वीकार करना, कालिदास का राजसी ठाट-बाट छोड़कर मल्लिका के पास लौटना ये सभी उदाहरण मोहन राकेश के अस्तित्ववादी सोच को ही प्रकट करते हैं।

टिप्पणी

पश्चिम में विकसित हुई अस्तित्ववादी चिन्तनधारा के पीछे जो भी कारण रहे हो किन्तु भारतीय परिवेश में उसका व्यापक प्रभाव देखा गया। वैसे तो हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में अनेकानेक रूपों में यह चिन्तन देखने को मिलता है, लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात हिन्दी नाटककारों ने विशेष रूप से इस चिन्तन पर मनन किया, चाहे उसके कारण जो भी हो। विशेषकर मोहन राकेश और उनके नाटक अस्तित्ववादी चिन्तन के जीते जागते उदाहरण हैं।

मोहन राकेश के नाटकों ने स्वातंत्रय भावना वैयक्तिता, सामाजिकता, आस्था - अनास्था पीड़ा को स्वीकृति को व्याख्यायित किया गया है, जो कि अस्तित्ववादी चिन्तन की प्रमुख विशेषतायें हैं। स्वतंत्रता का अर्थ यहाँ पर उच्छंखलता नहीं है अपितु दायित्व से जुड़ी आंतरिकता है। वैयक्तिता अस्तित्ववाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। राकेश के नाटकों का अध्ययन करने के उपरान्त ज्ञात होता है कि स्थापित मान्यताओं और सामाजिक रीति-रिवाजों के कारण व्यक्ति दूसरों के समक्ष अपने को अकेले ही पाता है।

आस्था-अनास्था का स्तर अस्तित्ववादी चिन्तन में उभरता रहा है। राकेश के नाटकों का अध्ययन करने के पश्चात् हमें ईश्वर धर्म, अध्यात्म में अनास्था के स्तर दिखाई पड़ते हैं। राकेश के सभी नाटकों में नाटक के पात्र अस्तित्ववाद की पीड़ा से ग्रस्त हैं और अस्तित्व की सुरक्षा के लिये संघर्ष कर रहे हैं।

निष्कर्ष

मोहन राकेश के नाटकों का अध्ययन करते हुए यह ज्ञात होता है कि मोहन राकेश भारतीय अस्तित्ववादा चिन्तकों की अपेक्षा पाश्चात्य चिन्तकों के अधिक करीब है। यद्यपि मोहन राकेश की दो कृतियों पैर तले की जमीन और लहरों के राजहंस को जयदेव तनेजा और गोविन्द घातक द्वारा अस्तित्ववादी निर्धारित किया गया है, किन्तु मेरी दृष्टि से उनकी सम्पूर्ण नाटक ही अस्तित्ववाद से आच्छादित हैं क्योंकि उनके नाटकों के सभी पात्र आधुनिक मानव की उस व्यग्रता और टूटन को व्यक्त करते हैं जिसे जीने के लिये व्यक्ति अभिशप्त है। पाश्चात्य चिन्तकों के बहुत करीब होने के बावजूद राकेश के चिन्तन भारतीयता को ओढ़े हुए हैं, यही राकेश की मौलिकता है।

5.9 मोहन राकेश के नाटकों में साहित्यिक चिन्तन

साहित्य और साहित्यिक चिन्तन

'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए हिन्दी साहित्य कोश के रचयिताओं ने लिखा है - साहित्य सहित + यत् प्रत्यय, साहित्य का अर्थ है। शब्द और अर्थ की यथावत् सहभाव अर्थात् साथ होना। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है।

'साहित्य' शब्द की व्युत्पति का रहस्य जानने के लिये इतिहास का जानना बहुत जरूरी है। साहित्य शब्द का प्रचलन इस वर्ष में सातवीं आठवीं शताब्दी में हुआ था। इससे पहले संस्कृत में साहित्य के स्थान पर काव्य शब्द का ही प्रयोग मिलता है। भामह, राजशेखर, कुन्तक जैसे आचार्यों ने काव्य की परिभाषा करते हुए शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य बताया तथा इसी प्रसंग में उन्होंने संहिता, सहभाव आदि का उल्लेख किया। लेकिन आगे चलकर शब्द और अर्थ के सहभाव (साहित्य) के स्थापन पर केवल सहभाव (साहित्य) ही रह जाता है।

साहित्य के मुख्यतः चार तत्व निर्धारित किये गये हैं - भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली। साहित्य का मुख्य तत्व भाव' ही है। यही उसकी आत्मा है। साहित्य का प्रमुख लक्षण रागात्मकता होने के लिए भावों का चित्रण कल्पना शक्ति के प्रयोग के द्वारा ही सम्पन्न होता है। एक साधारण घटना को भी कवि 'कल्पना' के रंग में रंगकर भव्य रूप प्रदान करता है। साहित्य में बुद्धि तत्व का सम्बन तथ्यों, विचारों और सिद्धान्तों से है। साहित्य में किसी न किसी रूप में विचारों, तथ्यों और सिद्धान्तों का भी समावेश

टिप्पणी

किया जाता है। इसके अभाव में साहित्य कोरी भावनाओं का चीत्कार बन जाएगा। कवि या साहित्यकार जिस भाषा, जिस ढंग से अपने भावों विचारों को व्यक्त करता है, वही 'शैली' है।

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। जब से मनुष्य का जन्म हुआ, वह अनेक विषयों पर विचार करता आया है। मानव की प्रारम्भिक अवस्था पशु-तुल्य थी, चिन्तन ने उसकी पशुवृत्ति को धीरे-धीरे क्षीण करके उदारवृति का पोषण और विकास किया।

उसके हृदय की कला को व बुद्धि के अनेक विषयों को जागृत किया। पशुओं का मांस खाकर ही मनुष्य तृप्त नहीं हुआ, बल्कि उनके मांस से बाघ बनाना भी उसने सीखा। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् वह हृदय और बुद्धि की बातें सोचने लगा। इसी से काव्य, साहित्य व दर्शन का जन्म हुआ।

मानव की अन्तः यात्रा और बाह्य संघर्ष जिस परिवेश में घटित होते हैं, उसी से मानव की अनुभूति कल्पना और चिन्तन को निरन्तर गति प्राप्त होती है। परिवेश और मानवीय जीवन संघर्ष के समानान्तर क्रम की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य स्रष्टा जहाँ एक ओर परिवेश के परम्परित मूल्यों का अन्वेषण करता है, वहीं दूसरी ओर परिवर्तित युग बोध के अनुसार उन्हें नया संस्कार भी देना होता है। वे दोनों अन्तः संस्कार ही उससकी भाव-भूमि को निर्मित करते हैं।

हिन्दी नाटक भारतेन्दु युग में ही अपनी लक्ष्मण रेखा से निकला। बाद में जिस साहित्य दौर ने हिन्दी नाटक को समकालीन परिस्थितियों से जोड़ा, वह यथार्थवाद ही है। इस दिशा में अनेक नाटककार सामने आए और उन नाटककारों में मोहन राकेश ऐसे कलाकार हैं, जिन्हें नए नाटक की पहल करने का श्रेय प्राप्त है।

मोहन राकेश ने जिस युग में अपनी साहित्य साधना प्रारम्भ की थी, उस युग में प्राचीन मान्यताएँ बटी तीव्रता से बदल रही थी। यह युग नवोन्मेष का युग था इसी कारण उन्होंने अपने साहित्य में नवयुग की संस्कृति सभ्यता, सांस्कृतिक चेतनाओं आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

मोहन राकेश ने गद्य साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई, लेकिन प्रसिद्धि उन्हें नाटककार के रूप में प्राप्त हुई। उन्होंने हिन्दी नाटक को एक नयी जमीन पर खड़ा किया। मोहन राकेश ने यह सिद्ध कर दिया कि नाटककार के रूप में वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जो स्वयं अपने सब चरित्रों का अभिनय कर सके।

श्रेष्ठ कलाकार वही व्यक्ति हो सकता है जो कार्य से अधिक कारण को महत्व देता है। जो वर्तमान को समझने के लिये अपने अतीत का ठीक-ठाक विश्लेषण कर सकता है और भविष्य को दिशा देने के लिए वर्तमान की दिशा दृष्टि का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकता है।

मोहन राकेश के नाटक केवल हिन्दी के नाटक ही नहीं, बल्कि समकालीन भारतीय नाट्य प्रवृतियों के द्योतक भी हैं। इन्होंने यद्यपि चार नाटक लिखे हैं, तथापि जिन्दगी की सच्चाइयों से साक्षात्कार करने वाले ये नाटकीय प्रसंग बोध और संवेदना के स्तर पर युग यथार्थ के नाटक हैं।

राकेश के नाटक हिन्दी नाट्य परम्परा में आधुनिकता की शुरूआत करते हैं। उन्होंने यथार्थ के तीखे रूप के साथ-साथ नाट्य अनुभूतियों का जीवन्त रूप भी प्रस्तुत किया है। कथ्य, शिल्प और भाषा का रूप नाट्य परम्परा में नवीनता लिए हुए हैं। राकेश का नाट्य चिन्तन क्रमशः इस प्रकार है।

नाटक साहित्य में युग परिवेश

रचना की प्रासंगिकता जीवन सन्दर्भो से जुड़े रहना ही है। जो रचना हमारे जीवन के जितनी अधिक निकट है वह उतनी ही अधिक प्रासंगिक है। जीवन से जुड़े रहने का अर्थ जीवन की सम-विषयक

टिप्पणी

स्थितियों की स्वीकृति ही नहीं, उनसे टकराना और जूझना भी है। अपने आस-पास के दायरे को तोड़ना या तोड़ने की प्रक्रिया में स्वयं उनसे कट जाना, क्योंकि रचना की सार्थकता इसी में है कि इससे दायरे की मानसिक अपेक्षाओं की पूर्ति कहाँ तक होती है।

मोहन राकेश का समस्त रचना संसार समसाक्षयिक युग चेतना से सम्पन्न है। इन्होंने धर्म, परम्परा, वैज्ञानिक तर्क बुद्धि तथा मानव जाति के विकासशील ऐतिहासिक बोध को वैयक्तिक तथा सामाजिक आदर्शों व मूल्यों के निष्कर्ष रूप में स्वीकार किया है। उनकी समस्त अनुभूति परिवेश से जुड़े रहने की अनिवार्य अनुभूति आदमी के अस्तित्व संकट में आज युग परिवेश का बड़ा हाथ है। जीवन सत्य है और जीवन का सत्य इस बात में है कि व्यक्ति जाने अनजाने में मिले परिवेश में ही रहता है। इस आत्मपरक स्थिति और परिवेश की स्वीकृति, इन दोनों आयामों पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर करता है। मनुष्य जीवन नहीं, मनुष्य और परिवेश का सम्बन्ध ही समस्या और संकट को जन्म देता है। राकेश के नाटक इसी द्वन्द्व में जन्म लेते हैं।

आज के युग में व्यक्ति पर सामूहिक परिवेश का बहुत दबाव है। समूह, संगठन, व्यवस्था सब व्यक्ति पर हावी होने के कारण उसकी वैयक्तिकता के लिए खतरा हो गया है। राकेश के नाटक व्यक्ति को समूह की इसी भूमिका के विरूद्ध स्थापित करते हैं किन्तु व्यक्ति परिवेश के नीचे दबा महसूस होता है। श्लहरों के राजहंस' में नन्द और सुन्दरी समूह करते हैं, जब कोई अतिथि कामोत्सव में उपस्थित नहीं होता।

'आषाढ का एक दिन' में ग्रामीण समाज का सारा सत्य कालिदास के विरूद्ध है और उज्जयिनी में जाकर सोश ही उसकी विनाशकारी स्थिति का कारण बनता है। सिर्फ व्यक्ति और समाज की ही नहीं व्यक्ति का ली सम्बन्ध भी एक परिवेश का निर्माण करता है।

राकेश के नाटकों का जीवित संसार उन्हीं व्यक्तियों का है जो परिस्थितियों से घिरे हुए हैं और उनकी कराहट में आने से टूट जाते हैं। श्आषाढ़ का एक दिन' नाटक में राकेश ने कालिदास के माध्यम से व्यक्ति और राज्य की आपसी टकराहट को व्यक्त किया है। कालिदास के सामने राज्य द्वारा दिये गये सम्मान और राज्यकाय को स्वीकार करने का प्रश्न नहीं, बल्कि प्रश्न स्वतंत्रता, व्यक्तित्व और अधिकार का है" मैं राजकीय मद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।" यह पंक्ति उसके स्वाभिमान और स्वतंत्रता की गहरी इच्छा को ही प्रकट करता है।

परिवेश में रहकर टूटना या बिखरना ही जीवन के लिए काफी नहीं होता। जीवन में एक स्थिति मोहभंग की भी है। इन समस्त परिस्थितियों के बीच जूझता हुआ आदमी कभी कभी विभाजित भी हो जाता है। राकेश के पात्र इस स्थिति में कभी अपने आप को जोड़ते हैं कभी तोड़ते हैं। उन्हें कोई भी जिन्दगी रास नहीं आती, न कवि की न राज्याश्रय की, न सुन्दरी का भोग ही उन्हें तुष्ट करता है। यह नियति उन्हें उस विद्रोह में खड़ा करती है, जो राकेश के नाटकों का केन्द्रीय तत्व है।

वास्तव में मोहन राकेश में आज के व्यक्ति को आन्तरिक पीड़ा, अकुलाहट से सुरक्षित रखने की ललक थी। इसे आत्मसात कर उन्होंने व्यक्ति, घटना और परिस्थितियों को एक व्यापक सन्दर्भ में देखा और पहचाना है। सबके द्वन्द्व और अर्न्तद्वन्द्वों का यथार्थ वर्णन किया है। राज्याश्रय के लिए उदासीन कालिदास गुप्त राज्य की ओर से कश्मीर का शासन भार सम्भालने के लिए जाने वाला मातृगुप्त और सत्ता प्रभुता के मोह से मुक्त राजकीय वस्त्रों में क्षत-विक्षत कालिदास की मनरूस्थिति का विमोचन इस अर्न्तद्वन्द्वों को संकेतित करने के लिए ही है। यह द्वन्द्व कालिदास का ही नहीं, आज के सन्दर्भो से जुड़ी सृजनशील प्रतिभा का है।

टिप्पणी

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में व्यक्ति को सामयिक परिस्थितियों से ऊपर उठ सहज सम्भावनाओं के बीच देखा है। अपने ऐतिहासिक और समस्या प्रधान नाटकों में इन्होंने भूले बिसरे इतिहास को कल्पना के रंगों में उभार कर पुनः जीवित कर दिया है।

नाटक और रंगमंच नाटक कहानी और उपन्यास की तरह पाठ्य पुस्तक मात्र नहीं है, बिल्क नाटक एक जीवंत अनुभव है जो अपनी जीवन्तता सही अर्थों में रंगमंच पर ही प्राप्त करता है। रंगमंच को उसका निष्कर्ष मानकर ही उसकी निजी सत्ता की खोज सम्भव है। यदि रंगमंच की आत्मा नाटकीयता है तो नाटक की आत्मा रंगमंचीयता है।

नाटक एक त्रिकोण से आबद्ध है - नाटककार, निर्देशक और दर्शक, लेकिन अभिनेता और अन्य सारा समूह भी इसका अनिवार्य अंग है। अतः रंगमंच पर दृष्टिगोचर होने वाली नाट्य प्रक्रिया इनके सहयोग और सामंजस्य से ही सम्भव है। यहाँ पर यह सत्य भी स्पष्ट होता है कि जिस समय किसी देश का रंगमंच जितना विकसित होगा नाट्य रचना उसी प्रकार की रंगशालाओं के अनुरूप होंगी। जैसे कालिदास और शेक्सपीयर के सामने अभिनय और निर्देशन की सशक्त परम्परा थी, रंगशाला का एक सुव्यवस्थित रूप था और नाटककार भी रंगशिल्प व अपने युग की अभिनय शैली से पूरी तरह परिचित थे।

मोहन राकेश का सारा नाट्य लेखन गहरे रंगानुभव से जुड़ हुआ है। उन्होंने नाट्य लेखन में कलात्मक रंग तत्व की सही तलाश की है। राकेश के नाटकों ने हिन्दी रंगमंच को सक्रियता ही नहीं दी, नाटक को सही मायने में रंगमंच से जोड़ा भी है। प्रचलित नाट्य रूढ़ियों को तोड़कर आधुनिक रंगमंच की कल्पना को भी साकार किया है।

कई बार नाटक पढ़ने पर भी फीका लगता है और अभिनीत देखने पर प्रभावित करता है। कई बार अच्छे से अच्छा नाटक भी रंगमंच पर आकर असफल हो जाता है, क्योंकि नाटक संश्लेषणात्मक कला होने के कारण विशिष्ट सन्तुलन की मांग करता है। नाटक में बिम्बों, ध्वनियों और प्रतीकों द्वारा भाषा की सूक्ष्म पकड का परिचय अन्य नाटककारों की भान्ति राकेश ने भी बड़ी सतर्कता से दिया है।

मोहन राकेश ने नाटक की मूल सत्ता की खोज भी की है। राकेश ने नाटककार की खुली दृष्टि. सहयोग-मनोवृति और नाटक की मौलिकता की समझ का परिचय दिया है। 'आषाढ़ का एक दिन' पहला नाटक है जिससे रंगमंच की शक्ति और सम्भावनाओं को पहचानने वाला रंगकर्मियों का एक पूरा दल तैयार किया गया।

हिन्दी के नए नाटकों ने मोहन राकेश से विभिन्न रंग शैलियों को लिया और यह दृष्टि पैदा की कि एक ही नाटक पर भिन्न-भिन्न प्रयोग सम्भव हैं। हर नाटक के पीछे नाटककार की अपनी रंग कल्पना होती है। उसे खेजना, समझना समीक्षक का दायित्व है।नाटक पर विचार करते समय उसकी कथा वस्तु, पात्र भाषा आदि पर सोचना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक रचना पद्धति को प्रभावित करने वाली रंगमंच की रूढ़ियों और प्रदर्शन की शैलियों पर विचार करना। आधुनिक नाटकों में कथानक का विशेष होना प्रमुख बात नहीं है। राकेश के नाटकों का सौन्दर्य कथानक विशेष में नहीं, पात्रों की बातचीत और क्रियाओं में है जो नाटक को बनाते हैं। ज्यादा महत्वपूर्ण पात्र और संवाद ही हैं। पात्र ऐतिहासिक भी हो सकते हैं, पौराणिक भी या प्रतीक भी। कथानक को गढ़ने व बुनने में संवाद ही मुख्य होते हैं। राकेश मानते हैं कि संवादों के संक्षिप्त या लम्बे होने से उतना अन्तर नहीं पड़ता जितना कि उनके पीछे व्यापक नाट्यानुभूति होने से।

टिप्पणी

5.10 नाटककार और रंगमंच

साहित्य और अन्य कलाकृतियां हमें अपने आपको समझने में सहायता देती हैं। उनके माध्यम से अपने आपको देखकर हमारी अपने आप से पहचान घनिष्ठ है। साहित्य के माध्यम से जीवन का वास्तविक परिचय भले ही गहरी झुंझलाहट को जन्म दें; लेकिन व्यक्ति को आत्म-सन्तोषअवश्य ही प्राप्त होता है। राकेश का पूरा व्यक्तित्व साहित्यिक व्यक्तित्व से अलग नहीं था। यह बात दूसरी है कि सारा नाट्य लेखन गहरे रंगानुभव से जुड़ा होने के बावजूद भी वे अपने आपको उसका हिस्सा स्वीकार नहीं करते थे। इसका कारण मन की बाधा नहीं; बल्कि बाह्य परिस्थितियाँ हैं।

राकेश नाटककार के रंगमंच के सबसे बड़े समर्थक थे। वस्तुत: रंगमंच का सारा रूप विधान नाटककार का अपना होता है। कोई भी नाटककार रंग दृष्टि के अभाव में रचना नहीं कर सकता। स्वयं राकेश की भी अपनी एक रंग दृष्टि थी, जिसके द्वारा उन्होंने रंगमंच के बारे में नये सिरे से सोचने की शुरूआत की। उनके नाटकों की रंगक्षमता उन स्थितियों पर निर्भर करती है, जिनमें वे पात्र को भी खड़ा करते हैं। वे नाटक में दृश्य की अपेक्षा शब्द पर अधिक बल देते थे।

पश्चिम रंगमंच जिसमें दृश्य की क्षमता पर अधिक बल दिया जाता था, वह अब श्रीहीन होता जा रहा है। राकेश ने नाटक में जिस शब्द को स्थापित करने पर बल दिया है-वही रंगमंच की सही दिशा है। उन्होंने नाटक को दृश्य की अपेक्षा श्रव्य माध्यम माना है। दृश्यत्व के बावजूद भी नाटक में शब्द की आधारभूमि से इन्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि शब्द ही दृश्य को जन्म देते हैं, और दृश्य शब्द की सहचारिता में ही अर्थ ग्रहण करता है।

राकेश नाटक के मंचीकरण में नाटककार का एक महत्वपूर्ण योगदान मानते हैं। मंचीकरण की प्रक्रिया में नाटककार का अपना भी अधिकार होता है। किन्तु इसका अभिप्राय: यह नहीं कि नाटककार की मौजूदगी के बिना कोई नाटक खेला ही न जाए। राकेश के विचार से रंगमंच की पूरी प्रयोग प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक बना रहे, न तो यह स्थिति स्वीकार्य है और न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी अपनीअलग चारदीवारी तक ही सीमित रहे व क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे अलग अपनी चारदीवारी तक।

अत: इन नाटकों को एक ही धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंगप्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बनकर रह सके।

5.11 नाटक रचना प्रक्रिया

प्रत्येक रचनाकाल के लिए रचना मूल लक्ष्य होती है। राकेश की दृष्टि भी रचनाकार की है और रचना के अन्दर सत्य की तलाश उसमें सर्वत्र दिखाई देती है। कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि, नाट्य स्थितियों सबकी उनके नाटकों में वैचारिक परिणीत दिखाई देती है। वे अपनेभाव विचार और दृष्टि को जीवन के सम्पूर्ण चित्र के साथ मिला देते हैं। इसीलिए कही-कहीं राकेश अपने नाटकों में दार्शनिक मुद्रा भी धारण कर लेते हैं। यह दार्शनिक मुद्रा उनकी रचना दृष्टि की ही देन है। यही कारण है कि उनकी नाट्य कृतियां हृदय और बुद्धि दोनों अपेक्षाओं की ही पूर्ति करती हैं।

रचना प्रक्रिया में विचार करते हुए राकेश ने उसके अनुभूति पक्ष को ही अभिव्यक्त किया है। हर अनुभूति विचार को जन्म दे या न दे, किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त अवश्य होती है। यदि वह शब्दों में अभिव्यक्त न हो तो मुख मुद्रा व अन्य चेष्टाओं में अभिव्यक्त होती है। अनुभूति चाहे किसी भी रूप में अभिव्यक्त हो, उसका प्रभाव उसके आश्रय स्थान से बाहर भी रहता है। कोई व्यक्ति अनुभव के प्रभाव को अपने तक सीमित नहीं रख सकता।

टिप्पणी

स्वयं अपने अनुभव को बताते हुए उन्होंने लिखा है लेखन की इच्छा में जिस वस्तु का सबसे अधिक सरोकार होता है, वह यह है कि मैं नाटक लिखे बिना नहीं रह सकता। मेरे अन्दर और बाहर की शक्तियाँ ऐसी विवशता पैदा कर देती हैं कि मैं अनेक कठिनाईयों के बावजूद भी लिखने बैठ जाता हूँ। यह केवल लिखने की विवशता नहीं, अपने आपको अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करने की विवशता भी है। जो अपने आप में कम नाटकीय नहीं। एक कलाकृति के आन्तरिक गुण की पहचान यही है कि उसमें सम्प्रेषणीयता कितनी है। वह एक अनुभूति को कितनी ईमानदारी और तीव्रता के साथ सम्प्रेषित करने में समर्थ है। सामर्थ्य का निश्चय कला की मर्यादा की दृष्टि में रखकर ही होगा। वास्तव में कला की सृष्टि अनुभूति के सत्य को किसी तथाकथित कलात्मक रूप में ढलने के लिए नही, बल्कि अपनी मर्यादा से उसे व्यक्त करने के लिए है। उसकी सफलता मधुर प्रभाव की सृष्टि में नहीं, बल्कि वास्तविक प्रभाव के सम्प्रेषण में है।

मनुष्य और जीवन को परखने में सामाजिक परिस्थितियों में परखने व आंकने का आग्रह राकेश में बराबर रहा है। उन्होंने तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों, बदलते जीवन मुल्यों को जाना। जीवन में बदलते मान-मूल्यों ने राकेश को यथार्थ दृष्टि दी। उनकी आस्था, अनास्था इसी यथार्थ बोध का परिणाम है। अनुभूति के मार्ग परआने वाला छोटे से छोटा कण भी उन्हें प्रभावित करता है। वे हर घटना, दृश्य में सार्थक मानवीयता खोजना चाहते हैं।

राकेश में यथार्थ की परख जितनी गहरी होती गयी है, उनकी रचना दृष्टि में उतनी ही अधिक प्रामाणिकता आती गई है समकालीन जीवन के स्वर उनके साहित्य में सुनाई देते हैं।

इनके नाटक मानव का बहुत ही निराशाजनक बिम्ब उभारते हैं।वे नाटक के साथ ही जीवन का अन्त नहीं मानते। वास्तव में जहाँ नाटक समाप्त होता है, वहीं से जीवन का वास्तविक प्रारम्भ होता है।

5.12 नाटक भाषा योजना

अभिव्यक्ति के लिए भाषा से उलझने की समस्या हर लेखक के सामने आती है। यह समस्या सिर्फ उनलोगों के सामने नहीं आती, जो चिन्तन और अनुभूति की दृष्टि से अन्दर से बिल्कुल साफ हैं। या कुछ अनुभूतियों व विचारों के दायरे में ही सोचते हैं। प्रायः ऐसे लोगों को भाषा की कोई समस्या नहीं सताती। अपने मन की हर बात के लिए उपष्क्त भाषा उन्हें आसानी से मिल जाती है।

नाट्य भाषा के सम्बन्ध में राकेश की स्पष्ट धारणा थी-भाषा केवल शब्दयोजना नहीं। भाषा की सजीव अर्थवता जोकि शब्दों की रूढ़ अर्थयुक्तता से अलग है, कुछ अंश तक ध्वनि, स्वराघात और शब्दों के विशिष्ट विन्यास पर निर्भर करती है। परन्तु मुख्य रूप से इस अर्थवता की उपलब्धि प्रयोग की ऐतिहासिकता, विचार और अनुभूति की आन्तरिक लय तथा बिम्बों के संयोजन में लेखक की आन्तरिक अपेक्षा से होती है। भाषा का अर्थ साथ-साथ रखे गए शब्दों का सम्मिलित अर्थ ही नहीं, उस संयोजन से प्राप्त होने वाला एक और अर्थ भी अपने विकास क्रम में प्रायः सभी भाषाओं ने दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात किया है। कोई भी भाषा एक स्थिर, निश्चित और अन्तिम रूप में अवतरित नहीं होती, बल्कि समय के संस्कार से निरन्तर अपने आपको बदलती रहती है।

हिन्दी का जो रूप हम आज देखते हैं, जानते हैं, पिछले सौ वर्षों में हो कितना बदल गया है। बदलने के क्रम में ही कई शैलियाँ विकसित हुई हैं। हर जीवित भाषा निरन्तर एक संक्रमण की स्थिति में रहती है। यह उसके जीवित होने का ही प्रमाण है।

जैसे-जैसे अनुभव बदलते गये वैसे-वैसे भाषिक अभिव्यक्ति की स्थितियां भी बदलती गई। बदलती हुई संवेदना के साथ एक नई भाषा की खोज होने लगी। एक ऐसी भाषा की खोज जिसमें युग की उन

टिप्पणी

मन: स्थितियों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया जा सके, जो पूर्ववर्ती भाषा में ठीक से व्यक्त नहीं हो रही थी। नाटक के क्षेत्र में यह खोज कविता और कहानी के बाद में हुई है।

अभिप्राय: यह है कि पूर्ववर्ती परम्परा में नाटक साहित्य था। इसलिए नाटक की भाषा साहित्यिक मानी जाती थी। नाटककार साहित्यिक प्रभाव के लिए लिखते थे। किन्तु जब यह भाण रंगमंच पर प्रयुक्त होती थी तो प्रेक्षक और मंच के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती थी। इसलिए नाटक की भाषा साहित्यिक मानी जाती थी। नाटककार साहित्यिक प्रभाव के लिए लिखते थे। किन्तु जब यह भाषा रंगमंच पर प्रयुक्त होती थी तो प्रेक्षक और मंच के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती थी। इसलिए राकेश ऐसी मंचीय भाषा की तलाश में थे, जो समसामयिक प्रेक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सके।

जिन लोगों ने अपने आपको इतिहास से बड़ा मानते हुए भाषा को व्यक्ति स्तर पर नई अर्थवता देने का प्रयास किया, वह बहुत जल्द अपने लिए वैसे ही छोटे-छोटे दायरे बना कर रह गए जैसे सहज-सरल अनुभूतियों को सहज भाषा में व्यक्त करने वालों के लिए पहले से ही बने हुए थे। जीवन के विविध रंगों को पहचानने का अवसर उन्होंने नहीं आने दिया।

राकेश की भाषा का स्तर साहित्यिक है किन्तु इसकी साहित्यिकता नाट्यानुभूति से भी जुड़ी हुई है, जो वास्तविक रंगानुभव प्रदान करती है। इन्होंने संस्कृत शब्दों की कलात्मक संगति बिठाई है। इनके नाट्य भाषा में जनात्मकता है। यह वक्तव्य बनकर सामने नहीं आती बल्कि नाट्य स्थितियों के बीच ही पैदा होती है। राकेश के विचार से - भाषा बोझिल और क्लिष्ट तब होती है जब वह नाट्य स्थिति और रंगानुभव से विलग हो।

शब्दों के चुनाव की समस्या बहुत कुछ वस्तु की अपेक्षा पर भी निर्भर करती है। रचना का वस्तु पक्ष भी आज बहत से शब्दों के आघात के लिए उत्तरदायी है। ऐसे अनेक शब्द है जो हमारी जनभाषा के अंग बन चुके हैं और साहित्यिक अभिव्यक्ति से उनका बहिष्कार करना जनभाषा का बहिष्कार करना है।

नाट्य भाषा के सम्बन्ध में राकेश की स्पष्ट धारणा थी कि भाषा केवल योजना नहीं, भाषा की सजीव अर्थवता जोकि शब्दों की रूढ़ अर्थयुक्तता से अलग है। कुछ अंश तक ध्वनि, स्वराघात और शब्दों के विशिष्ट विन्यास पर निर्भर करती है। परन्तु मुख्य रूप से इस अर्थवता की उपलब्धि प्रयोग की ऐतिहासिकता, विचार और अनुभूति की आन्तरिक लय तथा बिम्बों के संयोजन में लेखक की आन्तरिक अपेक्षा से होती है। भाषा का अर्थ साथ-साथ रखे गए शब्दों का सम्मिलित अर्थ ही नहीं; उस संयोजन से प्राप्त होने वाला एक और अर्थ भी नाटक में भाषा की वास्तविक पहचान संवाद के दायरे में ही होती है। इसलिए नाटक में संवाद से हटकर भाषा का सवाल ही नहीं उठता। राकेश अपने नाटकों में निर्दिष्ट प्रभाव के लिए शब्दों का इन्द्रजाल खड़ा कर देते हैं। शब्द के नाटकीय प्रयोग में उसकी अर्थवता का विस्तार राकेश की नाट्य भाषा और संवादों का महत्वपूर्ण गुण है।

नाट्यानुभूति नाट्य भाषा में ही सजीव होती है। यह भाषा यर्थाथ के जितनी समीप होगी, उतनी ही प्राणवान होगी। लेकिन यर्थाथ भाषा के नाम पर वह खीचड़ी भाषा को प्रश्रय नहीं देता बल्कि अक्षतर की भाषा पर बल देता है जिसे लय नियोजन में ही पाया जाता है। प्रयोग के स्तर पर मोहन राकेश ने अपने नाटकों में नवीन संवेदना के अनुरूप ही भाषा का संस्कार किया है। यह भाषा मूलत: द्वन्द्व और तनाव की ही भाषा है। इनकी भाषा अर्थ के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करती है। बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से मार्मिक अन्तरंग क्षणों का बोध कराती है।

राकेश रंगमंच में शब्द की अत्याधिक महत्ता स्वीकार करते थे। शब्द की क्षमता रंगमंच की एक बहुत बड़ी शक्ति होती है। यह शक्ति भाषा और संवाद पर निर्भर करती है। इन्होंने अपने नाटकों में भाषा के

टिप्पणी

सर्जनात्मक प्रयोग का परिचय दिया है और संवादों को नाट्य स्थिति के अनुरूप गढ़ा है। संवादों को एक विशिष्ट शिल्प में ढाल कर उन्हें व्यंजना वक्रता धवन्यात्मकता तथा पाठ से भिन्न विशिष्ट अर्थ का गौरव प्रदान करते हैं। इस नई दिशा को संकेतिक करते हुए उन्होंने लिखा है - मुझे लगता है कि हमारे प्रयोगशील रंगमंच की वही दिशा हो सकती है, जो रंगमंच के शब्द और मानव पक्ष को समृद्ध बनाती है। यही रंगमंच में शब्दाकार का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है।

रंगमंच की शब्द निर्भरता का अर्थ रंगमंच में शब्द की आधारभूत भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह निश्चित सीमा में शब्दों के संयम से ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त उपेक्षित प्रयोग से नहीं। बिना नाटकीय प्रयोजन के प्रयुक्त शब्दों से रंग सिद्धि सम्भव नहीं; क्योंकि बिम्ब को जन्म देने के साथ-साथ उस बिम्ब से संयोजित रहने की सम्भावना भी शब्दों में होती आवश्यक है।राकेश ने शब्द के अर्थ और ध्वनि दोनों आयामों का स्वीकार करते हुए कहा है कि शब्द योजना अपनी आन्तरिक लय के बिना प्राणवान नहीं हो सकती। लय और ध्वनि का संयोजन ही उसे अर्थवता प्रदान करता है और नाद के आरोह अवरोह में ही शब्द का आर नाटक निहित है। इन्होंने लय और संसर्ग से अर्थ के अनेक आयाम उभारे हैं। - नाटक दृश्य काव्य होने के साथ एक शब्द माध्यम भी है। कथ्यों को दर्शक तक सम्प्रेषित करने में की महत्वपर्ण भूमिका होती है। शब्दकथ्य को ही उजागर नहीं करता वरन् दृश्य और बिम्बों की रचना सहायक होता है। शब्द मूलत: ध्वनि पर आधारित होता है। भाषा का लिखित रूप बहुत बाद में विकसित है और उसकी सुविधा के लिए ही शब्द की सत्ता प्रतिष्ठित हुई।

यद्यपि राकेश रंगमंच पर शब्द को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील थे तथापि वह शब्द को परथोपना नहीं चाहते थे। शब्दों का रंगमंच केवल शब्दाकार का रंगमंच नहीं हो सकता। शब्दाकार, परिचालन अीनेता इन सबके सहयोगी प्रयास से ही उसका अन्वेषण और परिसंस्कार किया जा सकता है।

राकेश ने शब्दों के बीच मौन का भी रंगमंचीय उपयोग किया है।जहाँ शब्द निरर्थक हो जाते हैं वडा उनके नाटकों में एक नाटकीय क्षण बन जाता है। वह ऐसा लम्बा शब्दहीन प्रयोग भी करते हैं जहाँ शब्द किया में ढल जाता है। कहीं-कहीं ऐसी क्षणिक निरूशब्दता का भी प्रयोग है, जो नाटकीय तनाव को वहन करने के समर्थ होता है और संवादों के अन्तराल पर निर्भर करता है। राकेश के विचार से शब्दों और ध्वनियों को नाटकीय रंगमंच का आधार मानने का अर्थ बिम्ब का अस्वीकार नहीं है। अर्थ केवल इतना है कि इस माध्यम की आन्तरिक निरन्तरता शब्दों औरध्वनियों परनिर्भर करती है; उसी तरह जैसे सिनेमा में आन्तरिक निरन्तरता बिम्बों पर निर्भर करती है। वे संवाद को क्रिया व्यापार, दृश्य, मौन, बिम्ब आदि के साथ जोड़ने में सफल हए हैं। संवाद की क्रिया से औरक्रिया को नाटकीय अर्थ से जोड़ना राकेश के रंगभाष्णों की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। कई अवसरों पर शब्द क्रिया में भी बदल जाते हैं। भावना अस्तित्व का रूप ले लेती है और शब्द बहुत पीछे छूट जाते हैं।

अन्तत: मोहन राकेश एक ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने ढरे की अपर्याप्तता और अप्रासंगिकता को महसूस करते हुए अपने लिए एक नई राह बनाई। साहित्य की अलग-अलग विधाओ में उनका रचना कौशल, उनकी चिंतन शक्ति और अनुभूति का रूप सामने आ चुका है। इन्होंने अपने प्रयासों से नाटक, कहानी और उपन्यास को नयी जमीन दी है।राकेश ने बदलती हुई परिस्थितियों की चुनौतियों को जिस प्रकार वैयक्तिक स्तर पर झेला, उसी प्रकार साहित्यिक स्तर पर भी उन अनुभूतियों का साक्षात्कार किया है। आत्म-संघर्ष और रचना-संघर्ष की समानान्तरता से ही उनके साहित्य में सृजनात्मक धरातल सदा एक जैसा नहीं रहा। उनका सृजन, बोध और संवेदना के विभिन्न धरातलों परआधारित है। धरातल सदा एक जैसा नहीं रहा। उनका सृजन, बोध और संवेदना के विभिन्न धरातलों पर आधारित है। धरातलों के बदलाव में ही उनके साहित्य के रचना परिप्रेक्ष्य और दृष्टि के क्रमिक विकास को देखा जा सकता है।

टिप्पणी

मोहन राकेश के नाटकों का मूल कथ्य अधूरेपन की यंत्रणा ही है। इसी यंत्रणा को उन्होंने अपने समस्त साहित्य में विभिन्न कोणों, स्तरों और आयामों में प्रस्तुत किया है। चुनौतियों को स्वीकार करने का एहसास अत्यन्त तीव्र और तीक्ष्ण था। इसलिए यह तनाव मात्र एक वैयक्तिक तनाव न होकर युग का तनाव है। वह सामाजिक चेतना को यर्थाथ की ही एक सीमा रेखा मानते थे।

राकेश ने अपने नाटकों में आधुनिक संवेदना की तीखी चुभन के बहु आयामी धरातलों को उभारने का प्रयत्न किया है। इसमें एक अंतरंगता और आत्मियता के साथ जीवन का अत्यन्त समीपी अंकन हुआ है। सम्बन्धों के उलझाव और व्यक्ति के बिखराव को उन्होंने अपने नाटकों में यर्थाथ रूप से उभारा है। अपन नाटकों में राकेश ने विषम पात्रों की सृष्टि के द्वारा भी तनाव की रचना की है।

दश ने नाटक में रंगशिल्प को विशेष महत्व दिया है। उन्होंने अपने समस्त नाटकों की रचना रंगमंच न में रखकर की है। आज के जीवन की सच्चाईयों और व्यक्ति की स्थिति को राकेश ने नाटकीय बिम्बों व के नये कोण और अन्दाज के नये पहलू के साथ उभारा है। यह अनुभव और अन्दाज आधुनिकता लिए हुए है। आज के युग में नर-नारी के बीच लुप्त होते सम्प्रेषण से उत्पन्न त्रासदी को जिस क्षमता के गलेश ने अपने नाटकों को उभारा है, वह नारकीय प्रतीभा की परिचायात्मक होने के साथ साथ नाटक की नयी सम्भावनाओं को भी उजागर करती है।

राकेश के साहित्य में केवल आज का परिवेश ही जीवन्त रूप में प्रस्तुत नहीं हुआ बल्कि आज के जीवन समस्त परिप्रेक्ष्य भी उद्‌घाटित हुआ है। सार्थक सम्बन्धों की खोज मात्र कुछ सुविधाजनक स्थितियों को जुटा होले लिए नहीं बल्कि युग के सांस्कृतिक संकट से उभरने के लिए है। अत: मोहन राकेश की सूक्ष्म व नवीन अभय दष्टि, शिल्प दृष्टि और भाषा दृष्टि साहित्य को एक सजीव, मौलिक आधुनिक व जीवन्त रूप प्रदान करती है।

नाट्य साहित्य में मोहन राकेश का योगदान अति प्रशंसनीय रहा है। राकेश ने स्वयं के जीये और भोगे हुए क्षणों को अपने नाटकों में वाणी दी। राकेश को सर्वाधिक सफलता अपने नाटकों के माध्यम से ही मिली। राकेश ने अपने जीवनकाल में तीन संपूर्णदृश्आषाढ़ का एक दिन' (1958 ई०), लहरों के राजहंस (1963 ई०), आधे-अधूरे (1969 ई०) लिखें वहीं 'पैर तले की जमीन' अपूर्ण नाटक लिखा जिसे उनके मित्र कमलेश्वर जी ने पूर्ण किया।

'अंडे के छिलके' अन्य एकांकी तथा बीज नाटक' पुस्तक में राकेश की चार एकांकियाँ-अंडे के छिलके, सिपाही की माँ, प्यलियां टूटती हैं, बहुत बड़ा सवाल है तथा दो बीज नाटक शायद और 'हं.' हैं। ये सभी एकांकी व्यंग्यपरक हैं। इनमें सामाजिक रूढ़ियों, युद्ध, कृत्रिम अभिजात्यता और कर्मचारियों के ढोंग को उजागर किया गया है।

राकेश जी यदा-कदा लेख एवं निबंधों की भी रचना करते रहे जिनमें प्रमुख हैं-परिवेश, रंगमंच और शब्द, कुछ और अस्वीकार, नयी निगाहों के सवाल: हाशिये पर, साहित्यकार की समस्याएँ तथा अन्य यत्र-तत्र प्रकाशित निबंध इसके अतिरिक्त यात्रावृत-चट्टान तक, पतझड़ का, रंगमंच ऊँची झील खासे प्रसिद्ध हुए।

राकेश अपनी लेखन ..... प्रक्रिया में नये आयामों की स्थापना करते हुए अपनी डायरी और अनवादों लिये चर्चित रहे है।

5.13 मोहन राकेश के नाटक

स्वातन्त्रयोत्तर नाटककारों में स्व० जयशंकर प्रसाद की रिक्तता की पूर्ति यदि किसी नाटककार द्वारा संभव

टिप्पणी

हो सकी तो वे हैं-श्गोहन राकेशश। अपने प्रथम दो नाटकों 'आषाढ़ का एक दिन और लहरों के राजहंस ऐतिहासिक कलेवर को संजोए ये नाटक आधुनिक युगबोध का चित्रांकन करने में सफल रहे हैं। अपनी दोनों ही नाटयकृतियों में राकेश काफी संस्करणों तक निखार लाने के लिये सतत् परिवर्तन करते रहे। राकेश जी ने इतिहास को नवीन संदर्भो का संस्पर्श दिया। अपनी नाट्यकला में इन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों शैलियाँ एवं नाटय तत्वों को रूपायित किया है। 'आधे-अधूरे' नाटक में इन्होंने मध्यवर्गीय परिवार के संघर्षपूर्ण जीवन को कथानक का आधार बनाया है। इस नाटक में स्त्री-पुरुष संबन्धों में बढ़ते तनाव, घुटन, जीवन की विडम्बनाओं और विसंगतियों को उभारा गया है। वस्तुतः यह नाटक अधूरेपन में पूरेपन की तलाश का प्रयास है। अधिकतर आलोचकों ने इस नाट्यकृति को 'समकालीन जीवन की सही तस्वीर' कहा है।

राकेश जी का चौथा नाटक 'पैर तले की जमीन' अस्तित्ववादी दर्शन पर आधारित है। नाटक का नाम स्थितिबोधक है। इस नाटक में अस्तित्व का संकट तब पैदा होता है जब पैर तले की जमीन पानी के अंदर जाने लगती है।

'अंडे के छिलके' एकांकी पीढ़ियों के अन्तराल को दर्शाती है जहाँ बुजुर्ग और युवा पीढ़ी के लोग एक साथ रहते हैं। 'सिपाही की माँ' में एक माँ के हृदय की चिंता को आवाज दी गई है जबकि प्यालियाँ टूटती हैं स्वातंत्रयोत्तर भारत में पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने की व्यथा-कथा है। आज की व्यवस्था पर व्यंग करती राकेश की एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' वास्तव में ही प्रश्नों के ताने-बाने में बुनी हुई है। शायद और हंरू दोनों बीच नाटक अर्थहीनता से जड़ बने लोगों का चित्रण करते हैं।

5.14 आषाढ़ का एक दिन (1958)

राकेश की प्रथम नाट्यकृति 'आषाढ़ का एक दिन' ने राकेश को नाटककार बना दिया। यह कहना गलत नहीं होगा कि यह नाटक राकेश के नाट्य साहित्य का प्रस्थान-बिन्दु है। काल्पनिक कथानक और ऐतिहासिक कलेवर के ताने-बाने में बुने इस नाटक का मुख्य पात्र कालिदास है। कालिदास एतिहासिक पात्र होते हुए भी उसके घात-प्रतिघात आधुनिक है, ग्राम-प्रांतर में पले-बड़े कालिदास का भावात्मक लगाव ग्राम्यबाला मल्लिका से हो जाता है। कालिदास को राजकीय सम्मान प्राप्त करने के लिए मल्लिका प्रेरित करती है ताकि उसकी प्रतिभा अपने चरम तक पहुँच सके। कालिदास का राजकीय सम्मान के लिए उज्जयिनी जाना, वहाँ महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना करना, गुप्तवंशी राजदुहिता व प्रियंगुमंजरी से विवाह होना सभी घटनाएँ एक-दूसरे से क्रमिक रूप से संबंधित है। नाटक का प्रारंभ आकर्षक, मध्य में नाटकीय मोड़ और अंत तक नाटक में गतिशीलता बनी रहती है।

मूल संवेदना

आषाढ़ का एक दिन नाट्यकृति में राजाश्रय साहित्यकार की सृजनशीलता के मार्ग की बाधा किस प्रकार बनता है? मूल रूप से इस विषय को आलोच्य नाट्यकृति में उठाया गया है। कालिदास के माध्यम से सर्जन और राजाश्रय के द्वंद को मुखर करते हुए इस अंतवंद में टूटते कलाकार के व्यक्तित्व और यथार्थ स्थिति का चित्रांकन किया गया है।

आलोच्य नाट्यकृति में पुरुष की अहमवृत्ति को शिकार बनी मल्लिका की अवश विवश स्थितियों को या गया है तथा साथ ही नारी की घुटन को प्रस्फुटित किया गया है। स्वयं नाटककार अपनी पुस्तक 'साहित्यिक और संस्कृतिक दृष्टि' में लिखते है -

"मैं इस नाटक में आज के लेखक की दुविधा का चित्रित करना चाहता था- लेखक जो राज्य या इसी

टिप्पणी

प्रकार की अन्य संस्थाओं द्वारा प्रस्तावित के प्रति आकर्षित होता है और दूसरी ओर कहीं अपने प्रति प्रतिवद्ध भी होता है।"

नाटक की मूल संवेदना कालिदास के सृजन प्रेरणा स्रोत को केंद्र में रखकर आगे बढ़ती है। कालिदास की कविता का जन्म प्राप्रान्तर के रमणीक एवं प्रकृति के निश्छल वातावरण में होता है। जहाँ मल्लिका का पर विश्वास, प्रेम, आत्मसमर्पण उसे उसकी प्रतिभा को उज्जवल बनाने का अवसर देती है। मल्लिका की प्रेरणा पाकर कालिदास का कवि रूप निखार पाता है।

नाट्यकृति में नया मोड़ तब आता है जब राज्य कालिदास को सम्मानित करना चाहता है परन्तु कालिदास को ग्रामप्रान्तर की भूमि से स्वयं को जुड़ा हुआ पाता है वह नयी भूमि को अपनाने में आशंकित है जबकि मल्लिका कालिदास के व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित देखना चाहती है, अत: वह कालिदास को नयी भूमि अपनाने व राज्य द्वारा दिये जाने वाले सम्मान को अपनाने के लिये प्रेरित करती है।

नई भूमि को अपनाने पर कालिदास का व्यक्तित्व विघटित होता चला जाता है। डॉ० रमेश गौतम जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी के प्रतीक नाटक' में लिखा है-राजाश्रय और राजसत्ता प्राप्त करने के बाद कालिदास कुछ नहीं कर पाता, वह सब कुछ खो देता है, यहाँ तक की अपने प्रेरणादायक परिवेश के जीवंत तत्व मल्लिका को भी।"

कलाकार की रचनात्मक में बाधक राजकीय वातावरण एवं राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से विवाह कालिदास के व्यक्तित्व को त्रासद, खंडित और टूटे हुए व्यक्तित्व में परिणत कर देते हैं जहाँ वह अपनी प्रेरक शक्ति मल्लिका को भी खो बैठता है।

राजकीय परिवेश कालिदास को सुख, एश्वर्य, मान-सम्मान देने में तो समर्थ रहा परन्तु एक कलाकार के मन को पोषित एवं तुष्ट न कर सका। यही कारण रहा कि कालिदास की राजकीय वातावरण से मुक्ति की कामना उसे यह पुन: ग्रामप्रान्तर के परिवेश में लौट जाने के लिये उद्वेलित करती है। कालिदास स्वीकार करता है कि उसका सर्जक कलाकार मन राजकीय परिवेश में कुछ नहीं लिख पाया जो कुछ उसने लिखा वह ग्रामप्रांतर के जीवन का ही संचय था।

इस प्रकार इस नाटक में एक कलाकार की व्यथा को चित्रित किया है तथा साथ ही एक कलाकार अपने मूल परिवेश से किस प्रकार जुड़ा होता है इसको रूपायित करने में लेखक सफल रहा है।

पात्रों का चरित्र चित्रण कालिदास

आलोच्य नाट्यकृति कालिदास के विभाजित मन का चित्रांकन करती है एक सृजनशील कलाकार का पहला वरन् उसका लेखन ही होता है इसके विपरीत कालिदास अपने अभावपूर्ण जीवन की प्रतिक्रिया स्वरूप कश्मीर की शासन व्यवस्था का अंग बनने तथा मात्र गुप्त का कलेवर अपनाने पर छटपटाता है। राजव्यवस्था उसके व्यक्तित्व को खंडित, अस्त-व्यस्त और जर्जर बना डालती है। आत्मीयता का अभाव उसे सालता रहा। कालिदास का व्यक्तित्व सत्ता के समक्ष निरीह एवं विवश दिखाई देता है वह सृजन एवं राजनीति में तालमेल बिठा पाने में असमर्थ है।

राजनीति से प्राप्त मातृगुप्त के कलेवर को अपनाने में वह स्वयं को असमर्थ पाता है। उसकी पत्नी प्रियंगुमंजरी उसे साहित्य और राजनीति के अंतर को स्पष्ट करती है कि राजनीति साहित्य नहीं है। इसमें एक एक क्षण का महत्व है कभी एक क्षण के लिये भी चूक जायें, तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है एक राजनीतिज्ञ के रूप में वह असफ रहता है। राजसत्ता का मोह उसकी कलाकार व्यक्तित्व को धूमिल कर देता है।

टिप्पणी

राजनीति किस प्रकार महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये एक कलाकार को परिधि में बांधकर चलती है इसका पता कालिदास के व्यक्तित्व से चलता है। कालिदास अपने परिवेश से जुड़ा हुआ व्यक्ति है इसलिए 'मेघदूत' की रचना करते समय वह अपने ग्रामप्रान्तर के परिवेश की स्मृतियों में खो जाता है। वह भावनाशील व्यक्ति है जो राजसत्ता प्राप्त होने तथा सुख-सुविधाएँ, ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी उदास है। प्रियंगु से विवाह भी उसे उसकी ग्रामप्रान्तर की भूमि और मल्लिका की याद से अलग नहीं कर पाता क्योंकि मानसिक रूप से वह अपने प्रदेश से ही जुड़ा पाता है। मल्लिका कालिदास की बचपन की संगिनी मल्लिका के भीतर कोमलता, भावुकता, प्रेम, प्रतिदान रहित आत्मसमर्पण दृष्टिगत होता है। कालिदास की रचनाओं के प्रति उसका स्वाभाविक मोह है। वह कालिदास की प्रेरक शक्ति के रूप में मल्लिका का व्यक्तित्व एवं आचरण पारंपरिक धारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाता दिखाई देता है।

मल्लिका प्रेरक शक्ति के रूप में कालिदास को राजकीय सम्मान लेने के लिए प्रेरित करती है तथा उसके व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित होते देखना चाहती है। कालिदास के आभावपूर्ण जीवन एवं समाज द्वारा यदा-कदा उपहास का कारण बन चुके उसके जीवन को सुख-सुविधाओं से युक्त देखना ही मल्लिका का सपना है। कालिदास की उन्नति ही उसका सुख है। कालिदास और अपने संबंध को वह सभी संबंधों से बड़ा मानती है। अपनी माँ अम्बिका को वह बताती है कि मेरे लिए मेरी भावना ही सर्वोपरि है जो कि कोमल, पवित्र और अनश्वर है, मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मल्लिका को विलोम की संगनि बनाना स्वीकार्य नहीं परन्तु परिस्थितयाँ दोनों को दांपत्य सूत्र में बाँध देती है जहाँ प्रेम का सर्वथा अभाव ही दृष्टिगत होता है। वस्तुत: उसका चरित्र समाज की मान्यताओं को अस्वीकार करता है जहाँ पति-परमेश्वर है, उसकी इच्छा सर्वोपरि है।

अत: व्यवहार रूप में पल्लिका विलोम को अवश्य अपनाती है परन्तु मानसिक रूप में कालिदास से ही जुड़ी है। प्रियंगुमंजरी कालिदास का विवाह राजदुहिता प्रियंगुमंजरी से होने के बाद प्रियंगु अपने वैवाहिक जीवन से संतुष्ट नहीं हो पाती। प्रिंगु कालिदास से बाह्य रूप से जुड़ने में सफल हो जाती है परन्तु आंतरिक रूप से वह कालिदास को स्पर्श तक नहीं कर पाती। अपने दाम्पत्य जीवन को प्रेमपूर्ण बनाने में सतत् प्रयत्नशील रहती है तभी वह ग्रामप्रांतर के उस रमणीय वातावरण को साथ ले जाना चाहती है जिसके अभाव में कालिदास अपने रचना संसार से पूरी तरह जुड़ नहीं पा रहा है। प्रियंगु के भीतर नारी सुलभ चेष्टाएँ भी हैं तभी वह कालिदास की प्रेरक शक्ति मल्लिका को विवाह', घर का परिसंस्कार करने को कहती है ताकि उसके हृदय के सच को जान सके।

प्रियंग राजपुत्री है इसलिए वह राजनीतिक महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कालिदास को राजपुरूष बनाना चाहती है जबकि कालिदास भावनाशील पुरुष है वह प्रयास करती है कि राजनीति की और बढ़ा कालिदास का कदम कहीं पीछे न हट जाए।

अपने और कालिदास के सतही संबंध को वह ऊपर उठाकर आत्मिक रूप से जुड़ता हुआ देखना चाहती है जिसमें वह असफल रहती है।

प्रियंगु के भीतर ईर्ष्या की भावना भी पल्लवित होती है तभी वह देखना चाहती है वह घर मल्लिका का स्वरूप व ग्रामप्रांतर का वातावरण जहाँ की प्रेरणा ने कालिदास को मेघदूत का रचयिता बना दिया। विलोम - विलोम मल्लिका से विवाह करने में तो सफल हो जाता है परन्तु वह भी मल्लिका के बाह्य रूप को ही प्राप्त कर पाता है क्योंकि मल्लिका के हृदय में तो आज भी कालिदास ही है। बाह्य रूप में मल्लिका और विलोम पति-पत्नी के संबंधों को वहन तो करते हैं परन्तु दांपत्य संबंध में जिस कोमलता, विश्वास, प्रेग, भावुकता, समर्पण की आवश्यकता होती है उसे वह पाने में सफल नहीं हो पाते।

टिप्पणी

आलोच्य नाट्य कृति में विलोम असफल कालिदास है जबकि कालिदास को सफल विलोम कहा गया है क्योकि कालीदास को वह प्रेम सदैव मिलता है जिसकी कामना विलोम ने की थी इसलिए कालीदास सफल विलोम है विलोम सफल तभी हो पाता जब उसे अपने प्रेम के बदले मल्लिका से भी प्रेम मिलता परन्तु वह प्रेम विलोम को न मिल सका इसलिए विलोम को असफल कालिदास कहा गया है। अंबिका - अंबिका मल्लिका की माँ के रूप में नाटक में दृष्टिगोचर होती है जो कालिदास के चले जाने पर मल्लिका को विवाह के लिए समझाती है परन्त मल्लिका को अपने जीवन में किसी का भी हस्तक्षेप स्वीकार नहीं। अंबिका के माध्यम से लेखक नेबुजुर्ग पीढ़ी और मल्लिका के माध्यम से युवा पीढ़ी के विचारों को समाज के समक्ष रखा है। --- अंबिका और मल्लिका के माध्यम से बुजुर्ग पीढ़ी और युवा पीढ़ी के विचारों में बढ़ती खाई की ओर संकेत किया गया है जहाँ बुजुर्ग पीढ़ी समाज के पारम्परिक रीति रिवाजों और उनके कुछ कहने से भयभीत है वहीं युवापीढ़ी स्वतंत्र होकर जीने तथा अपने अस्तित्व को कायम रखने की आकांक्षी है अत: राकेश ने दोनों के माध्यम से पीढ़ी अंतराल के भाव को मुखरित किया है। मातुल। कालिदास के मामा मातुल को जब अपने अभावपूर्ण जीवन में राजाश्रय का प्रलोभन दिया जाता है तो वह तुरंत उसे स्वीकार कर लेते हैं परन्तु राजनीतिक वातावरण उन्हें सुख देने के बजाय उनके निजत्व और उनके अस्तित्व की पहचान को भी उनसे छीन लेता है यह वातावरण उसे देता है शारीरिक अपंगता, अस्त-व्यस्त शरीर और अभिशप्त वापसी।

अनुस्वार/अनुनासिक

राज्य व्यवस्था के प्रतीक अनुस्वार और अनुनासिक केवल स्थान और क्रम बदलने को ही परिवर्तन कहते हैं धैर्य और परिश्रम का इसमें नितांत अभाव है। इसलिए कार्य करने से पूर्व ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं इसलिए जो सामान जहाँ था उसे ऐसे ही रहने दिया जाये से दोनों सहमत हैं। अनुनासिक के पूछने पर और तो कुछ शेष नहीं अनुस्वार उत्तर देता हैकृमेरे विचार से कुछ भी शेष नहीं। द्वंदवादी चेतना 'आषाढ़ का एक दिन' राकेश की निजी जीवन की घटना है जिसमें राकेश घुटा, जीया, छटपटाया और तनावपूर्ण रहा। आलोच्य नाटक में राकेश ने कालिदास के मुख से कहलवाया हैकृमैंने जब-जब लिखने का प्रयल किया, तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर - दोहराया और उनसे हटकर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई।" (पृष्ठ 117) अत: यहाँ कालिदास की सर्जनात्मक शक्ति एवं राजाश्रय के दन्त मुखर किया गया है।

कालिदास के माध्यम से आधुनिक व्यक्ति की नियति को चित्रित किया है जहाँ वह सदा द्वन्द की स्थिति में जीता है भावना और अर्थ सत्ता के बीच फंसे कालिदास की स्थिति आज के व्यक्ति से मेल खाती है जहाँ अभाव व्यक्ति को अर्थ सत्ता की ओर जाने के लिए प्रेरित करती है और अर्थ सत्ता प्राप्त करते ही अस्तित्व का संकट व्यक्ति को द्वन्द के घेरे में ला खड़ा करता है। भौतिकता वादी दृष्टि को अपनाए या भावनामयी दष्टि इसी द्वन्द में वह मल्लिका से विवाह नहीं कर पाता।

निक्षेप और मातुल कालिदास की चेतना को भौतिकता की ओर मोड़ते हैं। मातुल के अनुसार "सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नहीं, कविता का मूल्य ही क्या है "कालिदास को मिलने वाला सम्मान उसके वंश का सम्मान है न कि उसके कवित्व का, निक्षेप भी कालिदास को सम्मान पाने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार एक और कालिदास राजाश्रय और अपने कलाकार मन के द्वन्द को झेलता है। तो दूसरी ओर अपनी प्रेमिका मल्लिका और पत्नी प्रियंगु के बीच भी द्वन्द को भोगता है कभी वह मल्लिका की ओर उन्मुख होता है तो कभी प्रियंगु के बातों को गौर से सुनता है। राजनीति और भावना प्रवण साहित्य के बीच के द्वन्द राकेश ने कालिदास के माध्यम से चित्रित किया है।

टिप्पणी

5.15 लहरों के राजहंस कथावस्तु का क्रमिक विकास

लेखन क्रम की दृष्टि से 'लहारों के राजहंस' राकेश का द्वितीय नाटक है। ऐतिहासिक कथा पर आधारित इस नाटक का नाम प्रतीकात्मक है। लहरों पर तैरते राजहंस की ही भाँति नाटक के पात्र नन्द और श्यामांग, भाव एवं विचार के धरातल पर अस्थिर तरंगों में तैर रहे हैं जहाँ गति तो है पर दिशा नहीं।

आलोच्य नाट्यकृति में कपितवस्तु के राजकुमार नन्द के बौद्ध भिक्षु बनने एवं उसकी पत्नी सुंदरी के रूप गर्व की कथा कही गई है। नन्द के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है कि न तो वह मुग्ध कामुक प्रेमी के रूप में संतुष्ट है और नहीं निवृत्तिवादी भिक्षु के रूप में। दुविधाग्रस्त मानसिकता से पीड़ित नन्द के संशयग्रस्त जीवन को चित्रित करने में नाटककार सफल रहा है। प्रस्तुत नाटक में नन्द का भिक्षु बनना और सौन्दर्य की गगरी का छलकना दोनों ही आत्मविभोर कर देते हैं।

प्रस्तुत नाटक तीन अंकों में विभाजित है प्रतीकात्मकता का निर्वाह करते हुए नाटक में कामोत्सव का आयोजन एक तनाव उपस्थित करता है, कामोत्सव में किसी का न आना, सुंदरी के आक्रोश का चरम नाटकीय बिंदु है। अनिश्चय, अनिर्णय और चुनाव के संकट से गुजरना समकालिन मनुष्य की नियति बन चुकी है। नंद भी ऐसी ही परिस्थिति में जीने के लिए अभिशप्त है। उसका व्यक्तित्व दो भिन्न प्रवृतियों में विभक्त है। एक ओर वह सुन्दरी की ओर आकर्षित है तो दूसरी ओर बुद्ध की वाणी भी उसके आकर्षण का केन्द्र है उसकी अन्तश्चेतना के दो कोण सुंदरी और बुद्ध हैं उसके लिए किस ओर अधिक आकर्षण है अपने गंतव्य का निर्णय वह अंत तक नहीं कर पाता उसकी अवस्था तरंगों पर दोलायमान होने वाले राजहंसों की सी हो गई है। नंद अपने जीवन को संपूर्णता में जीना चाहता है इसलिए वह भोग और विराग दोनों जीवन दृष्टियों को अपने अन्दर समेटना चाहता है।

नंद सुन्दरी के रूप पर मोहित होते हुए भी भिक्षुओं के स्वर को सुनकर विह्वल हो उठता है। सुंदरी नन्द की मन: स्थिति को जान लेती है तथा उसे वचनमुक्त कर जाने को कहती है। नन्द बुद्ध क्षमा याचना के लिए जाता है परन्तु वह जब लौटता है तो भिक्षु बनकर। सुंदरी के अहम् को इससे चोट पहुँचती है वह उसे दूसरा व्यक्ति कहकर सम्बोधित करती है। जबकि नन्द स्वीकारकरता है किष्अंतर पड़ता यदि मेरा हृदय बदल जाता।" वह सुंदरी को विश्वास दिलाना चाहता है कि भिक्षु बनकर भी वह आंतरिक रूप से परिवर्तित नहीं हुआ है।

अत: नंद का बुद्ध के पास जाना उसके आध्यात्मिक आकर्षण को इंगित करता है परन्तु सुंदरी के पास लौट आना इस बात को दर्शाता है कि वह भौतिकता में जीने वाला व्यक्ति ही है। पात्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण राकेश ने आलोच्य नाट्यकृति के पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक स्तर पर किया है राकेश के पात्र भैतिकता और आध्यात्मिकता, पार्थिव और अपार्थिव, अस्तित्व और अनास्तित्व कई स्तरों पर एक साथ जीते नन्द के भीतर प्रतिरोधक क्षमता का अभाव है इसलिए वह एक मार्ग चुनने में असमर्थ है कभी वह सुंदरी की ओर आसक्त होता है तो कभी बुद्ध की ओर। सुंदरी और बुद्ध उसके लिए दो व्यक्ति या व्यक्तित्व नहीं है अपितु दो जीवन-दृष्टियाँ हैं। नन्द न तो बुद्ध के समान तपस्या को ही जीवन का चरम सत्य मानते हैं और न ही सुंदरी के समान है जो मात्र भौतिक ऐषणा पूर्ति को ही जीवन मानती है। नन्द की अपनी विचारधारा है उसका अस्तित्व, भौतिकवादी और आध्यात्मिक विचारधाराओं में कहीं खो गया है जिसे वह खोजना चाहता है।

अत: नन्द अनिश्चय की स्थिति में जीता है। वह जीवन में निश्चय ही नहीं कर पाता कि उसे किस मार्ग पर अग्रसर होना है। वह अपनी चेतना को एक प्रश्नचिन्ह के रूप में देखता है जहाँ अनास्था के

टिप्पणी

बीच वह स्वयं को फंसा हुआ पाता है। सारांशत: नंद चुनाव के संकट से गुजरता हुआ एक संशयग्रस्त व्यक्तित्व है अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक होते हुए भी उसका मन दुविधाग्रस्त है।

सुंदरी नंद की पत्नी है। वह अहम् प्रिय है और द्वेष से ग्रस्त है। सुंदरी भौतिकता को पूरी तरह से अपने जीवन में अपनाती है। उसकी नंद के प्रति पूर्ण आसक्ति है तथा वह चाहती है नंद उसके सौन्दर्य पर आसक्त रहे। कामोत्सव के आयोजन को वह अपनी कामना का उत्सव मानती है। गोविन्द चातक के अनुसारद्"इन्द्रिय स्तर पर जीने वाली वह नारी स्वकेन्द्रित होने के नाते सचेतन चुनाव नहीं कर पाती। वह अपने अस्तित्व में भौतिक जगत से बद्ध है वह पर बद्धता ज्ञान के स्तर पर नहीं द्वेष के स्तर पर है।"

सुंदरी को नन्द पर पूर्ण विश्वास है इसलिए वह उसे बुद्ध के क्षमा याचना के लिए भेजती है परन्तु जब नंद केश कटवा कर लौटता है तो सुंदरी उसे 'दूसरा व्यक्ति' कहकर सम्बोधित करती है। यह स्थिति नंद के लिए असह्य है क्योंकि उसके अनुसार परिवर्तन का आधार आंतरिक परिवर्तन है न कि केश कटना। नंद रात के समय ही घर छोड़कर चला जाता है तब सुंदरी भी घर पर अकेली रह जाती है। उसे भी यह घर अपना घर नहीं लगता।

सुन्दरी मानती है कि यशोधरा का आकर्षण ही गौतम बुद्ध को निर्वाण के मार्ग की ओर ले गया है। उसकी दृष्टि में गौतम बुद्ध का कामनाओं को जीतना भी एक कामना ही है जो उन्हें भौतिकता से जोड़ता है। सुन्दरी कहती है कि गौतम बुद्ध के पास एकत्रित होने वाली भीड़ धर्म और उपदेश के लिए नहीं बल्कि एकतार और नीरस जीवन में नवीनता का आभास पाने के लिए होती है।

गौतम बुद्ध अध्यात्म को जीवन में सर्वोपरि मानते हैं और जीवन को क्षणभंगुर व नश्वर मानते हैं। सुन्दरी का कथन है कि राजकुमार सिद्धार्थ को गौतम बुद्ध बनाने के पीछे यशोधरा का अपकर्षण है इसलिए वह कहती है- "नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका आकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है। जब नन्द लौटकर नहीं आते तो सुन्दरी संशयग्रस्त हो जाती है और उसे लगता है-क्या उनके पंखों में इतनी शक्ति रही होगी कि अपनी इच्छा से उड़कर कहीं चले जाते? और जिस ताल में इतने दिनों में थे, उसका अभ्यास उसका आकर्षण क्या इतनी आसानी से छूट सकता था?ष् रूपगर्विता सुंदरी को इस बात का विश्वास था कि भौतिक ऐषणाएँ नन्द को आसक्त कर वापस लौटा लाएंगी। परन्तु जब नन्द नहीं लौटते तब सुंदरी के भीतर अंतर्द्वन्द व्याप्त हो जाता है।

राजहंसों के माध्यम से पात्रों की मन: स्थिति को रूपायित किया है। सुंदरी कहती है कि आध्यात्मिक बातें मनुष्य को आकर्षित तो करती हैं वह उन्हें आश्चर्यचकित हो सुनता भी है परन्तु परिस्थितियाँ रूपी लहरें व्यक्ति को अपने साथ बहा ले जाती है नंद के माध्यम से आधुनिक व्यक्ति की मन: स्थिति को नाटककार ने चित्रित किया है। नंद कहता है-मैं चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं।' इस नाटक में श्यामांग को नन्द के मन के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। उसका प्रलाप नन्द की अकुलाहट अनिश्चितता और विश्राम को संकेतित करता है कोई स्वर नहीं है .... कोई किरण नहीं है ... सब कुछ अंधकप में डूब गया है ... कोई मार्ग नहीं है ... लहरों पर से ... यह छाया हटा दो मुझसे यह छाया ओढ़ी नहीं जाती।" अत: श्यामांग नन्द की अंत: मनोदशा की दुविधाग्रस्त चेतना का साकार प्रतीक बनकर सामने आया है।

व्यवस्था एवं संस्थागत टकराहट

लहरों के राजहंस नाट्यकृति में समाज-व्यवस्था परिवार संस्था एवं विवाह संस्था में अनास्था दृष्टिगत होती है। यही आधुनिक जीवन की विडम्बना है। पति-पत्नी का एक दूसरे की भावनाओं को न समझना विवाह संस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। नाटक में नन्द और सुंदरी ऐसे ही दम्पती हैं जो एक-दूसरे की

टिप्पणी

भावनाओं को नहीं समझते। सुंदरी का अहंग्रस्त व्यक्तित्व नन्द की इच्छाओं, आकांक्षाओं को दबाता है जिसके कारण वह सुंदरी के समक्ष बौना दिखाई देता है। दूसरी ओर नन्द भी सुंदरी के विश्वास को बार-बार तोड़ता है। दाम्पत्य जीवन में जिस विश्वास, समर्पण की आवश्यकता होती है उसका सर्वथा अभाव नन्द और सुंदरी के दाम्पत्य जीवन में दृष्टिगत होता है।

अपने बड़े भाई गौतम बुद्ध के सम्मान के कारण नन्द अपने केश तो कटवा डालता है परन्तु सुंदरी का उसको न पहचानना उसे अधिक सालता है। दोनों ही स्वयं को गृहस्थ जीवन में भी अकेला अनुभव करते हैं। केश कटने पर नंद स्वयं को अकेला पाता है तो दूसरी ओर सुंदरी नन्द के घर छोड़कर चले जाने पर स्वयं को अकेला पाती है। सुंदरी का यह वाक्य-"इतना ही समझ पाए हैं ये? से स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में उत्पन्न तनाव, उलझन और आपसी समझ के अभाव को चित्रित किया है। अत: इस नाटक की भीतर पात्र बार-बार समाज व्यवस्था एवं परिवार संस्था से टकराता है। किंतु अलका और श्यामांग का सम्बन्ध नन्द और सुंदरी के आवेशपूर्ण और कामनात्मक सम्बन्ध से भिन्न है। नन्द सुन्दरी के समक्ष अपने मन की बात प्रकट नहीं कर पाता इसलिए श्यामांग के माध्यम से नन्द के अंतर्संघर्ष को नाटककार ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। नंद का केश मुंडन, व्याघ्र से युद्ध नन्द के अंतर्द्वन्द और संशय को व्यक्त करते हैं।

नाटक में 'अलका' मौन प्रेमिका के रूप में उभरी है। जिसके हृदय में श्यामांग के प्रति प्रेमानुकरण हो चुका है। वह सुन्दरी की दासी है परन्तु वह सुंदरी की सखी भी है। वह कभी-कभी सुन्दरी के मन की बात कहती हैकृ "मैं और भिक्षुणी का वेश। .... नहीं मैं ऐसी बात नहीं सोच सकती। अभी नहीं।" अत: अलका का व्यक्तित्व कभी-कभी सुंदरी के अस्तित्व को स्पष्ट करता है। अपने व्यक्तिगत विचारों को सुंदरी नंद पर थोपना चाहती है तथा उस पर शासन करना चाहती है दाम्पत्य सम्बन्ध में मधुरता का अभाव आलोच्य नाट्यकृति में दिखाई देता है।

5.16 आधे-अधूरे

महानगरीय जीवन की त्रासदी

आलोच्य नाट्यकृति में जीने वाले व्यक्ति के जीवन की त्रासदी का खाका खींचा है। यथार्थवादी समस्या नाटक होने के नाते यह नाटक समकालीन जीवन की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करता है। साथ ही इस नाटक के पात्र भी महानगरीय त्रासदी को झेलने वाले आधू अधूरे है। 'आधे' का अर्थ 'हाफ' है और अधूरे का 'इनकम्पलीट' अर्थात् सम्पूर्णता का अभाव। महानगरीय जीवन भी मनुष्य के अभाव को आर्थिक समस्या, अस्तित्व संकट को इंगित करता है।

नाटककार ने अपने इस नाटक में स्पष्ट किया है कि महानगर में जीने वाला मध्यमवर्गीय परिवार कैसे-कैसे संघर्षों से गुजरता है? जब परिवार की आय अधिक थी तब सावित्री और महेन्द्रनाथ का परिवार चार सौ रुपये वाले पकान में रहता था, टैक्सियों से आना-जाना था, दावतें उड़ती थी, 'राब चलती थी। बच्चे कान्वेट में पढ़ते थे। परंतु इस ऐशो-आराम ने और सामाजिक-स्तीकरण की भूख ने महानगर में जीने वाले इस परिवार को एकाएक निम्नमध्य वित्तीय परिवार की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया। घर का मुखिया महेन्द्रनाथ निठल्ला हो गया और स्त्री को नौकरी करके परिवार का दायित्व ग्रहण करना पड़ा। आर्थिक-समस्या एक अच्छे-खासे परिवार को दीमक की तरह कैसे चाट जाती है यही इस नाटक का मूल बिंदू है।

आज महानगरीय जीवन में अजनबीपन का व्यवहार दिखाई देता है। सम्बन्धों में मधुरता का आभाव, दाम्पत्य जीवन में समझ का आभाव एवं पारिवारिक वैषम्य ही को देखा जा सकता है। आधे-अधूरे

टिप्पणी

में चित्रित घर भी ऐसा है। इस घर में या तो कोई होता ही नहीं है और यदि होते हैं तो उनके मध्य वार्तालाप नहीं होता, इस कारण दूरियाँ बढ़ती जाती हैं। बदलते जीवन मूल्यों ने इस परिवार को तोड़ दिया है। इस घर का मुखिया एक ओर तो चाहता है कि सावित्री घर की आर्थिक स्थिति को संभाले, साथ ही वह यह भी चाहता है कि वह पराये पुरुषों के साथ संपर्क न रखे।

सावित्री के बॉस सिंघानिया को एक भ्रष्ट अफसर के रूप में चित्रित किया है जिनके लिए हर काम एक व्यवसाय है, उसकी कीमत चुकानी ही पड़ती है। जगमोहन एक ऐसे पुरुष के रूप से सामने आता है जिसके लिए स्त्री-प्रेम मात्र एक क्रीड़ा है। इसी प्रकार के मानवीय सम्बंध दाम्पत्य संबंधों को विघटन के कगार पर ला खड़ा करते हैं।

महानगर में आज एक आदर्श परिवार को खोज पाना असंभव सा प्रतीत होने लगा है। आज परिवार में निहित एकात्मकता एवं आत्मीयता के सूत्र पूरी तरह बिखरे हुए नजर आते हैं। आज की युवा पीढ़ी में बढ़ता असंतोष, आत्मीय सम्बन्धों की निरर्थकता, यांत्रिकता से टूटते जीवन-मूल्य ही महानगरीय जीवन के पर्याय बन चुके हैं। औद्योगिकरण और शहरीकरण की बढ़ती गति ने परिवारों में तनाव और संघर्ष की स्थिति को ही जन्म दिया है। परिवार के टूटने और बिखरने को ही जन्म दिया है। परिवार के टूटने और बिखरने का कारण बढ़ती उच्चाकांक्षाएँ और आर्थिक दबाव ही है। सुषमा अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'समकालीन नाटय साहित्य और मोहन राकेश के नाटक' में स्पष्ट रूप से लिखा है।

ष्आधे-अधूरे एक मध्यमवर्गीय परिवार के अलग-अलग कोणों से लिए गए अनेक स्नेप्स का 'एल्बम' है जिसमें कोई रंगीन तस्वीर नहीं है। सबके सब खाका जैसे या स्कैचेज जैसे।"

अत: सावित्री और महेन्द्रनाथ का यह घर पूरी तरह से महानगरीय जीवन की त्रासदी को प्रकट करता है।

पात्रों की आधी-अधूरी स्थिति

आधुनिक जीवन का साक्षात्कार करने वाला यह नाटक बेहद चर्चित रहा है। इस नाटक में महानगर में रहने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवारों का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। इस नाटक में चर्चित परिवार के सदस्य स्वयं अधूरे होते हुए भी पूरे पन की तलाश करते हैं यही इस परिवार की विडम्बना है। नाटककार इस परिवार के माध्यम से सामान्य परिवार को चित्रित करना चाहता है इसलिए पात्रों को पुरुष एक, पुरुष दो, परुष तीन, पुरुष चार, स्त्री, बड़ी लड़की, छोटी लड़की, लड़का आदि कहकर पात्रों को प्रस्तुत करता है। इस नाटक का प्रत्येक पात्र चाहे वह महेन्द्रनाथ हो या अशोक, या फिर गृहस्वामिनी सावित्री, बड़ी लड़की बिन्नी, छोटी लडकी किन्त्री सभी व्यक्तिगत रूप से आधी-अधूरी स्थिति में जीते हैं। इस घर की प्रत्येक वस्तु अव्यवस्थित है और वस्तओं की ही भांति पात्र भी अव्यवस्थित हैं। इस घर में जाने क्या है जो किसी को भी बैनर देता। बड़ी लड़की अपनी अस्वाभाविक स्थिति के लिए उस चीज को ही जिम्मेदार मानती है।

इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता है कि एक ही पुरुष, चार-चार पुरुषों की भूमिका मात्र वस्त्र परिवर्तन के आधार पर ही करता है। पुरुष एक (महेन्द्रनाथ), पुरुष दो (सिंघानिया), पुरुष तीन (जगमोहन) पुरुष चार (जुनेजा) के रूप में चित्रित हैं।

पुरुष एक महेन्द्रनाथ घर का स्वामी है, वह बेकार, निराश और असफल पति है। शादी के बाद ही उसकी पत्नी को वह एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई अर्थात् अधूरा, लिजलिजा चिपचिपा-सा आदमी लगने लगा। वह बेरोजगारी के कारण पत्नी की फटकार सुनता है। आर्थिक दृष्टि से वह अपनी पत्नी पर निर्भर है। वह स्वयं को एक घिसा हुआ रबड़ का टुकड़ा मानता है। वह कई बार सोचता है कि

टिप्पणी

इस परिवार में उसकी हैसियत ही क्या है? परिवार के सदस्य उसे रबड़ स्टैम्प के ठप्पे के रूप में इस्तेमाल करते हैं। केवल जरूरत के वक्त, यही बात उसे भीतर तक कचोटती है। उसकी कुण्ठा का कारण पारिवारिक अधिकारों से वन्चित होना है। जिस परिवार संस्था में प्रेम और सौहार्द होना चाहिए वही परिवार बिखरा हुआ और अधूरेपन को लिए हुए है।

सावित्री आत्मनिर्भर होते हुए भी असंतुष्ट है। अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए वह उच्च पद पर आसीन औरआर्थिक रूप से मजबूत पुरुषों से सम्बन्ध बनाती है। सावित्री घर के दायित्व का बोझ ढोते-ढोते थकी हुई नारी के रूप में चित्रित है जो पति बच्चों द्वारा ताने दिए जाने पर, आरोप लगाये जाने पर वह तिलमिला उठती है। पूरे पुरुष की तलाश उसकी अधूरी जिन्दगी को दर्शाता है जहाँ वह स्वतंत्र होकर केवल अपनी जिन्दगी को पूर्ण रूप से जीने की आकांक्षा रखती है।

सावित्री और महेन्द्रनाथ के असफल दाम्पत्य सम्बन्धों का प्रभाव बड़ी लड़की बिन्नी और मनोज के सम्बन्धों पर भी पड़ता है। इनके आपसी सम्बन्ध भी मधुरता और प्रेम के स्थान कटुता से भर जाते हैं। इस परिवार के भीतर ही ऐसी कटुता व्याप्त है जो किसी को सहज स्थिति में रहने नहीं देती।

इस दंपत्ति के बच्चे भी उदण्ड और जिद्दी है तीन भाई-बहन अशोक, बिन्नी और किन्नी की तनातनी का कारण इस घर का वातावरण है। इस घर के बच्चे कई अर्थों में संक्रमणशील समाज की पैदाइश है। अशोक को लगता है यह घर पूरी तरह से टूट चूका है जबकि बिन्नी सब कुछ बंधा रहने की कोशिश में संलग्न है और किन्नी को सदा यही लगता है कि कोई-कोई उसे प्यार करे, उसकी तरफ ध्यान दे। संवेदना से वंचित इस परिवार के सभी सदस्य अकेलेपन, विषाद अपरिचय एवं कटुता के वातावरण में जीने को विवश है। सावित्री महेन्द्रनाथ को आधा-अधूरा इसलिए समझती है क्योंकि वह कोई भी काम बिना अपने मित्रों के परामर्श के नहीं कर सकता। यहाँ तक की महेन्द्र ने विवाह तक अपने मित्र जुनेजा के परामर्श कर ही किया था यह सावित्री की खीज का कारण है। वह अपनी अंतवेंदना का स्पष्ट करते हुए कहती है की 'मत कहिये मुझे महेन्द्र की पत्नी क्योंकि वह अधूरे आदमी की पत्नी कहलवाना पसन्द नहीं करती।

इस नाटक के पात्रों का सम्पूर्णता की तलाश करना, आर्थिक दबाव, उच्च वर्ग के प्रति बढ़ता आकर्षण, दिखावा उन्हें खोखला बनाता है। अशोक के भीतर बढ़ता असंतोष, आक्रोश आज की युवा पीढ़ी के आक्रोश को दर्शाता है वह मानता है कि सिंघानिया जैसे लोगों के आने से हम कितने छोटे है उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में। सिंघानिया भ्रष्टाचारी अफसर है, केवल अपनी हाँकता है। सुनने की बजाये सुनाने में विश्वास करता है अशोक और सावित्री के मध्य कटुता का कारण है कि सावित्री व्यक्ति को अर्थ की कसौटी पर परखती है इसलिए वह आदमी को नहीं, बल्कि उसके रुतबे, पद और तनख्वाह को महत्व देती है।

घर की आर्थिक विषमता ने सभी पात्रों को अव्यवस्थित कर दिया। बिन्नी का मनोज के साथ भाग जाना या छोटी लड़की किनी का पुरुष स्त्री के सम्बन्धों में रूचि दिखाना और घरवाली को 'मिट्टी के लौंदे' कहना यही दशोता है। सावित्री का अपनी जिन्दगी को लेकर फैसला करना हो या ये कहना -ष्सब के सब ... सब के सब ... एक से। बिल्कुल एक से हैं आप लोग? अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा? ... चेहरा सबका एक ही।" उसकी असंतुष्टता को इंगित करता है साथ ही महेन्द्रनाथ का कहना की - मुझे पता है कि मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है।" उसके असहाय पन को दर्शाता है। बुजुर्ग जुनेजा का सावित्री पर किया गया व्यंग्य कि बीस साल पहले भी सावित्री को महेन्द्रनाथ लिजलिजा और चिपचिपा सा ही लगता था परन्तु उसका जिम्मेदार उस समय जुनेजा नहीं बल्कि उसके माता-पिता थे। और अब .....। नेमिन्द्र जैन ने नटरंग पत्रिका के अंक 22 में लिखा है

टिप्पणी

"अजीब है आज का इन्सान, खुद अधूरा होते हुए भी वह दूसरों में पूर्णता खोजता फिरता है। पूर्णता जो नितांत खोखली और काल्पनिक है। हम इसी की खोज में भटकते हैं। इसी नतीजे में अपनी और अपनों की जिन्दगी तबाह करते हैं।

मोहन राकेश ने अपने नाटक आधे-अधूरे में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिससे सामान्य जनता के समक्ष वस्तु स्थिति का सम्पूर्ण चित्र उभर जाए। 'घरघुसरा रबर स्टैम्प, मिट्टी के लौंदे, कुछ ऐसे ही शब्द हैं। नाटक में घर के समान का बिखरा होना, कैंची की कच-कच की आवाज या फिर महेन्द्रनाथ का ये कहना मैं जिन्दगी काट रहा हूं। मैं जीवन के बिखराव, सम्बधों में कटाव और दूरियों को ही दर्शाता है।

मूल्यों का प्रश्न

स्वातान्त्रयोत्तर युग की परिस्थितियों ने हमारी सांस्कृतिक धरोहर एवं हमारे जीवन मूल्यों को लील जाने का भी कार्य किया है। 'अर्थतंत्र' के बढ़ते जाल ने मनुष्य के जीवन को विषाक्त एवं कटु बना दिया है। आधुनिक जीवन में 'अर्थ' के बढ़ते वर्चस्व ने मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। आज व्यक्ति के सामाजिक रूप, व्यवहार एवं दृष्टिकोण का नियम अर्थतंत्र ही करता है। आज जीवन की सार्थकता को अर्थार्जन से जोड़कर देखा जाता है। आत्मीयता एवं संवेदना का स्थान गौण होता जा रहा है। यही कारण है कि जीवन का हर पहलु, परिवार संस्था, विवाह संस्था, हमारी संस्कृति पर संकट आच्छादित है। आलोच्य नाट्यकृति में गृहस्वामीनी सावित्री 'अर्थ' को ही महत्व देती है। आर्थिक सुदृढ़ता की लालसा उसे नैतिक पतन की ओर धकेलती है। अपनी उच्चाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह आत्मीय सम्बन्धों को भी ताक पर रख देती है।

सावित्री और महेन्द्रनाथ का परिवार उच्चवर्ग के स्वप्न देखता है। दिखावटी जिन्दगी का सहारा लेता है। फलतः आर्थिक असंतुलन से टूटता है। अशोक और महेन्द्रनाथ की बेकारी ने इस समस्या को और जटिल बना दिया है।

परिवार संस्था के भीतर जिस आत्मीयता की आवश्यकता है वह इस परिवार से नदारद है माता-पिता अपने बच्चों को जो स्नेह और सुरक्षा प्रदान करते हैं। सावित्री और महेन्द्रनाथ दोनों ही वे अपने बच्चों को न दे सके जिसके कारण तीनों ही बच्चे बिन्नी, किन्नी, अशोक नैतिक पतन की कगार तक जा पहुँचे। यह परिवार संस्कार, मूल्यों, स्नेह, आत्मीयता का वातावरण दे सकने में असफल रहा है। और आज का व्यक्ति भी अपनी स्वार्थी मनोवृत्ति के कारण स्वयं के विषय में ही सोचता है अन्यों से कुछ लेना-देना नहीं। आज शुष्क संवेदनाएँ मनुष्य के नैतिक पतन का कारण बन चुकी है।

आज के समाज में त्याग, संयम, आत्मीयता, निष्ठा, अन्डरस्टैडिंग जैसे मूल्यों का नितांत अभाव दृष्टिगोचर होता है। आलोच्य नाट्यकृति में चित्रित परिवार इसका ज्वलंत उदाहरण है।

5.17 पैर तले की जमीन

अस्तित्ववादी चिंतन के धरातल पर स्थित 'पैर तले की जमीन' मोहन राकेश जी का अंतिम नाटक है। मोहन राकेशअपने जीवनकाल में इस नाटक का केवल खाका और प्रथम अंक ही पूर्ण लिख पाए थे। उनके देहावसान के पश्चात् इस नाटक का दूसरा अंक उनके घनिष्ठ मित्र कहानीकार कमलेश्वर जी ने पूर्ण किया। नाटककार के अनुसार इस नाटक के चार भाग हैं - बाढ़, जमीन कटना, आत्मस्वीकार और बाढ़ का उतरना। इस नाटक का परिवेश श्रीनगर का 'टूरिस्ट क्लब ऑफ इंडिया' है। इस क्लब में कुछ ऐसे लोग एकत्रित हैं जो अपने जीवन की रिक्तता, बेचौनी और कडुवाहट को भुला देना चाहते हैं। इस नाटक के पात्र अलग-अलग हैं परन्तु नियति ने उस दिन के लिए उन्हें एक स्थल पर ला दिया

टिप्पणी

है। अचानक बाढ़ के आने से टूरिस्ट क्लब को शहर से जोड़ने वाला पुल टूटने लगता है और उनका संपर्क बाहर की दुनिया से कट जाता है। आसत्र मृत्यु की छाया में पात्रों की मनोवृत्ति कैसे बदलती है इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण राकेश जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

आलोच्य नाट्यकृति में मनुष्य के अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों को उठाया गया है। जब संकट सामने आता है तभी व्यक्ति को अस्तित्व की पहचान होती है। इसलिए नाटककार ने इस नाटक के पात्रों के समक्ष बाढ़ आने पर मृत्यु के संकट को लाकर खड़ा कर दिया है। मृत्यु को सामने देख सभी पात्र अपने चेहरे पर चढ़े मुलम्में को उतार देते हैं और जीवन के मूल तत्व को पाते हैं किन्तु कुछेक घंटों के बाद बाढ़ के पानी के कम होने की सूचना मिलती है, टेलीफोन की घंटी बजती है और जीवन के बचने का आश्वासन मिलता है, सब पुनः पहले की मनरूस्थिति को प्राप्त होते हैं।

पुरुष पात्र अयूब अपनी पत्नी सलमा से निराश है।वह जिन्दगी को ढोता है और निजी जीवन में पूर्णता की तलाश करता है। उसे एक ऐसी स्त्री की तलाश है जो उसका हर स्थिति में साथ दे सके। वह उस हर स्त्री को कब्रिस्तान की संज्ञा देता है जिसकी इनोसेंस और भोलापन मर चुका है। दूसरी ओर सलमा को न तो जिंदगी से प्यार है न तो मौत का डर। उसके लिये जिंदगी और मौत दोनों समान हैं। अनिच्छा से हुए विवाह के कारण वह अयूब से आंतरिक रूप से जुड़ नहीं पाती और भरे-पूरे घर में रहते हुए भी कब्रिस्तान में बदलती जा रही है।

अतः नाटक में चित्रित पात्र अयूब, अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है। दाम्पत्य जीवन में असफल अयूब, रीता और नीरा के साथ अनैतिक आचरण करता है। दूसरी ओर अयूब की पत्नी सलमा परंपरागत मूल्य 'पति परमेश्वर' को नकारती है और अयूब से घृणा करती है।

अपने अस्तित्व में बाधक मूल्यों को आज का व्यक्ति अस्वीकारता है। युवा पीढ़ी अपने ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबंध स्वीकार नहीं करती और न ही किसी क्षेत्र को निषिद्ध मानती है इसलिए बाढ़ की सूचना मिलने परभी नीरा स्वीमिंग पुल में स्नान करती है, आधुनिक संगीत सुनती है और छोटी लड़की होने के बावजूद छोटा कहलाना पसंद नहीं करती। इस प्रकार नीरा में निषेध की भावना उसके आधुनिकता को दर्शाती है।

रीता को सामाजिक व्यवस्था का बंधन रास नहीं आता। अयूब की अमानुषिक वृत्ति का शिकार बनते समय उसे डर अयूब से नहीं बल्कि अपने भीतर के तृप्ति रूपी जानवर से है। अपनी तृप्ति उसके लिये महत्वपूर्ण है न कि मूल्य। अपनी तृष्णा के लिये मूल्यों को ताक पर रखना मंजूर है। संकट के समय भी वह चयन की क्षमता रखती है वह अपनी मर्जी से अपना अन्त तय करना चाहती है। वह पूरी तरह से अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक है जो आधुनिकता से जोड़ता है।

आज का व्यक्ति कितना मुखौटावादी हो गया है। व्यक्ति की इसी मुखौटावादी प्रवृत्ति को इस नाटक में दर्शाया है। बाढ़ के आने पर मृत्यु का संकट जब गहराने लगता है तब सभी पात्र अपने अपने 'खोल' से बाहर आने लगते हैं तब अयूब कहता है-ष्सब एक-दूसरे का खोल उतरते देखना चाहते हैं मगर अपना खोल बनाये रखते हुए।"

पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले झुनझुनवाला का चरित्र समय की वर्तमान व्यवस्था को दर्शाता है। मृत्यु को सामने देखकर वह भी भयभीत हो जाता है जीवन की अंतिम घड़ी में वह आत्मस्वीकार करता है कि मैंने धर्म, नैतिकता, विज्ञान, राजनीति सबको अपना व्यापार बनाया। कालाबाजारी, रिश्वतखोरी समाज संस्था की जड़ों को कैसे हिला रही है यह विषय नाटक के मूल रूप से उभरा है। पंडित आत्म हनन की स्थिति में जीता है। मृत्यु के कगार पर खड़ा होकर वह भी अपने नंगेपन के

टिप्पणी

साथ तथा स्वतंत्र होकर मरना चाहता है। अत: इस नाटक के पात्र चाहे रीता हो या नीरा, झुनझुनवाला या पंडित, अयूब या सलमा सभी में संस्थागत टकराहट और पारंपरिक मूल्यों का निषेध ही दृष्टिगोचर होता है।

अत: इस नाटक में मोहन राकेश जी ने मूल्य-विघटन, अस्तित्व-चेतना, सम्बन्धों के खोखलेपन, विसंगति, भय, पीड़ा, व्यक्ति की निम्नतर वृत्तियों को अनूठे ढंग से दर्शाया है। नाटक की सभी स्थितियाँ पैर तले की जमीन पर टिकी हुई हैं जैसे ही जमीन पानी के अंदर जाने लगती है अस्तित्व संकट खड़ा हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के पैर के नीचे धरती है, जब तक बोध होता है तब तक अस्तित्व की संभावना है। अंडे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक नाट्य-प्रयोग की दृष्टि से आलोच्य एकांकी संग्रह में चार एकांकियाँ, दो बीज नाटक और एक पार्श्व नाटक है। इन एकांकियों में राकेश जी ने व्यंगयपरक शैली को अपनाते हुए आज की राजनैतिक व्यवस्था सामाजिक मूल्यों, पीढ़ी अन्तराल, युद्ध जिन्दगी से हताश आधुनिक व्यक्ति के विविध पहलुओं को दर्शाया है।

अंडे के छिलके एकांकी में एक ऐसे परिवार को चित्रित किया गया है जहाँ अंडे खाना वर्जित है परन्तु इस घर में अंडे छिपाकर खाये जाते हैं। रामायण और महाभारत के बदले उपन्यास पढ़े जाते हैं। इस एकांकी का सारा घटनाक्रम अंडे के छिलकों को लेकर चलता है। एकांकी का नाम प्रतीकात्मक है। आज प्राचीन जीवन मूल्य मात्र छिलको के रूप में ही शेष है। माँ जमुना धार्मिक विचारों की महिला है और पुरानी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है जबकि घर के अन्य सदस्य श्याम, गोपाल, माधव, बीना और राधा दोहरा जीवन जीते हुए आधुनिकता की ओर अग्रसर हैं।

सिपाही की माँ एकांकी में एक माँ की हृदय की वेदना को उभारा गया है। युद्ध की घटनाएँ और उसके समाचारों से एक माँ का हृदय कैसे छलनी होता है। राकेश जी इस एकांकी में यह दिखाने के साथ-साथ मूल्यों में हास को राष्ट्रीयता से जोड़कर प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग की कृत्रिम सभ्यता में 'प्यालियाँ टूटती हैं' एकांकी परिवारिक सम्बन्धों के टूटने का पक्ष चित्रित करती है। अत्याधुनिक समाज में आज जो व्यक्ति 'फिट' नहीं बैठता है उसे टूटी प्यालियाँ की तरह फेंक दिया जाता है। 'सामाजिक सिस्टम' पर व्यंग्य करती एकांकी 'बहुत बड़ा सवाल' एकांकी यह दर्शाती है कि आज काम कम, बातें अधिक होती हैं। सभाओं में एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप अधिक होता है। अत: आज की व्यवस्था के कारण ही जीवन और कार्य की एकरसताना राकेश के दो बीज नाटक शायद और है; की विशेषता है कि संवादों में तारतम्यता नहीं हैं। पुरुष जो भोलता है स्त्री उसे सनकर कुछ और ही संवाद बोलने लगती है। जो कि बड़ा ही नाटकीय लगता है। पार्श्व नाटक छतरियाँ में केवल एक पात्र ही मंच पर आता है। पार्श्व से आने वाली ध्वनि के टूटने, पारिवारिक सम्बन्धों के विघटन, राजनैतिक निष्क्रियता और भ्रष्टाचार, समाज व्यवस्था के खोखलेपन की कहानी कहता मोहन राकेश के नाटकों का मंचन आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच को एक नवीन दिशा दिखलाने वाले राकेश के नाटकों का मंचन देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी सफलतापूर्वक हुआ है। रंगमंचीय आन्दोलन का सूत्रपात राकेश के प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' से ही माना जाता है। इनके नाटकों की प्रस्तुतियों का आँकडा शतकों में पहुंच चुका है साथ ही इसका महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि इनके नाटक अन्य भाषाओं जैसे अंग्रेजी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, कन्नड आदि भाषाओं में भी मंचित हुए हैं। वैसे तो माना जाता है कि नाटक अभिनीत होने के लिये ही होते हैं परंतु राकेश ने अपने नाटकों में अपनी शैली को ऐसे तराशा है कि उनके नाटक न केवल संचित होते हैं बल्कि रेडियों पर सुनने व पाठकों द्वारा आनंदित होकर पढ़े भी जाते हैं।

टिप्पणी

भारतेन्दु जी, उमाशंकर प्रसाद, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल जी के नाटकों ने हिन्दी रंगमंच को प्रतिष्ठित करने में सहायक भूमिका तो निभाई परंतु रंगमंच को सुदृढ़ता एवं विकास की दुनिया में पदार्पण करने का श्रेय राकेश जी को ही दिया जा सकता है।

राकेश के नाटकों पर न केवल उसकी रोटी' और 'आषाढ़ का एक दिन' दो फिल्में बनीं बल्कि उनके नाटकों को संगीत नाटक अकादमी साहित्य कला परिषद से अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं। नेहरु फैलोशिप पाने वाले वह प्रथम नाटककार हैं। आज भी राकेश के नाटकों का मंचन श्रीराम सेंटर, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में होता रहता है। अनेक थीएटर फेस्टिवलम् में राकेश के नाटकों का मंचन होना इस बात को दर्शाता है कि आज भी भारतीय रंगकर्मी चाहे रामगोपाल बजाज हो, सुरेश अवस्थी, द.ब. कारत, ओमशिवपुरी, ध्यानचंद जालान, सुधा शिवपुरी, इब्राहिम अलकाजी, अल्लना इन सभी अपनी क्षमता के प्रदर्शन का आधार राकेश के नाटकों को ही मानते हैं। राकेश के समस्त नाटकों की प्रदर्शन सूची नेमिचंद जैन द्वारा सम्पादित पुस्तक 'मोहन राकेश' के सम्पूर्ण नाटक में उपलब्ध है।

5.18 प्रश्नबोध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश ने कौन-कौन-से उपन्यास लिखें हैं? उनके नाम लिखिए।**
2. **निबन्ध के क्षेत्र में मोहन राकेश का क्या योगदान है?**
3. **अस्तित्ववादी चिन्तन किसे कहते हैं?**
4. **विसंगवादी नाटकों का जन्म किस प्रकार हुआ?**
5. **अस्तित्ववादी विचारधारा का जनक किसे माना गया है?**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश में ज्वलन्त साहित्यिक भाषा के अग्नि बीज मौजूद है।' उनकी कहानियों के आधार पर इस विषय की विवेचना कीजिए।**
2. **मोहन राकेश के नाटकों में जीवन सत्य की विवेचना कीजिए।**
3. **मोहन राकेश के नाटकों में विषय विस्तार पर चर्चा कीजिए।**
4. **मोहन राकेश के साहित्य और साहित्यिक चिंतन पर प्रकाश डालिए।**
5. **'मोहन राकेश का समस्त रचना संसार समसाक्षिक युग चेतना से सम्पन्न है।' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?**

टिप्पणी

टिप्पणी

टिप्पणी

References and Suggested Reading

lnHk iLrd

- आज के रंग नाटक- गिरीश रस्तोगी
- अंधेर नगरी : सं. गिरीश रस्तोगी, राजकमल प्रकाशन
- जयशंकर प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन- जगन्नाथ शर्मा
- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - दशरथ ओझा
- fxjh'k jLrkxh & ekgu jkd'k vkj mud dk0;
- fxjh'k jLrkxh & ekgu jkd'k vkj vk"kk< dk ,d fnu
- fgnh ukVd mnHko vkj fodkl] jktiky ,M ll] fnYyh
- Mk- nojkt & Hkkjrh; lLdfr] idk'ku foHkkx] lpuk foHkkx] mRrj in'kA
- Mk- uxUn & vk/kfud fgnh ukVd] lkfgR; jRu HkMkj] vkxjkA
- vuiek ' 'kek & ekgu jkd'k d ukVdk e feFkd vkj ;FkkFk
- vpuk R;kxh & ukV; lkfgR; e ykdrRo] fuek.k idk'ku fnYyh
- miUn ukjk;.k flg & vk/kfud fgnh ukVdk ij vkXy ukVdk dk iHkko] fgnh lkfgR; llkj] iVuk
- Mk- mek'kdj flg & fgnh d leL;k ukVd] Åtk idk'ku] bykgckn
- Mk-vkeidk'k lkjLor & cnyr eY; vkj vk/kfud fgnh ukVd] eFku ifCyd'ku] jkgrd
- Økfr dukV & Hkkjrh; ukV; jx] vf[ky Hkkjrh; lkfgR; ifj'kn] fnYyh
- Mk- fxfjtk flg & fgnh ukVdk dh f'kYi fof/k] ykd Hkkjrh idk'ku] bykgkckn
- fxfj'k jLrkxh & fgnh ukVd fl)k r vkj foopu] xFke] dkuij
- fxjh'k jLrkxh & ekgu jkd'k vkj mud dk0;

Internet links

https://www.youtube.com/watch?v=RiUNzvDcLe4

https://www.youtube.com/watch?v=vQ2EBJQ0vfg

https://www.youtube.com/watch?v=788kutC9b0k

https://www.youtube.com/watch?v=I1ZjAylKRZE

https://www.youtube.com/watch?v=G_DxFNgWzE0

Related Research Articles

- vuiek ''kek & ekgu jkd'k d ukVdk e feFkd vkj ;FkkFk
- vpuk R;kxh & ukV; lkfgR; e ykdrRo] fuek.k idk'ku fnYyh
- miUn ukjk;.k flg & vk/kfud fgnh ukVdk ij vkXy ukVdk dk iHkko] fgnh lkfgR; llkj] iVuk
- Mk- mek'kdj flg & fgnh d leL;k ukVd] Åtk idk'ku] bykgckn
- Mk-vkeidk'k lkjLor & cnyr eY; vkj vk/kfud fgnh ukVd] eFku ifCyd'ku] jkgrd
- Økfr dukV & Hkkjrh; ukV; jx] vf[ky Hkkjrh; lkfgR; ifj'kn] fnYyh
- Mk- fxfjtk flg & fgnh ukVdk dh f'kYi fof/k] ykd Hkkjrh idk'ku] bykgckn
- fxfj'k jLrkxh & fgnh ukVd fl)k r vkj foopu] xFke] dkuij